चिकित्साचन्द्रोदय

प्रथम भाग

स्वास्थ्यरक्षा, अँगरेज़ी शिक्षा, हिन्दी बँगला शिक्षा
प्रभृति पुस्तकों के लेखक और गुलिस्ताँ
प्रभृति कितनी ही पुस्तकों के
अनुवादक

हरिदास वैद्य

द्वारा लिखित

प्रकाशक

हरिदास एण्ड कम्पनी

कलकत्ता
२०१, हरिसन रोड के "नरसिंह प्रे
बाबू रामप्रताप भार्गव द्वारा
मुद्रित।

जनवरी सन् १९१० ई०

प्रथम बार १००० } { मूल्य ३)

निवेदन

आज कोई दस साल हुए, जब मैंने "स्वास्थ्यरक्षा" नामक एक छोटासा ग्रन्थ लिखा था। वह मेरा पहलाही ग्रन्थ था, इसलिए मैंने उसे डरते-डरते प्रकाशित कराया था। भय लगता था कि, विद्वान् लोग मेरी ग़लतियोंसे सख़्त नाराज़ होकर, कहीं मुझ पर खड्गहस्त न हो जायँ; पर जो हुआ वह मेरे विचारोंके विपरीत हुआ। सबसे पहले स्वर्गवासी महोपाध्याय शंकरदाजी शास्त्रीपदेने "स्वास्थ्यरक्षा"की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इसके बाद हिन्दी बङ्गवासी, भारतमित्र आदि छोटे-बड़े सभी हिन्दी-पत्रों, अनेक विद्वान् वैद्यों और कितनेही राजा-महाराजाओंने उसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसाकी। राजा-महाराजा, प्रोफेसर मास्टर, जज वकील, ग्रेजुएट अण्डर ग्रेजुएट, गृहस्थ और संन्यासी, बालवृद्ध युवक, नर और नारी—सभी श्रेणीके लोगों ने उसे हाथों-हाथ ख़रीद कर, मेरा उत्साह बढ़ाया। नतीजा यह हुआ कि, वह संस्करण प्रायः एक वर्ष में ही शेष हो गया।

इसके बाद दूसरा संस्करण छपा। उसमें पृष्ठ-संख्या बढ़ाकर प्रायः दूनी कर दी गई; इससे उसकी माँग और भी बढ़ गई। उधर वैद्यक यूनीवरसिटी के सञ्चालक महोदयोंने उसे वैद्यकके कोर्समें शामिल करके उसकी इज़्ज़त औरभी बढ़ा दी; जिसके लिए मैं पण्डितवर जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल महोदय, सम्पादक "सुधानिधि" का आजीवन कृतज्ञ रहूँगा।

अब तो ऐसा होगया है कि प्रत्येक हिन्दी जाननेवाला उसे अपने घरमें रखना परमावश्यक समझता है। चिट्ठियों से मालूम हुआ है कि हज़ारों नवयुवकोंने उसे पढ़कर नवजीवन लाभ किया है: हज़ारों गृहस्थ उससे अपने और अपने पड़ोसियोंके दु:ख दूर करनेमें समर्थ हुए हैं; हज़ारों उससे सच्चे गृह-चिकित्सक का काम लेते और सफलता लाभ करते हैं। इसीसे, इन कई सालोंमेंही, उसके पाँच संस्करण होगये: छठा होरहा है। इन बातोंसे मुझे कितनी खुशी होती होगी, इसका अनुमान पाठक स्वयं कर सकते हैं।

हाँ, असल बात तो मैंने कही ही नहीं। असल बात यह है कि, उसी "स्वास्थ्यरक्षा"की भूमिकामें, एक जगह, मैंने यह लिख दिया था कि, यदि क़दरदान पाठक मेरी इस पुस्तककी क़दर करेंगे, तो मैं "चिकित्साचन्द्रोदय"नामक एक ग्रन्थ लेकर शीघ्रही उनकी सेवामें उपस्थित हूँगा। लिखनेको तो मैंने यह बात लिखदी, पर समयके अभाव, और एकदमसे कारोबारके बढ़ जानेके कारण, मैं उस ग्रन्थको लिख न सका। लोगोंको मेरी सीधी-सादी लेखन-शैली ऐसी पसन्द आई, कि जिन्होंने "स्वास्थ्यरक्षा" मँगाई और देखी, उन्होंने "चिकित्साचन्द्रोदय"के लिए तकाज़े पर तकाज़े करने शुरू किये: पर मैं तो ऐसा उलझा कि वादे पर वादे करने पर भी, उसे १० साल तक लिख ही न सका। इससे कुछ लोग मुझ पर सख़्त नाराज़ होने लगे; तब मजबूरन मैंने अपने नफ़ा-नुक़सानका ख़याल अलग करके समय निकाला, और एक मास तक इसी काममें दिलोजानसे लगा रहा। अविश्रान्त परिश्रम करने पर यह पहला भाग तैयार हुआ, जो आज छपकर प्रेमी पाठकोंकी सेवामें उपस्थित है। मुझे उम्मीद तो नहीं थी कि, यह काम ऐसी जल्दी हो जायगा; पर मंगलमय भगवान् कृष्णचन्द्रकी कृपासे यह एक भाग तो पूरा हो ही गया। यह काम कैसा हुआ है, यह निर्दोष है या सदोष, मुझे सफलता हुई है या नहीं, यह बात मुझे ज़रा भी नहीं मालूम: क्योंकि मुझे तो इसे लिखकर, इसकी कापी दुहरानेका भी समय नहीं

मिला। पाठक स्वयं पढ़कर इन बातों का विचार करें और देखें कि, लेखक को इसमें कितना परिश्रम करना पड़ा है—और उसे काम-याबी हुई है या नहीं।

इस ग्रन्थमें मेरा कुछ नहीं है। जो है, वह पुराकालके त्रिकालज्ञ महात्माओं का है। मैंने अपने अनुभवके अनुसार, इसे अपने ढँगसे सजाकर लिखा है : बस, यह ढँगमात्र ही मेरा है। मुझे पहले-पहल चिकित्सा-कर्म करते समय जिन-जिन मौक़ों पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, उन सब मौक़ों की बातें मैंने खूब समझा-समझाकर इसमें लिखदी हैं : और इस तरह लिखी हैं कि इसके पढ़नेवालों को मेरी तरह मुश्किलातों का सामना न करना पड़े। जो विषय मैंने इसमें लिखे हैं, उनके लिए वैद्यक सीखनेवालोंको और किसी ग्रन्थके देखनेकी ज़रूरत नहीं। वे बिना गुरुके इन विषयों को आसानीसे हृदयङ्गम कर सकेंगे। वैद्यक-विद्याका अभ्यास वैद्यका व्यवसाय करनेवालों और न करनेवालों दोनोंके लिएही ज़रूरी—ज़रूरी ही नहीं, बहुतही ज़रूरी है। यह बात मैंने इस पुस्तकमें चरक सुश्रुतादि ग्रन्थोंके प्रमाण देकर समझाई है।

एक ज़माना था, जब हमारे घरोंकी स्त्रियाँ तक मामूली चिकित्सा कर लेती थीं। यह बात मैंने स्वयं इन आँखों से देखी है : पर अब वह बात नहीं है! ज़रासा सिर-दर्द होनेपर भी डाक्टर साहब बुलाये जाते हैं। इससे देशको बड़ी हानि होरही है। आयुर्वेदका पढ़ना मनुष्यमात्रके लिए परमावश्यक है, तभी तो चरक सुश्रुत आदि महर्षियोंने इसके पढ़नेकी आज्ञा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको तो दी ही है; शूद्रतक को भी इस लाभ से वञ्चित नहीं होने दिया है। पर हिन्दीमें आसानी से समझमें आने-योग्य आयुर्वेद-सम्बन्धी पुस्तकोंका प्रायः अभाव है : इसीसे बेचारे हिन्दी पढ़े लोग, जो संस्कृत कुछ भी नहीं जानते, इससे कोरे रह जाते हैं—मन होनेपर भी मन-मारकर बैठ रहते हैं।

ऐसेही लोगोंके लिये मैंने यह परिश्रम किया है। यदि आयुर्वेद-प्रेमी सज्जन इस भागको चार छै बार समझ-समझकर पढ़ भी जायँगे, तो हज़ारों अनमोल बातें, जिन्हें हज़ारों मामूली चिकित्सक जानते भी नहीं, उनके दिमाग़में भर जायँगी। इस भाग की प्रत्येक बात के हृदयङ्गम करलेने और इसके अगले भाग पढ़लेनेसे, वे अच्छे चिकित्सक बनकर अपना और अपने पड़ोसियों का भला कर सकेंगे। यद्यपि वे आयुर्वेद-आचार्य्य न बन सकेंगे; तथापि मूढ़ वैद्योंकी तरह प्राणियोंके प्राणनाश तो न करेंगे। यह लाभ क्या कुछ कम है?

इस समय काग़ज़ का अकाल है; दाम देने पर भी अच्छा काग़ज़ नहीं मिलता। ऐसे समयमेंही यह पुस्तक प्रकाशित हुई है; इसलिए इसका मूल्य प्रकाशक कम न रख सके, इसका मुझे सख्त अफ़सोस है, पर मजबूरी है। पाठक यक़ीन करें, कि इन दामोंमें भी प्रकाशकों को अच्छा मुनाफ़ा नहीं है। आशा है, विद्याप्रेमी क़दरदान पाठक धेली आठ आनेका ख़याल न करके, इसे "स्वास्थ्यरक्षा" की तरह ख़रीद कर, मेरा और प्रकाशकों का उत्साह बढ़ायेंगे। ऐसी कृपा और क़दरदानी होनेसे ही, मैं इसका दूसरा भाग लेकर पाठकों की सेवामें उपस्थित हो सकूँगा।

दूसरे भागमें क्या होगा? दूसरे भागमें इसके आगे का विषय,—पञ्चकर्म, रोगोंके निदान, लक्षण और उनकी चिकित्सा होगी। जितने नुसख़े लिखे जायँगे, उनमें प्रायः प्रत्येक रोगके कुछ न कुछ परीक्षित नुसख़े अवश्य होंगे, जो "स्वास्थ्यरक्षा" के नुसख़ोंकी तरह तीरे हदफ़ या अक्सीरका काम करेंगे, जिनसे चिकित्सा-कर्ममें पूरा सुभीता होगा। पर इस कामका पूरा कराना और न कराना, उन्हीं भक्तवत्सल भगवान् कृष्ण के हाथ है, जिनका मुझे हरदम भरोसा है। मेरे प्रत्येक सांस का आना और जाना उन्हीं की कृपा का फल है। यदि वे चाहेंगे, तो मैं अपना जीवन शेष होनेके पहले, इस ग्रन्थ को पूर्ण कर सकूँगा।

एक बात और कहनी है; वह यह कि, मैं कोई पदवीधारी नामी-गिरामी हकीम-वैद्य नहीं; हिन्दी का सुलेखक होना तो दूर की बात है, मामूली लेखक भी नहीं। फिर भी, मैंने बौनेके समान चाँद के छूने का प्रयत्न क्यों किया, यहां यह सवाल पैदा होता है। सुनिये, मैंने बड़ी-बड़ी कठिनाइयोंसे, अनेक प्रकारकी घोर सङ्कटोंमें, आयुर्वेद का अध्ययन किया है। मैंने अपनी ज़िन्दगी के १५।२० साल इसीमें लगाये हैं, चिकित्सा-कर्म करनेमें भी थोड़ा-बहुत यश लाभ किया है; इससे कह सकता हूँ कि मुझे कुछ अनुभव हुआ है; किन्तु यह अनुभव अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंका सामना करनेसे हुआ है। मैं नहीं चाहता कि, मेरे और भाई मेरी तरह कठिनाइयों का सामना करें, उन्हें मेरी तरह कष्ट हों; इसीसे जो कुछ मुझे आता है, उसे अपने भाइयोंके सामने रख देना अपना कर्त्तव्य—फ़र्ज़—समझा। "अकरणान्मन्द करणंश्रेय:"के न्यायानुसार, मैंने इस कठिन—महा कठिन काममें हाथ डाला और सोलह आने दु:साहसका काम किया है। इस दुस्तर महासागरमें कूद तो पड़ा हूँ, पर इसके पार लगाना उन्हीं जगदीश के हाथ है, जिनकी इच्छा से संसार में सभी काम होते हैं, जिनकी इच्छा बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। वह जो चाहते हैं वही होता है; और जो नहीं चाहते, वह हरगिज़ नहीं होता।

यद्यपि यह काम मैंने कोई ४ सप्ताहमें किया है और वह भी एक घोर मानसिक वेदनाकी हालतमें। फिर भी; मैंने यथासामर्थ्य सावधानी से काम लिया है; लेकिन हज़ार सावधानी और होशियारी से काम करनेपर भी, अच्छेसे अच्छे मनुष्यसे भूल होही जाती है। फिर; मैं तो एक मामूली आदमी हूँ, कोई विद्वान् नहीं; तब मुझसे भूलोंका होना कोई अनहोनी बात नहीं। इसलिए विद्वानोंसे मेरी विनीत प्रार्थना है कि, वे इस पुस्तकके गुणों पर ही नज़र डालें; क्योंकि संसारमें ऐसी कोई भी चीज़ नहीं, जिसमें केवल गुणही गुण हों,

अवगुणोंका नाम न हो। मिष्टान्न को छोड़कर विष्ठा पर बैठना मक्खी का काम है, और वह उसीको मुबारक रहे।

हाँ, विद्वानोंसे मेरी एक और प्रार्थना है। वह यह कि, उनकी नज़र तले जो ग़लतियाँ आवें, वे उन्हें कृपया पत्र-द्वारा मुझे लिख भेजें। मैं सादर-सधन्यवाद उन्हें दूसरे संस्करणमें दुरुस्त कर दूँगा और साथ-ही कृतज्ञतापूर्व्वक ग़लती दिखानेवाले सज्जन का शुभ नाम भी उसी स्थान पर छाप दूँगा। इस तरीक़े से इस पुस्तकके दोष दूर हो जायँगे और लेखक आजीवन दोष दिखानेवाले विद्वानोंका कृतज्ञ रहेगा। एक दूसरे को सहायता देना मनुष्यमात्रका धर्म है; उसी नातेसे मैंने यह बात लिखी है। आशा है, कि सच्चे परोपकारी और सहृदय विद्वान् इस बातका ख़याल रक्खेंगे।

कृपया एक बात और भी सुनिये। इस पुस्तक के प्रूफ-संशोधन में यत्र-तत्र कुछ भूलें रह गई हों, तो उनके लिए भी पाठक मुझे क्षमा करें; क्योंकि इस समय कोई अच्छा प्रूफ देखनेवाला मेरे पास नहीं था। स्वयं मैंने प्रूफ देखे हैं, और मेरी नज़र ख़राब होगई है: इसलिए दृष्टिदोषसे कुछ साधारण भूलें रह सकती हैं; पर जहाँ तक जानता हूँ बहुतही कम। वैसी चन्द भूलोंसे इस पुस्तकके पढ़ने-वालोंको किसी तरह की क्षति न हो सकेगी।

अब मैं अपने प्रेमी और दयालु पाठकों से विदा माँगता हूँ। यदि ज़िन्दगी रही, मानसिक व्याधिने पीछा छोड़ा, तो शीघ्र ही दूसरा भाग लेकर सेवामें उपस्थित हूँगा। आशा है, अनाथनाथ दीनबन्धु मंगलमय भगवान् मंगल ही करेंगे!

कलकत्ता
२ जनवरी, १९२० ई०

विनीत—
हरिदास।

विषयसूची

विषय	पृष्ठ

विषय				पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

विषय				पृष्ठ

विषय					पृष्ठ
वर्ण-परीक्षा	.	...	...	...	२३७
जिह्वा-परीक्षा	...	...	...	...	२३७
मुख-परीक्षा	..	...	...	...	२३८
चेहरे की परीक्षा	..	...	...	...	२३८
नेत्र-परीक्षा	...	..	...	...	२३८
अरिष्ट-लक्षण	...	...	...	...	२४१
असाध्य रोगों के लक्षण		...	...	...	२५६
महारोगोंके नाम		...	...	...	२५६
ज्वर के असाध्य लक्षण			...	...	२५६
अतिसार	..	,, ...	...	...	२५८
सूजन	,,	,, ...	...	...	२५८
शूल	,,	,, ...	...	...	२५८
पाण्डु	,,	,, ...	...	...	२५८
कामला	..	,, ...	...	...	२६०
राजयक्ष्मा	..	,, ...	...	...	२६०
श्वास	..	,, ...	...	...	२६१
उदररोग	,,	,, ...	...	...	२६२
गुल्मरोग	,,	,, ...	...	...	२६२
रक्तपित्त	,,	,, ...	...	...	२६३
प्रवाहिका	,,	,, ...	...	...	२६४
विद्रधि	,,	,, ...	...	...	२६४
भगन्दर	,,	,, ...	...	...	२६५
पथरी	..	,, ...	...	...	२६५
मूढ़गर्भ	..	,, ...	...	...	२६५
मृगी	..	,, ...	...	...	२६६
वातव्याधि	..	,, ...	...	...	२६७

विषय	पृष्ठ

विषय				पृष्ठ

विषय पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

चिकित्साचन्द्रोदय

आयुर्वेद ।

आयुर्वेदकी उत्पत्ति कैसे हुई, कब हुई, और आयुर्वेदके पढ़ने से क्या लाभ है? इन प्रश्नोंके उत्तर देनेके पूर्व्व, हमें यह बतलाना आवश्यक है कि, "आयुर्वेद" किसे कहते हैं, क्योंकि आयुर्वेदके पढ़नेवाला जबतक "आयुर्वेद" का अर्थ न समझेगा, तबतक उसका मन "आयुर्वेद" की ओर हरगिज़ न झुकेगा, उस ओर उसकी रुचि कदापि न होगी।

ऋषियोंने लिखा है,—"शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्माके संयोग या मेलको "आयु" अर्थात् उम्र कहते हैं, और जिस शास्त्रसे आयुका ज्ञान और उसकी प्राप्ति होती है, उसे "आयुर्वेद" कहते हैं।" चरक मुनिने लिखा है :—

हिताहितसुखंदुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानञ्च तञ्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥

जिससे आयुके हिताहितका ज्ञान और उसका परिमाण मालूम हो, उसे "आयुर्वेद" कहते हैं। और भी लिखा है :—

आयुर्हिताहितं व्याधि निदानं शमनं तथा ।
विद्यते यत्र विद्वद्भिः स चायुर्वेद उच्यते ॥

जिसमें आयुका हित, अहित, रोगका निदान, और शमन हो,— उसको विद्वान् "आयुर्वेद" कहते हैं।

इस जगत्में ऐसा कोई विरलाही प्राणी होगा, जो दीर्घायु न चाहता होगा। जीवनका ऐसा मोह है कि घोर कष्टोंमें फँसा हुआ प्राणी, यद्यपि असह्य शारीरिक और मानसिक क्लेशोंके मारे ज़बान से तो मृत्युको आवाहन करता रहता है, किन्तु जब मृत्यु सामने दिखलाई देती है, तब और भी कुछ दिन जीते रहनेकी आकांक्षा प्रकट करता है। इससे सिद्ध होता है कि, प्रत्येक प्राणी जो इस जगत्में आया है, जल्दी ही यहाँ से विदा होना नहीं चाहता। जब यही बात है, तब मनुष्यमात्र को थोड़ी या बहुत वह विद्या अवश्य सीखनी चाहिये, जिससे रोगोंके निदान-कारण और उनकी शान्तिके उपाय मालूम हों। रोग होनेका क्या कारण है, कौन रोग है, इस रोगका नाश कैसे होगा, किन बातोंसे आयुकी वृद्धि और किन से क्षय होता है, मनुष्य किस तरह अकाल मृत्युसे बच सकता है और किस तरह परमायुकी प्राप्ति हो सकती है—ऐसी-ऐसी बातें 'आयुर्वेद' में विस्तारसे लिखी हैं; इसलिये प्रत्येक मनुष्यको जो अपना या पराया भला चाहता है, संसारमें कोई बड़ा काम करने का अभिलाषी है, आयुर्वेद-विद्या अवश्य दिल लगाकर पढ़नी, समझनी और सीखनी चाहिये।

आयुर्वेद की उत्पत्ति

आज इस भूतल पर जितने देश हैं, सभीका आयुर्वेद अलग-अलग है; परन्तु सब देशोंके आयुर्वेदोंकी उत्पत्ति हमारे आयुर्वेद सेही हुई है। हमारा आयुर्वेद सबसे पहला और आदि है, इसको सप्रमाण हम आगे लिखेंगे। पहले हम यह बतलाते हैं कि, हमारे आयुर्वेदका जन्म कैसे और कब हुआ, हमारे यहाँ कौन बड़े-बड़े आयुर्वेदके जानने और लिखनेवाले विद्वान् हुए, उन्होंने कौन-कौनसे ग्रन्थ लिखे, उनमेंसे कौन-कौनसे ग्रन्थ उच्च श्रेणीके और कौन-कौन से निम्न श्रेणीके हैं।

आयुर्वेदकी उत्पत्तिका यथार्थ समय निश्चित करना, हमारे लिये तो सर्वथा असम्भव ही है। अनेक विद्वानोंने इस विषयमें दिमाग़ लड़ाया और अब भी लड़ा रहे हैं, परन्तु सच्ची कामयाबी आजतक किसी को न हुई, आजतक कोई भी मञ्जिल मक़सूद तक न पहुँचा, सभी इधर-उधर लटकते रह गये। कोई कुछ कहता है और कोई कुछ ; सबका मत भी एक नहीं।

यद्यपि थोड़ी बहुत अँगरेज़ी हमने भी पढ़ी है, आजकलके विद्वानोंकी रायों पर विचार भी किया है, तोभी उनकी दलीलें हमारे कमज़ोर दिमाग़में नहीं घुसतीं ; हमारे ख़यालात उसी पुराने ढर्रे के हैं, जिनकी कि आजकलके बाबू या मिस्टर दिल्लगी उड़ाया करते हैं। यद्यपि हम आयुर्वेदके जन्मकी सन् और तारीख़ नहीं दे सकते, पर यह दावेके साथ कह सकते हैं कि हमारा आयुर्वेद संसारमें सबसे

पुराना और पहला है। सुनते हैं, वेदोंमें इसका ज़िक्र है, इस लिये यह वेदोंके ज़मानेका है। वेद यदि अनन्तकाल या लाखों-करोड़ों वर्षों से हैं, तो 'आयुर्वेद' भी लाखों-करोड़ों वर्षों से है; यदि आजकलकी विद्वानोंकी मतानुसार वेद चार छै हज़ार वर्षोंसे हैं, तो यह भी चार छै हज़ार वर्षों से है। यदि हम, थोड़ीदेरके लिये, वेदोंको चार छै हज़ार वर्षोंका भी मानलें, तोभी हमारे इस कथनमें कि आयुर्वेद सबसे पुराना और पहला है कोई दोष नहीं आता; इसकी प्राचीनतामें बट्टा नहीं लगता। माफ़ कीजिये, हमें क्या कहना था और क्या कहने लग गये। आयुर्वेदकी उत्पत्तिकी बात लिखते-लिखते, जोशमें आकर, उसकी प्राचीनताका राग अलापने लग गये। अच्छा, पहले उत्पत्तिकी बात ही सुनिये।

किसी ज़मानेमें 'अथर्ववेद' का सार-सर्वस्व लेकर ब्रह्मदेवने अपने नामसे एक ग्रन्थ रचा और उसका नाम रक्खा "ब्रह्मसंहिता"। उस ग्रन्थमें एक लाख श्लोक थे, पर आजकल वह कहीं नहीं मिलता।

अपनी पुस्तक रचनेके बाद ब्रह्मदेवने, संसारके उपकारके लिये, दक्षप्रजापतिको आयुर्वेद पढ़ाया। दक्षप्रजापतिने दोनों अश्विनीकुमारोंको आयुर्वेदकी शिक्षा दी। उन दोनों भाइयोंने इस विद्या में बड़ी भारी उन्नति की और खूब नाम कमाया। उनकी अद्भुत चिकित्सा-प्रणाली पर देवराज इन्द्र दिलोजानसे मोहित हो गये। उन्होंने स्वयं यह विद्या अश्विनीकुमारोंसे सीखी। सुरपुरीमें ये दोनों भाई ही देवताओंका इलाज करते थे।

महर्षि आत्रेयने राजा इन्द्रसे आयुर्वेद सीखा। उन्होंने अग्निवेश, भेड, जातूकर्ण, पराशर, क्षीरपाणि और हारीतको आयुर्वेदकी शिक्षा दी। इन्होंने आयुर्वेदमें पारदर्शिता प्राप्त करके, अपने-अपने नामसे अलग-अलग ग्रन्थ लिखे।

अग्निवेश हारीत आदि ऋषियोंके ग्रन्थोंका सारमर्म लेकर और

अपनी ओरसे कुछ घटा-बढ़ाकर चरक आचार्य्यने अपने नामसे एक ग्रन्थ रचा। इसी ग्रन्थ का नाम आजकल "चरक" के नामसे संसार में प्रसिद्ध है।

चरक की संसारमें बड़ी प्रतिष्ठा है। कहते हैं, चरक पढ़े बिना जो चिकित्सा करता है, वह वैद्य नहीं यमदूत है। पाश्चात्य विद्वानोंने भी लिखा है कि, यदि संसारमें चरककी रीतिसे चिकित्सा की जाय, तो संसार आजकलकी तरह रोग-पीड़ित न हो। हमारे यहाँ वाले भी चिकित्सा के लिये चरक की बड़ी तारीफ करते हैं। कहा है,—

निदाने माधवः श्रेष्ठः, सूत्रस्थाने तु वाग्भटः।
शारीरे सुश्रुतःप्रोक्तः, चरकस्तु चिकित्सिते॥

रोगोंका निदान-कारण जाननेके लिये "माधव निदान" सर्व्व-श्रेष्ठ ग्रन्थ है; सूत्रोंके लिये "वाग्भट" सर्व्वोत्तम है; शारीरिक ज्ञान के लिये "सुश्रुत" और चिकित्सा के लिये "चरक" सबसे उत्तम है।

चरकमें गद्य (Prose) और पद्य (Verse) दोनों हैं। यह बड़ा कठिन ग्रन्थ है, इसीसे साधारण वैद्य इसे नहीं पढ़ते; पर ऊपर कह आये हैं कि चरक बिना अच्छी चिकित्सा नहीं आती, इसलिये वैद्यकका व्यवसाय करनेवालेको चरक अवश्य पढ़ना चाहिये। यह ग्रन्थ सूत्रस्थान, विमानस्थान प्रभृति आठ भागोंमें विभक्त है। सूत्रस्थानमें हज़ारों कामकी बातें, संक्षेपमें, बड़ी ही खूबीसे लिखी गई हैं। इस भागके पढ़नेसे वैद्यको कामकी हज़ारों बातें मालूम हो जाती हैं। विमानस्थानमें रसायन अर्थात् फिजियोलाजी और कैमि-ष्ट्रीका संक्षिप्त वर्णन है। इसमें न्यायशास्त्रका अधिक अंश है, इससे मामूली अक्लवालोंको यह भाग बुरा मालूम होता है। शारीर-स्थानमें शरीरके अङ्गोंके वर्णन के सिवा—वेदान्त, सांख्य और वैराग्य

का ज़िक्र बड़ोही खूबीसे किया गया है। आठवाँ सिद्धिस्थान है। इसमें कुछ सवाल जवाब बड़े ही कामके हैं। सारांश यह, कि इस ग्रन्थका प्रत्येक भाग बड़ाही उपयोगी है।

चरक के बाद "सुश्रुत" का नम्बर है। यह महात्मा विश्वामित्र के पुत्र थे। इन्होंने अपने पिता की आज्ञा से, प्राणियोंके उपकारार्थ, एक सौ ऋषिपुत्रों के साथ, काशी जाकर, काशिराज दिवोदास से आयुर्वेद सीखा। कहते हैं, महाराज दिवोदास धन्वन्तरिके अवतार थे। उन्हों ने इन्द्रके कहनेसे इस लोकमें जन्म लिया था। काशिराज सभी ऋषिपुत्रों को आयुर्वेद सिखाते थे, मगर उनके शागिर्दोंमें सुश्रुत सबसे तेज़ थे। आप गुरुके उपदेशों को खूब ध्यान लगाकर सुनते थे। कहते हैं, इसीसे आपका नाम "सुश्रुत" पड़ गया।

सुश्रुतने पढ़-लिखकर अपने नामका जो ग्रन्थ लिखा, उसीको आजकल "सुश्रुत" कहते हैं। इस ग्रन्थमें ज़र्राही या सर्जरी खूब अच्छी तरह लिखी है। सुश्रुत से अच्छी शस्त्र-चिकित्सा हमारे और किसी ग्रन्थमें नहीं है। इसमें रोगों की संख्या और चिकित्सा भी चरक से अधिक है। यह ग्रन्थ पांच भाग और एकसौ बीस अध्यायों में विभक्त है। इन पाँचों के सिवा एक "उत्तरतन्त्र" और है। उसमें ६६ अध्याय हैं और उसमें चिकित्सा खूबही अच्छे ढँगसे लिखी है। चरक से यह ग्रन्थ कम नहीं है, अतः वैद्यों को इसे भी अच्छी तरह पढ़ना चाहिए; क्योंकि केवल एक शास्त्र के पढ़ने से कोई वैद्य नहीं बन जाता। यों तो जो एकमें है वही सबमें है, पर बारीक नज़र से देखा जाय, तो जो एकमें है वह दूसरे में नहीं; इसी से जितने अधिक ग्रन्थ देखे जायँ उतना ही अच्छा हो।

चरक और सुश्रुत के बाद "वाग्भट" का नम्बर है। यह ग्रन्थ भी अव्वल दर्जेका समझा जाता है। चरक, सुश्रुत और वाग्भट,—इन तीनोंको ही "वृहत्त्रयी" कहते हैं। जो इन तीनोंको पढ़ लेते हैं, वह अच्छे वैद्य समझे जाते हैं।

वाग्भट महोदय महाभारत के ज़मानेमें थे। कहते हैं, आप महाराज युधिष्ठिर के प्रधान वैद्य थे। किसी-किसीने लिखा है कि, आप ईसासे दो सौ वर्ष पहले हुए थे। खैर, कुछ भी हो, इस में ज़रा भी संशय नहीं कि, आप अपने समयके नामी वैद्य हुए। आपने चरक और सुश्रुत का सहारा लेकर जो ग्रन्थ लिखा है, उस का नाम "अष्टाङ्ग हृदय" है; पर वह "वाग्भट" के नाम से अधिक प्रसिद्ध है।

वाग्भट के बाद "वङ्गसेन" का नम्बर है। कोई कहता है, आप विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दीमें हुए और कोई कहता है कि चार पाँच सौ वर्ष पहले आप बङ्गालमें मौजूद थे। आपने भी चरक, सुश्रुत और वाग्भटके आधार पर अपने नामसे एक ग्रन्थ लिखा है, जो "वङ्गसेन" के नाम से मशहूर है। आपकी चिकित्सा-पद्धति बहुत ही उत्तम है। आपने जो लिखा है, वह बहुत ही सरल रीतिसे लिखा है, और ऐसे अच्छे ढँगसे लिखा है कि, जो विषय दूसरे ग्रन्थोंमें आसानी से समझमें न आता हो, वह इसमें बड़ी ही आसानीसे समझ में आ जाता है। इसके सिवा, इसमें एक और खूबी है, कि जो विषय और ग्रन्थोंमें नहीं हैं वह भी इसमें मिलते हैं। यह ग्रन्थ भी वैद्योंके पढ़ने-योग्य है।

वङ्गसेन के बाद माधवाचार्य्य-लिखित "माधव निदान" का नम्बर है। कहते हैं, आप, ईसाकी बारहवीं सदीमें, विजयनगरके राजाके प्रधान मन्त्री थे। सुप्रसिद्ध सायण आचार्य्य आपके भाई थे। आपने अलग-अलग विषयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, पर चिकित्सा-शास्त्र के सम्बन्धमें आपका लिखा "माधव निदान" ही सर्व्वोत्तम है। यद्यपि इसमें आजकलके अनेक रोगों के निदान नहीं हैं, तथापि इस काम के लिये इससे अच्छा ग्रन्थ और नहीं है, इसीसे प्रत्येक वैद्य इसे अवश्य पढ़ता है।

माधवनिदानके बाद "भाव प्रकाश" है। इसके लेखक मदराम

प्रान्त के रहनेवाले भाव मिश्र महोदय हैं। आपने भी अपने नामसे एक ग्रन्थ लिखा है। उसका नामही "भावप्रकाश" है। यद्यपि आपने अपना ग्रन्थ चरक, सुश्रुत आदि के आधार पर लिखा है, तथापि आपने अपनी ओरसे भी खूब काम किया है। पोर्चूगीज़ या पुर्त्तगाल-निवासी आपके समयमें भारतमें आ गये थे, इससे आपने फरङ्गिस्तानसे आनेवाले फिरङ्ग प्रभृति रोगोंका भी ज़िक्र किया है। यह ग्रन्थ भी वैद्योंके पढ़ने-योग्य है।

भाव प्रकाशके बाद "शार्ङ्गधर" का नम्बर है। शार्ङ्गधर नामके किसी आचार्य्यने अपने नामसे यह ग्रन्थ लिखा है। आपने और सब विषय बिल्कुल संक्षेपमें लिख कर, रोगोंके नाश करनेवाले नुसखे खूबही अच्छे लिखे हैं। मालूम होता है, आपने अपने आज़माये हुए नुसखे ही इस ग्रन्थमें लिखे हैं; क्योंकि समय पर इस ग्रन्थके नुसखे, अक्सर, अक्सीर का काम दिखाते हैं।

इन ग्रन्थरत्नोंके सिवा और भी चक्रदत्त, वैद्य-विनोद, वैद्यमनोत्सव, भैषज्यरत्नावली प्रभृति अनेक वैद्यक-सम्बन्धी ग्रन्थ हैं; पर भिषक्-श्रेष्ठ पण्डितप्रवर लोलिम्बराज महोदयका लिखा "वैद्यजीवन" नामक ग्रन्थ हमें बहुत पसन्द है। आपने, अपनी प्रियतमाके प्रश्नोंके उत्तरके मिससे, अनेक रोगोंके अचूक नुसखे कह डाले हैं। आपने भी अपने परीक्षित नुसखे ही कहे हैं, ऐसा मालूम होता है। आपके छोटेसे काव्यके पढ़नेमें बड़ा मज़ा आता है।

हमने ऊपर जिस क़दर ग्रन्थोंके नाम लिखे हैं, उनके गुरुसे अच्छी तरह पढ़लेने पर, मनुष्य "पूर्ण वैद्य" हो सकता है। परन्तु जिस तरह आजकलके वकील विकालत पास कर लेने पर भी, सदा 'ला रिपोर्टों' को देखते रहते हैं; उसी तरह वैद्यों को भी अनेक वैद्योंके अनेक ग्रन्थ, जहाँ तक मिल सकें, मँगा-मँगा कर पढ़ने और मनन करने चाहिएँ।

हमारा आयुर्वेद संसारमें सबसे प्राचीन और पहला है, यह बात हम ऊपर लिख आये हैं, किन्तु ऊपर हमने अपने कथनके सिवा और कोई प्रमाण नहीं दिया, इसीलिये यहाँ हम कुछ पाश्चात्य विद्वानोंके वचन उद्धृत करके, अपने कथनकी पुष्टि करनेमें कोई ऐब नहीं समझते।

प्रोफेसर रायली साहब लिखते हैं,—"हिन्दुओंका आयुर्वेद पुराना है। अरब और यूनानवालोंसे बहुत पहले का है।"

प्रोफेसर विलसन महोदय लिखते हैं,—"भारतमें बहुत प्राचीन कालसे चिकित्सा, ज्योतिष और दर्शन-शास्त्रके पारदर्शी विद्वान् मौजूद हैं।"

पण्डितवर राइट आनरेबिल एलफिन्सस्टन महोदय लिखते हैं,—"भारतवर्षसे ही यूरोपवालोंने चिकित्सा-विद्या सीखी थी। हिन्दुओं का रसायन-शास्त्रका ज्ञान विस्मयजनक है एवं आशा और अनुमानसे अधिक है।"

"अयुल-उल" नामक एक अरबी-ग्रन्थ में लिखा है,—"आठवीं सदीमें, हिन्दुस्तानके पण्डित बग़दादकी राज-सभामें आयुर्वेद और ज्योतिषकी शिक्षा देते थे। सरक, ससंस और वेदान,—ये तीन चिकित्सा-ग्रन्थ हिन्दुस्तानसे अरबमें लाये गये थे।"

अरबसे इन ग्रन्थोंका अनुवाद यूरोपमें गया। सत्रहवीं शताब्दी तक, अरब की चिकित्सा-प्रणाली यूरोपीय चिकित्सा की मूल थी।

प्राचीन भारतवासी मुर्दों को चीर-फाड़ कर ज्ञान लाभ करते थे और अस्त्र-चिकित्सा भी करते थे, जिसके लिये वे १२७ प्रकारके अस्त्र व्यवहार करते थे।

डाक्टर रायलीने लिखा है,—"वास्तवमें यह बड़ी ही विस्मयकर बात है कि, उस समयके चिकित्सक मुर्देकी पथरीको काट कर बाहर निकाल लेते थे ; यन्त्रों-द्वारा पेटसे बच्चे को निकाल सकते थे। भारत-वासियोंने ही सब से पहले रसायन-विद्या की आलोचना आरम्भ की थी। धातु-द्वारा बनी हुई औषधियोंके सेवन की व्यवस्था भी चरक-सुश्रुतमें पाई जाती है।"

ईसामसीहसे चार शताब्दी पहले, यूरोपके दिग्विजयी सिकन्दर की सेना की चिकित्साके लिये हिन्दू वैद्य नियुक्त हुए थे। असाध्य रोगोंके नष्ट करनेके लिये, वह बहुतसे भारतीय वैद्यों को, बड़े मान-सम्मानसे, अपने साथ ले गया था।

ईरानके खलीफा हारूँरशीद अपनी चिकित्साके लिये हिन्दू वैद्यों को रखते थे।

प्रसिद्ध हकीम जालीनूस अपनी पुस्तकमें लिखता है,—"आयु-र्वेद-विद्या पहले हिन्दुस्तानसे मिस्रमें और मिस्रसे यूनान और अरबमें गई। मेरे उस्ताद हकीम अफलातूनने हिन्दूस्तान जाकर 'कालज्ञान'के ३६ लक्षण और बहुतसे ग्रन्थ पढ़े थे। उनका सार-भाग वह एक तख़्ती पर लिख कर गलेमें लटकाये रहते थे। उस तख़्ती की विद्या को वह किसी शागिर्द को न सिखाते थे। मरते समय उन्होंने अपनी बीबीसे कहा कि, मेरे मरने पर इस तख़्ती को मेरी क़ब्रमें गाड़ देना। उनकी बीबीने उनके मरने पर वह तख़्ती उनके साथ क़ब्रमें गड़वा दी। मुझे इस बातसे बड़ा अचम्भा हुआ। एक रोज़ क़ब्र खोद कर मैंने वह तख़्ती निकाल ली। पीछेसे मैंने उस विद्यामें अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। मेरी देखा-देखी अरस्तू और उनके शिष्योंने भी हिन्दुस्तान जाकर चिकित्सा-शास्त्र पढ़ा।"

एक चिकित्सा-शास्त्रही नहीं और भी अनेक विद्यायें भारतही से सब देशोंमें पहुँची हैं। गणित-शास्त्र, दशमलव, रेखागणित, त्रिकोणमिति और वीज-गणित का भी सबसे पहले भारतमें ही आविष्कार हुआ था।

पण्डितवर कोलब्रुक और वेण्टनी साहबके मतसे, भारतमेंही ज्योतिष-विद्याकी चर्चा सबसे प्रथम हुई। ईसा की पाँचवी शताब्दीमें आर्यभटने चन्द्र और सूर्य्यग्रहणका वास्तविक कारण और पृथ्वीका मेरुदण्ड पर आवर्त्तन आविष्कार किया था। उन्होंने पृथिवी की परिधि का जो निर्णय किया था, उसमें और पाश्चात्य पण्डितोंके निर्णयमें बहुतही कम प्रभेद है। पृथ्वी का गोल होना भी प्राचीन भारतने स्थिर कर लिया था।

जर्मन पण्डित सोपनहर साहबने लिखा है,—"ईसामसीहके धर्मका मूल भारतवर्ष ही है। इसीसे ज्ञात होता है कि, सम्भवतः भारतसेही ईसाई धर्म गृहीत हुआ है।"

फरासीसी दार्शनिक कुंजेने लिखा है,—"भारतके दर्शनमें ऐसा गम्भीर सत्य भरा हुआ है कि, पाश्चात्य पण्डित गम्भीर गवेषणा कर चुकने पर जिस स्थान पर पहुँचे हैं, वहाँ पर प्रत्येक दर्शनके सत्य को देख कर स्तम्भित हुए हैं। उससे आगे बढ़नेकी शक्ति उनमें नहीं है। हम लोग भारतके दर्शनके आगे सिर झुका कर वाधित हैं। हमलोग इस वातके स्वीकार करने को बाध्य हैं कि, सर्व्वश्रेष्ठ दर्शन—मानवजातिके शैशव-क्षेत्र—पूर्व्वी प्रदेशमें ही सबसे पहले उत्पन्न हुआ है।"

पण्डितवर मैक्समूलर महोदयने लिखा है,—"भारतका वेदान्त सर्व्वोत्कृष्ट धर्म और सर्व्वोत्कृष्ट दर्शन है।"

सङ्गीतने भी सबके पहले भारतमें ही जन्मग्रहण किया था। भारतके सप्त स्वर फारस होकर अरबमें पहुँचे और वहांसे ग्यारहवीं शताब्दीके आरम्भमें यूरोप पहुँचे।

बस, अब और अधिक लिखने की ज़रूरत नहीं। ऐसे-ऐसे हज़ारों प्रमाण हैं जिनसे साबित होता है कि पृथ्वीतल पर जितने धर्म हैं, जितनी विद्यायें हैं, उन सबका उद्गम-स्थान भारतवर्ष ही है, इसमें ज़रा भी शक और शुबह नहीं।

पाठक! ज़रा विचारिये तो सही, एक दिन वह था कि सिकन्दरे आज़म, अपनी सेना की चिकित्साके लिये, भारतीय वैद्यों को बड़े सम्मान और आदरसे साथ ले गया था; एक दिन वह था कि ईरानके खलीफ़ा हारूँरशीद अपनी चिकित्साके लिये भारतीय वैद्योंको रखते थे; एक दिन वह था कि अरस्तू और अफलातून जैसे हकीम भारत से आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करके जगत्के श्रेष्ठ चिकित्सकोंमें परिगणित हुए थे; और एक दिन आज का है, कि भारतीय चिकित्सा निकम्मी समझी जाती है। कहिये, आयुर्वेदके उस गौरव, आयुर्व्वेद को उस उन्नति और आजकी अवनतिमें ज़मीन-आस्मान का अन्तर है न? कहाँ वे दिन और कहाँ आजके दिन! सोचनेसे अविरल अश्रुधारा बहने लगती है। हम तो मनुष्य हैं, रक्त और मांससे बने हैं; हमारे आँसू न रुकें, इसमें आश्चर्यही क्या? इस काठ की लेखनीके भी आँसू नहीं रुकते!

हाय! एक दिन भारतीय चिकित्सा-शास्त्रने दुनियामें सर्व्वोच्च आसन ग्रहण किया था और आज उसे सबसे नीचा आसन भी नहीं मिलता। जो यूरोपियन हमें आज अर्द्ध-सभ्य, जङ्गली और मूर्ख बताते हैं; हमारी चिकित्सा-विद्या की हँसी उड़ाते हुए उसे निकम्मी बताते हैं, उनके पूर्व्व पुरुष जिस ज़मानेमें सचमुच के वनमानुष थे, अपने रहनेके लिये घर बनाना भी न जानते थे, ज़मीनमें जानवरों की तरह भिटे खोदकर रहते थे, उनसे हज़ारों लाखों वर्ष पहले, बल्कि उनके गुरु सभ्यताभिमानी ग्रीस और रोमके सभ्यता सीखने और होश सँभालनेसे भी बहुत पहले, भारतमें ऐसे-ऐसे वैद्यरत्न हो गये हैं जिन्होंने मनुष्योंके कटे सिर जोड़ दिये हैं, अन्धोंको

सूझता कर दिया है और बूढ़ोंको नौजवान पट्ठा बना दिया है। क्या अश्विनीकुमारों द्वारा ब्रह्माके कटे सिरके जोड़े जानेकी बात निरी कपोल-कल्पना ही है? क्या इन्द्रका भुजस्तम्भ रोग और चन्द्रमाका क्षय रोग आराम होनेकी बात निरी गप्प ही है? नहीं, हरगिज़ नहीं; अगर और देशों की पुरानी-पुराने किताबों की बातें बिल्कुल मिथ्या हैं, तो हमारे पुराणोंकी बातें भी मिथ्या हो सकती हैं। अगर उनमें लिखी बातें सत्य हैं, तो हमारे यहाँ की बातें भी निस्सन्देह सच हैं। भेद इतना ही है, कि आज भारतका सितारा बुलन्दी पर नहीं है, आज इसके दिन अच्छे नहीं हैं, आज इसकी दशा गिरी हुई है, इसीसे सारी बातें झूठी हैं। पर सत्य कभी छिपाये नहीं छिपता, इसीसे सत्यवादी पक्षपात-शून्य यूरोपीय विद्वानोंने भी आयुर्वेद के गौरव की बात मुक्तकंठ से स्वीकार की है।

जबतक भारतमें विदेशियों का पदार्पण नहीं हुआ, तब तक भारतीय चिकित्सा-विद्या दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करती रही। उनके आगमनसे ही इसकी अवनति का सूत्रपात हुआ। जबसे भारतके अन्तिम हिन्दू सम्राट् दिल्लीश्वर महाराज पृथ्वीराज का पतन हुआ, और मुसल्मान-शासन इस अभागे देशमें जारी हुआ, तभीसे धीरे-धीरे आयुर्वेद की अवनति आरम्भ हुई, भारतका अमूल्य रत्न, पृथ्वीका गौरव-स्वरूप, हमारा आयुर्वेद-शास्त्र अवनत अवस्था को प्राप्त होने लगा।

हिन्दू राजाओंके ज़मानेमें आयुर्वेद संसार की सभी चिकित्सा-विद्याओंकी अपेक्षा श्रेष्ठ और भारत-सन्तानोंकी स्वास्थ्यरक्षा का एक-मात्र अवलम्ब था। भारतीय चिकित्सा भारतीय सन्तान की मातावत हितकारिणी थी। हमारे पूर्व्वज भारतीय चिकित्साके प्रभावसेही शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य लाभ करके, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष,—इन चारों पदार्थों की प्राप्ति करते थे; और आज-कलकी अपेक्षा दीर्घजीवी, बली एवं नीरोग होते थे।

प्रथम तो आयुर्वेद की रीति पर चलनेसे कोई रोगी होता ही न था, यदि होता भी था, तो वह सहज ही में आरोग्य लाभ करता था और फिर उसे जन्म-भर उस रोगके दर्शन न होते थे। आजकल की तरह उस ज़मानेमें रोगियों और डाक्टरों की भरमार न थी।

उस ज़मानेमें आजकलकी तरह यहाँ वालों को किसी भी रोगमें विदेशी चिकित्सा का आश्रय न लेना पड़ता था, क्योंकि आयुर्वेद विद्या पूर्ण थी। गाँव-गाँवमें आयुर्वेदीय पाठशालायें थीं, इसलिये सद् वैद्योंका अभाव न था। यहाँकी जड़ी-बूटियोंसे अल्प प्रयास और कम खर्चमेंही रोगी रोगमुक्त हो जाते थे। यहीं से हज़ारों औषधियाँ अरब, ईरान और रूम होकर यूनान और इटली में पहुँचती थीं और वहाँ से स्पेन, फ्रान्स, इङ्गलैण्ड और जर्मनी में फैल जाती थीं। वहाँ से उनके एवज़ में प्रभूत धन भारत में आता था। उसी ज़माने में यह भारत-वसुन्धरा पृथ्वीका स्वर्ग थी।

मुसल्मानी ज़माने में मुसल्मान हकीमों की क़दर हुई और भारतीय वैद्यों की बेक़दरी हुई। उनका मान बढ़ा, इनका मान घटा। जगह-जगह उन्हीं की पूछ होने लगी। अज़ाखर, अफ़्त-यून, गावज़ुबाँ, गुलेबनफ़्शा आदि ने सोंठ मिर्च पीपर आदिके स्थान पर अपना अधिकार जमा लिया। ज़माने ने एकदम पल्टा खाया, और क्या से क्या हो गया! राजा-प्रजा सभी की नज़रों में आयुर्वेदीय चिकित्सा हेच जँचने लगी। वैद्योंकी रोजी मारी गई, हकीमों के पौबारे होने लगे। औषधालय उठ गये, उनकी जगह दवाख़ाने और शफ़ाख़ाने खुल गये। पंसारियों की दवायें मिट्टी की हाँड़ियों और टाट की थैलियों में पड़ी-पड़ी सड़ने-गलने और पुरानी होने लगीं। काम न पड़ने से पसारी वेचारे उनके नाम तक भूलने लगे। पंसारियों का रोज़गार अत्तारों ने छीन लिया। जहाँ देखो वहीं तुख़्मख़तमी, गुलेनीलोफ़र, गुलेबनफ़्शा की चर्चा होने लगी। इतने पर भी ख़ैर यह हुई कि, आयुर्वेद परसे लोगों का विश्वास

एकादम ही उठ न गया। उस ज़माने में भी सम्राट् कुल-तिलक अकबर जैसे पक्षपातहीन, प्रजावत्सल बादशाह आयुर्वेद की क़दर करते थे और अपने दरबार में विद्वान् वैद्यों को रखते थे। इसीसे आयुर्वेद-विद्या की मृत्यु नहीं हुई, वह जीवित बनी रही। हाँ, उसका वह पूर्व्व गौरव, उसकी वह महत्ता न रही।

मुसल्मानों के अत्याचारी शासन का अन्त होने पर—न्यायप्रिय, प्रजावत्सला ब्रिटिश गवर्नमेण्ट इस देश की मालिक हुई। ब्रिटिश-शासन में अँगरेज़ों ने हमारे शास्त्रोंका अँगरेज़ी भाषामें उलथा करवाया। इङ्गलेण्ड-निवासियों ने अविश्रान्त परिश्रम और उद्योग से अच्छे-अच्छे रत्न चुन लिये और अपनी चतुराई से उनका रूपान्तर करके, उन्हें पहले से उत्तम बना दिया। यहाँ से ही हज़ारों दवाएँ विलायत लेजा लेजाकर, उनके सत्त, पौडर, गोली, टिंचर, तेल प्रभृति बना-बनाकर, उनको मनोमुग्धकारिणी शीशियों और डिब्बियोंमें बन्द करके, उनके ऊपर रङ्गीन लेबल और विधानपत्र लगा-लगाकर यहाँ भेजने लगे। इसमें शक नहीं, कि उन्होंने यह काम बड़े कठिन परिश्रम और अध्यवसाय से किया, इसलिये वे किसी प्रकार से दोष-भागी नहीं। यह तो मनुष्य का धर्म्म ही है। दोष-भागी हम और हमारे पिछली सदी में होनेवाले पूर्व्व-पुरुष हैं, जो आलसी की तरह हाथ पर हाथ धरे बैठे देखा किये। अब जब कि रोग एकदम असाध्य हो गया, तब आँखें खुली हैं और अब आयुर्वेद की उन्नति-उन्नति कह कर लोग चिल्लाने लगे हैं। मगर अब चूंकि रोगने घर कर लिया है, इसीलिए वह सहज में नहीं जा सकता।

अब क्या दशा है? सुनिये,—जगह-जगह ख़ैराती अस्पताल खुल गये हैं, मुफ़्त में इलाज होता है, साधारण रोग सहज में आराम हो जाते हैं, दवाओं के कूटने-पीसने और काढ़े वग़ैरः के औटाने-छानने की दिक़्क़तें मिट गयीं हैं। इसी से अब सब लोग उधर ही ढल पड़े हैं। अस्त्र-चिकित्सा में डाक्टरों के हाथ की सफ़ाई

देखकर, तो यहाँ के लोगों ने डाक्टरों को धन्वन्तरि का बाबा ही समझ लिया है। सबको यह विश्वास हो गया है कि, यूरोपीय चिकित्सा के मुक़ाबले में आयुर्वेदीय चिकित्सा कोई चीज़ नहीं।

जिन्होंने अङ्गरेज़ी पढ़ी है, जिन्होंने विद्वत्तासूचक डिग्रियाँ प्राप्त की हैं, जो वकील, बेरिस्टर और जज प्रभृति होगये हैं, वे भारतवासी हिन्दू-सन्तान होने पर भी आयुर्वेद-चिकित्सा को हिक़ारत की नज़र से देखते हैं और यूरोपीय चिकित्साका आदर करते हैं। ज़रा-ज़रा से रोगों में, जिन्हें पहले यहाँ की स्त्रियाँ भी आराम कर लेती थीं, डाक्टरों को ही बुलाते और उनकी मुट्ठियाँ गर्म करते हैं। यह सब उन्हें स्वीकार है, पर वैद्य महाशय की शकल देखना मञ्जूर नहीं। इन बड़े-बड़ों की देखा-देखी साधारण लोगों का झुकाव भी उधर ही हो गया है। उन्हें भी आयुर्वेदीय चिकित्सा अच्छी नहीं लगती। अब शहरों के रहनेवाले पन्द्रह आने लोग डाक्टरी इलाज कराते हैं। जो पहले विलायती दवाओं से कोसों दूर भागते थे, जो प्राणों के कण्ठ में आ जाने पर भी मद्य-मिश्रित दवा खाना पसन्द न करते थे, वे भी आज कल शराब मिली हुई दवायें गटागट पीते और चरबी-मिश्रित मर-हमों को शरीर पर लगाते नहीं हिचकते। अब सोडावाटर और लेमनेड बिना तो उनको रोटी ही नहीं पचती। ज़रा खाँसी बढ़ी कि, 'काडलिवर आयल' पीना शुरू किया।

नतीजा यह हुआ, कि वैद्योंका रोज़गार बिल्कुल मारा गया। जिनके घरोंमें पीढ़ियों से चिकित्सा-व्यवसाय होता था, वे भी अब पेट भरने के लिए खेती, दूकान्दारी और नौकरी करके अपना और अपने परि-वार का पेट पालने लगे। जुलाहों ने जिस तरह देशी कपड़े की पूछ न होनेसे कपड़ा बिनना छोड़ कर दूसरा धन्धा कर लिया, छीपियों ने छींट रँगना छोड़ दिया; उसी तरह पूछ न होने से, ग्राहकों के न मिलने से, पेट-भराई न होने से, वैद्यों ने निरुत्साहित होकर अपना पुश्तैनी धन्धा त्याग दिया। जिस धन्धे में लाभ नहीं होता, जिस

रोज़गार से कुटुम्ब-परिवार का पालन नहीं होता, उसे कोई भी नहीं करता।

जिस ज़मानेमें भारतमें आयुर्वेदकी तूती बोलती थी, यहाँ लाखों पंसारियों की दूकानें अव्वल दर्जे की थीं, उनके यहाँ हर तरह की उत्तमोत्तम औषधियाँ हर समय तैयार मिलती थीं। वे लोग रोज़-रोज़ काम पड़ने से दवाओं के नाम, रूप और गुण जानने में आजकलके अधिकांश वैद्योंसे अच्छे होते थे। वैद्य लोग जिनके यहाँ अच्छी और ताज़ी चीज़ें मिलती थीं, उन्हीं के यहाँ अपने नुसखे भेजते थे। जो पसारी पुरानी और सड़ी-घुनी दवाएँ रखते थे, उनसे वे क़तई सम्पर्क न रखते थे; इससे पन्सारियोंका धन्धा मारा जाता था। इस भय के मारे वे सदा आयुर्वेद के नियमानुसार नयी पुरानी जैसी-जैसी दवाएँ रखनी चाहिएँ, वैसी-ही-वैसी रखते थे। अब पंसारी वैसा काम नहीं करते। काम न पड़ने से दवाओंके नाम और रूप गुण आदि भूलते जाते हैं। नयी-पुरानी का तो उन्हें ख़याल ही नहीं। पांच बरस हो जायँ, चाहे एक युग हो जाय, जब तक हाँड़ी या थैली में दवा रहती है, वेचते रहते हैं। अनेक बार एक के बदले में दूसरी दवा दे देते हैं। प्रथम तो वेचारों को रोज़-मर्रः काम में आनेवाली सोंठ, मिर्च, हल्दी, असगन्ध आदि सौ-पचास दवाओं के सिवा नाम ही याद नहीं। यदि किसी को याद भी होते हैं, तो वह इच्छित औषधि के अभाव में, ग्राहक के मारे जाने के भय से, दूसरी ही कोई चीज़ सिर चेप देता है, क्योंकि वैद्य महोदय को तो स्वयं दवा की पहचान नहीं। पहलेके वैद्य चिकित्सा-के काममें आने वाली प्रत्येक जड़ी-बूटी को भली भांति पहचानते थे, स्वयं जङ्गलों में जाकर ले आते थे, इसलिये पसारी भी उनसे डरते थे। परन्तु आज-कल के अधिकांश वैद्य पसारियों से भी गये-बीते होते हैं। ये लोग पुस्तकों से नुसखे लिखकर ले जाते हैं और पसारी से कहते हैं, भाई ठीक-ठीक दवा देना। पसारी दो चार बार में

वैद्य जी के औषधि-ज्ञान की थाह ले लेता है और फिर मनमानी करने लगता है। कहिये, ऐसी दवायें क्या रोगों को आराम कर सकती हैं ? ऐसी-ऐसी बातों से ही आयुर्वेद बदनाम होगया है। जब असल हथियार ही की यह दशा है, तब चिकित्सा में सफलता कैसे हो ? सभी जानते हैं कि, जिसके पास अच्छे-अच्छे हथियार होते हैं, वही शत्रु को युद्ध मे परास्त कर सकता है।

आजकल की वैद्यक-शिक्षा, सिवा चन्द आयुर्वेद-विद्यालयों के, बिल्कुल निकम्मी होती है। अमृत-सागर या वैद्य जीवन को गुरु से पढ़ कर या स्वयं देखकर अनेक वैद्य बन जाते हैं। भला, ऐसे वैद्य इस कठिन काममें कैसे सफलता प्राप्त कर सकते हैं ? चिकित्सा करना बड़ी होशियारी और ज़िम्मेवरी का काम है। वैद्य की शरण में आये हुए रोगी का जीवन-मरण वैद्य की चिकित्सा-चातुरी पर ही निर्भर है। इसलिये पहले ज़माने के विद्वान् चिकित्सातत्त्व-सर्म्मज्ञ वैद्य उत्तमोत्तम शिष्यों को इस विद्या की शिक्षा देते थे। जिन मनुष्यों के स्वभाव में सहृदयता, दयालुता, परोपकारिता न देखते थे, उन्हें अपने पास तक न फटकने देते थे। धर्मभीरु विद्वानोंको अपना शिष्य बनाकर, उनसे अनेक प्रकारकी प्रतिज्ञायें कराकर और स्वयं निष्कपट भाव से विद्या पढ़ाने की प्रतिज्ञा करके, शिष्यों को आयुर्वेद की शिक्षा देते थे। उन्हें शास्त्रों को पढ़ाते, व्याख्यान देते, एक-एक विषय को खोल-खोल कर समझाते, उनकी शङ्काओं का समाधान करते और औषधियों की पहचान कराने के लिए उन्हें अपने साथ जङ्गल पहाड़ों में ले जाते थे। अस्त्र-चिकित्सा सिखाते समय खर-बूजे तरबूज़ आदि फलों पर चीर-फाड़ करना सिखाते थे। इस तरह परिश्रम करने से जब शिष्य आयुर्वेद में पारदर्शी होजाता था, बनौषधियों के नाम, रूप और गुण के पहचानने में परिपक्व होजाता था, शल्य शलाक्य और काय-चिकित्साके सर्वाङ्ग सीख लेता था, दवाओं का बनाना अच्छी तरह जान जाता था, चिकित्सा-कर्म में अनुभवी

हो जाता था, हस्तक्रिया में निपुण हो जाता था; तब गुरु महाशय उसको परीक्षा लेकर, उसे चिकित्सा-कर्म में हाथ डालने की आज्ञा देते थे। शिष्य भी जबतक पूर्ण पण्डित और अनुभवी न हो जाता था, गुरु का पीछा न छोड़ता था। इससे भी अधिक गुरु महाशय की सेवा-टहल और खुशामद करता था। जब चिकित्सा-कर्म में पूर्ण अभिज्ञता प्राप्त कर लेता था, तब गुरु से आशीर्वाद लेकर वैद्य का व्यवसाय करता था। कहिये, आजकल वैसे वैद्य-गुरु और शिष्य कहाँ हैं? आज-कल पहले की तरह कौन आयुर्वेद सीखता है और कौन सिखाता है? यदि पहले की पढ़ाई का नमूना कहीं मौजूद है, तो वङ्ग देश में कुछ अवश्य है। वहाँ के लोगों को आयुर्वेद पर कुछ श्रद्धा-भक्ति भी है; पर एक बङ्गाल से सारे भारत का पूरा नहीं पड़ सकता। वङ्ग देश में भी अब वह पुरानी बात नहीं है; दिन-पर-दिन कविराज घटते जाते हैं और मेडिकल हाल और फारमेसियाँ खुलती चली जाती हैं।

यद्यपि अब भी भारत में भिषक्श्रेष्ठ प्राणदाता सद्वैद्यों का नितान्त अभाव नहीं है, तथापि ऐसे पूर्ण वैद्य उँगलियों पर गिने जाने योग्य ही हैं। ऐसे उत्तम वैद्य, इतने लम्बे-चौड़े भारत में, ऊँट की दाढ़ में जीरे के समान हैं। आजकल अधिकता ढोंगी वैद्यों की है और ऐसे ही वैद्यों ने आयुर्वेद को बदनाम कर रक्खा है। आजकल वैद्यगुण-युक्त वैद्य कम हैं, किन्तु चरक में लिखे हुए छद्मचर या ढोंगी वैद्य बहुत हैं। ऐसे ढोंगी वैद्य दो चार तरह के तैल वग़ैरः बनाना सीख कर अपने तईं वैद्य कहते हैं। ये लोग गलियों में घूमा करते हैं या बाज़ारों में, जहाँ मनुष्यों का आवागमन अधिक होता है बैठे रहते हैं; कुछ ज़िलों की या तहसील की कचहरियों या छोटे-छोटे क़स्बों की धर्मशालाओं में अड्डा जमा लेते हैं। जहाँ किसी को बीमार देखते हैं, ऐसी बातें बनाने लगते हैं कि कच्ची समझ के लोग इनके फन्दे में फँस ही जाते हैं। इनमें से अनेक तो अमीरों तक पहुँच जाते हैं। बड़े लोगों

तक पहुँचने के लिये ये लोग बड़ी-बड़ी चालाकियों से काम लेते हैं । उनके नौकरों से मिल जाते हैं, उन्हीं के द्वारा अपनी सिफ़ारिश पहुँचवाते हैं । अमीरोंको बड़े क़ीमती-क़ीमती नुसख़े बतलाते हैं और रुपया वसूल करके स्वयं दवा तैयार करनेका ढोंग रचते हैं । जब उनसे रोगी आराम नहीं होता, रोगीका रोग बढ़ने लगता है, रोगी मरण-दशाको प्राप्त हो जाता है, तब वहाँसे अपना उल्लू सीधा करके चुपचाप नौ दो ग्यारह हो जाते हैं । ऐसे ढोंगियोंका यदि हम सविस्तर हाल लिखें, तो एक अलग पोथा हो जाय, इसलिये हम इतना इशारा ही काफ़ी समझते हैं ।

एक प्रकारके ढोंगी वैद्य और होते हैं ; जो इन मामूलियोंसे कुछ अच्छे होते हैं, पर चिकित्साके नितान्त अयोग्य होते हैं । ये अमृतसागर, वैद्य-जीवन, वैद्यविनोद, योगचिन्तामणि प्रभृति दो चार छोटे-छोटे ग्रन्थोंको इधर-उधरसे देख लेते हैं । वैद्योंकी तरह दो चार खरल, सौ-पचास शीशियाँ और डब्बे-डिब्बी तथा अमृतवान आदि रखते हैं । मौक़े-मौक़ेके दो चार श्लोक भी कण्ठ कर रखते हैं । प्रसङ्ग हो या न हो, हर समय उन्हें कहा करते हैं । रोग-परीक्षा इन्हें नहीं आती, मगर डण्डासी नाड़ी ज़रूर पकड़ लेते हैं । नाड़ी-द्वारा रोगका हाल न समझने पर भी, प्रतिष्ठा-भङ्ग होने के ख़यालसे, रोगीसे कुछ पूछते नहीं । अगर रोगी कहता है, कि वैद्यजी ! मेरे रोगकी हालात तो सुन लीजिये । रोगीके मुँहसे यह सुनते ही आप बिगड़ कर फ़रमाने लगते हैं, पूछने बतानेकी ज़रूरत नहीं । हमारे बाबा ऐसे थे कि रोगीकी नाड़ी मात्र देखकर, रोगीका कितनेही दिनों पहलेका खाया-पिया और बरसों पहले मरण-जीवनकी बात कह देते थे । ऐसे वैद्य खूब पुजते हैं, रोगी और उसके सम्बन्धी इन्हें साक्षात् धन्वन्तरि समझने लगते हैं । ऐसे वैद्य महोदय रोगियोंको सीधा यमसदन पहुँचाते हैं । अगर रोगकी अवस्था ख़राब देखते हैं, तो ऐसी-ऐसी दवाएँ तजवीज करते हैं, जिन्हें रोगी

मुहैया न कर सके या वह आसानीसे न मिल सकती हों। जब रोग आराम नहीं होता, तब कहने लगते हैं कि हम क्या करें, जब हथियार ही नहीं तब शत्रुका नाश कैसे हो? यदि दैवात्, किसी तरह रोग में कमी देखते हैं, तब अपनी तारीफोंके पुल बाँधने लगते हैं और ज़मीन-आस्मानको एक कर देते हैं।

अब जबकि हमारे देशके वैद्योंकी यह हालत है, तब हमारे आयुर्वेदकी बदनामी क्यों न हो? देशी-विदेशी उसकी हँसी क्यों न करें? हाय! सदा अवस्था किसीकी यकसाँ नहीं रहती। जिस तरह दिन-भरमें सूर्य्यकी कई अवस्थायें हो जाती हैं, वैसेही सबकी अवस्थायें बदलती रहती हैं। जिसका उत्थान होता है, उसका पतन भी निश्चयही होता है। एक दिन जो भारत चिकित्सा, ज्योतिष, गणित, दर्शन प्रभृति विद्याओंमें सब देशोंका सिरमौर था; जहाँ धन्वन्तरि, अश्विनीकुमार, चरक, सुश्रुत जैसे भिषक्‌श्रेष्ठ पैदा हुए थे और जो सारे जगत्‌का गुरु था,—आज उसी भारत और उसकी आयुर्वेद-विद्याकी यह दुर्गति! भगवान् ही जानें इसके वे दिन कब फिरेंगे?

आयुर्वेदकी उन्नति कैसे हो ?

पीछे हम आयुर्वेदकी अतीत और वर्त्तमान दशाका दिग्दर्शन कर आये हैं। उससे पाठकोंने समझ लिया होगा कि, जो भारतीय चिकित्सा एक दिन आस्मानसे बातें करती थी, आज वही कालके प्रभावसे, भारतवासियोंके अपने दोषसे, रसातलको पहुँच गई है। आयुर्वेद-विद्या हमारी बपौती है, वही हमारे काम आयेगी। कहा है, कि, खोटा पैसा और खोटा बेटा बुरे वक्तमें काम आता है। मतलब यह है कि, अपनी चीज़ ही समय पर काम आती है, इसलिये आगा-पीछा सोचकर, हमें अपनी चिकित्सा-विद्याकी उन्नति करनी चाहिये। अगर हम भारतवासी ही इसके उद्धारके लिये प्रयत्नशील न होंगे, तन-मन और धनसे इसकी उन्नतिके लिए मुस्तैद न होंगे; तो और किसे ग़रज़ पड़ी है, जो इसकी उन्नतिकी फ़िक्र करेगा ? अगर हम इसी तरह आलस्यमें पड़े रहेंगे, इसकी ओर नज़र उठा कर भी न देखेंगे, तो इसकी अवस्था और भी ख़राब हो जायगी। अभी तो ऐसा कुछ नहीं बिगड़ा है। रोग असाध्य नहीं, किन्तु कष्ट-साध्य है; भरपूर चेष्टा करनेसे हालतके सुधर जानेकी सम्भावना है। इसलिये हमें कटिबद्ध होकर, इसकी उन्नतिके उपाय खोज निकालने और करने चाहियें।

हमारी छोटीसी अक्लमें, इसकी उन्नतिके, निम्नलिखित चन्द उपाय अच्छे जँचते हैं :—

(१) विलायती दवाओंसे परहेज़ किया जाय और स्वदेशी दवाओंसे प्रेम।

(२) जगह-जगह आयुर्वेद-विद्यालय खोले जायँ।

(३) चिकित्सा-सम्बन्धी ग्रन्थोंका हिन्दीमें—सरल हिन्दीमें—अनुवाद कराकर प्रकाशन किया जाय।

(४) संस्कृत और हिन्दी, दोनों भाषाओंमें वैद्यक-परीक्षायें ली जायँ।

(५) जिन वैद्योंने, किसी स्कूल से या प्राइवेट तौर से संस्कृत या हिन्दीमें वैद्यक-परीक्षा पास की हो, उन्हींसे इलाज कराया जाय। मूढ़ वैद्योंको पास भी न आने दिया जाय।

(६) वैद्यका धन्धा करनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्य जबतक पूर्ण वैद्य न हो लें, तबतक चिकित्सा-कर्ममें हाथ न डालें; बल्कि ऐसा करनेको घोर पाप समझें।

आयुर्वेदका पढ़ना सभी के लिये हितकर है।

मनुष्यमात्रको थोड़ा या बहुत चिकित्सा-विद्या का अभ्यास अवश्य ही करना चाहिए। क्योंकि चिकित्साशास्त्रके पढ़नेसे दीर्घायु प्राप्त करनेके उपाय, असमयकी मृत्युसे बचनेके उपाय, सदा निरोग या तन्दुरुस्त रहनेके नियम, रोग हो जानेपर रोगोंके नाश करनेके उपाय प्रभृति हज़ारों जानने-योग्य विषय मनुष्यको मालूम होते हैं। जो आयुर्वेद-विद्यासे बिल्कुल कोरे रहते हैं, यहाँ तक कि दिनचर्य्या और रात्रि-चर्य्या भी नहीं जानते, वे निश्चयही अपनी अज्ञानताके कारण सदा रोगोंके फन्देमें फँसे रहते हैं और थोड़ी उम्रमें ही मर जाते हैं; लेकिन जो लोग थोड़ी-बहुत आयुर्वेद विद्या सीख लेते हैं, आयुर्वेदके नियमोंका पालन करते हैं, वे रोगोंसे सदा बचे रहते हैं और लम्बी उम्र तक जीते हैं तथा अपना और पराया दोनोंका भला करते हैं। जहाँ वैद्य नहीं होता, वहाँ रोग होनेपर अपनी और अपने पड़ोसीकी जीवन-रक्षा करते हैं।

शास्त्रमें मनुष्यकी एकसौ एक मृत्युयें लिखी हैं। उनमेंसे एक मृत्यु तो सभीका संहार करती है। उससे कोई भी किसीको बचा नहीं सकता और न स्वयंही बच सकता है; लेकिन और मृत्युएँ जो आगन्तुक कारणोंसे होती हैं, उनसे वैद्य मनुष्यको बचा सकता है। जब आयुर्वेदके जाननेवाला औरोंकी रक्षा कर सकता है, तब

स्वयं भी सावधान रहनेसे बच सकता है और यदि कारण उपस्थित होही जाय, तो अपनी रक्षा भी कर सकता है। इसके सिवा, आयुर्वेदके जाननेवाला, किसी अवस्थामें भी, जीविका बिना भूखा नहीं मर सकता। आफत-मुसीबत, देश-परदेश, ग्राम और नगर में, हर कहीं, हर हालतमें, वह अपनी और अपने साथियोंकी जीविका का उपाय कर सकता है। इस विद्याका पढ़ना किसी दशा में भी व्यर्थ नहीं होता। देखिये शास्त्रमें लिखा है :—

आयुर्वेदोदितां युक्तिं कुर्वाणा विहिताश्रये।
पुण्यायुर्वृद्धिसंयुक्ता नीरोगाश्च भवन्तिते॥
क्वचिदर्थः क्वचिन्मैत्री, क्वचिद्धर्मः क्वचिद्यशः।
कर्माभ्यासः क्वचिच्चेति, चिकित्सा नास्ति निष्फला॥

जो आयुर्वेद और धर्मशास्त्रकी युक्तियोंके अनुसार चलते हैं; उनको रोग नहीं होते और उनके पुण्य और आयुकी वृद्धि होती है। चिकित्सा करनेसे कहीं धनकी प्राप्ति होती है, कहीं मित्रता होती है, कहीं धर्म होता है,कहीं यश मिलता है,कहीं क्रिया करनेसे अभ्यास बढ़ता है; किन्तु वैद्यक-विद्या कभी निष्फल नहीं होती।

और भी कहा है :—

न देशो मनुजैर्हीनो, न मनुष्यो निरामयाः।
ततः सर्वत्र वैद्यानां, सुसिद्धा एव वृत्तयः॥

ऐसा कोई देश नहीं जहाँ मनुष्य न हों, और ऐसा कोई मनुष्य नहीं जिसे रोग न होता हो; इसलिये वैद्योंकी आजीविका सर्वत्र सिद्ध है।

जबकि और विद्यायें निष्फल हो जाती हैं, उनके पढ़नेसे अनेक बार कोई लाभ नहीं होता, दस-दस और बारह-बारह वर्ष पढ़ने, ढेर धन खाहा करने, और जने-जनेकी खुशामद करनेपर भी पेट

नहीं भरता; तब लोग इसी विद्याको क्यों न पढ़ें, जो हर हालतमें सुखदायक और फलप्रद है। वैद्योंको सभी जगह ज़रूरत रहती है। घरके ही काम करने लायक़ हों, तो अपनी गाढ़ी कमाईका धन ग़ैरों को क्यों दिया जाय ?
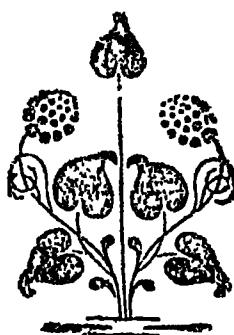
कौन-कौन वर्ण आयुर्वेद पढ़ सकते हैं?

अब इस बातपर विचार करना है कि, कौन-कौन वर्ण या जातिके लोग आयुर्वेद पढ़नेके अधिकारी हैं और कौन-कौन वर्ण या जातिके नहीं। समय को देखते, तो हमारी समझमें, हर कोई आयुर्वेद पढ़ सकता है। अगर यह बात न भी मानी जाय, तोभी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य,—इन तीन वर्णोंके लिए तो शास्त्रमें आयुर्वेद पढ़नेकी खुली आज्ञा है। देखिये, सुश्रुतमें लिखा है :—

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानामन्यतममन्वय वयः
शीलशौर्य्य शौचाचार विनय शक्तिबल मेधा धृति
स्मृति मति प्रतिपत्तियुक्तं तनु जिह्वौष्ठ दन्ताग्र
मृजु वक्त्राक्षिनासं प्रसन्नचित्त वाक् चेष्टं क्लेश-
सहं च भिषक् शिष्यमुपनयेत् ॥

शिक्षा देनेवाला वैद्य—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और इन तीन वर्णोंसे पैदा हुई अनुलोमज जातियोंको आयुर्वेद सिखा सकता है; किन्तु जिसे पढ़ानेके लिये चुने, उसमें इतनी बातें अवश्य देख ले—उसका वंश उत्तम है कि नहीं; वह पुरुषार्थी, पवित्र, सदाचारी, विनयी सामर्थ्यवान् और बलवान है कि नहीं; उसमें बुद्धि, धीरज, स्मरण-

शक्ति, विचारशक्ति और विद्वत्ता है कि नहीं; उसकी जीभ, उसके होठ, और दाँतोंके अगले हिस्से पतले हैं कि नहीं; उसका चित्त, उसकी वाणी, और उसकी चेष्टायें अच्छी हैं कि नहीं; अर्थात् अगर देखे कि पढ़नेवालेने अच्छे कुलमें जन्म लिया है,उसकी उम्र कठिन आयुर्वेदके पढ़ने-समझने योग्य है; वह पुरुषार्थी, पवित्र, सदाचारी, सामर्थ्यवान, बलवान, बुद्धिमान, धैर्य्यवान, पढ़ी हुई बातको याद रख सकनेवाला, प्रत्येक बातपर विचार और विवेकसे तर्क-वितर्क करनेवाला है; उसकी जीभ, उसके होठ और दाँतोंके अग्रभाग पतले हैं; उसका चित्त स्थिर है, उसकी वाणी सुन्दर है; उसकी चेष्टायें उत्तम हैं और वह पढ़नेके कष्टको सह सकेगा। यदि इतने लक्षण हों तो उसे बेखटके आयुर्वेद पढ़ावे।

और भी देखिये, शूद्रके लिये भी आयुर्वेद पढ़ाने की आज्ञा है:—

शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मंत्रवर्ज्यमनुपनीतमध्यापयेदित्येके।

लिखा है कि अच्छे कुलमें पैदा हुए गुणवान शूद्रको भी, विना उपनयन-संस्कार कराये, वेदका मन्त्र-भाग छोड़कर, आयुर्वेद पढ़ाया जा सकता है।

कहिये, अब तो चारों वर्णोंको आयुर्वेद पढ़नेका अधिकार है, इस बातमें कोई संशय नहीं रहा। प्रत्येक मनुष्यको आयुर्वेद पढ़ना ज़रूरी है, इसीसे ऋषियोंने किसी भी वर्णको इस विद्याके पढ़नेसे महरूम नहीं रक्खा।

आयुर्वेद पढ़ने और पढ़ानेवालों के ध्यान देने योग्य बात ।

चिकित्सा-शास्त्र सब शास्त्रोंसे कठिन है, इसलिये इसके पढ़नेमें बड़ी सख्त मिहनत और चतुराई की ज़रूरत है। आयुर्वेद पढ़नेकी इच्छा रखनेवालेको पहले हिन्दी और संस्कृतका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये; अथवा जो लोग हिन्दीमें आयुर्वेद पढ़ें उन्हें हिन्दीमें और जो लोग संस्कृतमें पढ़ें उन्हें दोनोंमें पूर्ण योग्यता प्राप्त कर लेनी चाहिये। दोनोंमेंसे एक या दोनों भाषाओंमें पूर्ण अभिज्ञता प्राप्त किये बिना आयुर्वेद सीखा जा नहीं सकता। आयुर्वेदका पढ़ना बालकोंका खेल नहीं है; इसलिये इसके पढ़नेमें परिश्रमसे जी न चुराना चाहिये। जो लोग परिश्रम से जी चुराते हैं, सुख या आरामकी अभिलाषा रखते हैं, उन्हें कोई भी विद्या पूर्ण रूपसे प्राप्त नहीं हो सकती; जिसमें आयुर्वेदका आना तो नितान्त असम्भवही है। जिससे आयुर्वेद सीखा जाय, उसके सामने हँसने, बकवाद करने और अन्यान्य प्रकारके ऐब या चपलता प्रभृतिसे सदा दूर रहना चाहिये। गुरुसे सदा निष्कपट व्यवहार रखना चाहिये, भूलकर भी धोखेबाज़ी करना या छल-छिद्रोंसे काम लेना उचित नहीं। गुरुमें सच्ची भक्ति और श्रद्धा रखनी चाहिये एवं तन-मन-धनसे गुरुकी सेवा करनी चाहिये। सदा ऐसे कर्म करने चाहियें, जिनसे शिष्यके प्रति गुरुका प्रेम दिन-ब-दिन बढ़े; क्योंकि यह विद्या गुरुकी

पूर्ण कृपा बिना नहीं आती। गुरुको भी अपने भक्त, विनयी और सदाचारी शिष्यको निष्कपट भावसे दिल खोलकर, अपनी सामर्थ्य-भर, चिकित्सा-शास्त्र पढ़ाना चाहिये। देखिये, प्राचीनकालके वैद्य-गुरु किस तरहकी प्रतिज्ञा करके अपने शिष्योंको पढ़ाते थे। गुरु महोदय कहते थे—

अहं वा त्वयि सम्यः वर्त्तमाने यदन्यऽन्यथा-

दर्शी स्यामेनोभाग्भवेयमफला विद्यश्च ॥

"तेरे अच्छा बर्ताव करने पर भी, यदि मैं तुझे अच्छी तरह न पढ़ाऊँ; तो मैं पापका भागी हूँ और मेरी विद्या निष्फल हो।" आजकल ऐसे गुरु दुर्लभ हैं।

आयुर्वेद पढ़नेवालेको आयुर्वेदका प्रत्येक अङ्ग भली भाँति पढ़ना चाहिये। प्रत्येक अङ्गही नहीं, छोटी-से-छोटी परिभाषाको भी बिना अच्छी तरह समझे और याद किये न छोड़ना चाहिए। तोताकी तरह रटना अच्छा नहीं; प्रत्येक बात गुरुसे पूछ कर अच्छी तरह समझनी चाहिए; बिना समझे ढेरका ढेर पढ़नेसे कोई लाभ नहीं। सुश्रुतमें कहा है।

यथाखरश्चन्दनभारवाही भारस्यवेत्ता नु तु चन्दनस्य ।

एवं हि शास्त्राणि बहूनधीत्य चार्थेषु मूढाः खरवद् वहन्ति ॥

चन्दनका बोझा उठानेवाला गधा केवल भारकी बात जानता है, किन्तु चन्दन और उसके गुणोंको नहीं जानता; इसी तरह जो बहुतसे शास्त्रोंको पढ़ लेते हैं, किन्तु उनके अर्थोंको नहीं समझते, वे गधेकी तरह भार उठानेवाले होते हैं।

आजकलके वैद्योंकी तरह एकाध शास्त्र पढ़कर ही विद्यार्थीको सन्तोष न कर लेना चाहिये। वैद्यक-विद्या पढ़नेवाला जितनेही शास्त्र अधिक पढ़ेगा, उसे चिकित्सा-कर्ममें उतनीही अधिक सफलता

होगी। कोई भी मनुष्य केवल एक या दो ग्रन्थ पढ़ लेनेसे चिकित्सा करने के योग्य नहीं हो जाता, क्योंकि एकही शास्त्रमें सारी बातें नहीं लिखी होतीं। यों तो सभी शास्त्रोंमें एकही तरहकी बातें हैं, फिर भी जो एकमें नहीं है वह दूसरेमें है और जो दूसरेमें नहीं है वह तीसरेमें है। इसीलिये प्रत्येक शास्त्रका पढ़ना आवश्यक है। देखिये, इस विषयमें सुश्रुत महाशय कैसी अच्छी सलाह देते हैं। वे कहते हैं—

एकशास्त्रमधीयानो न विंद्याच्छास्त्र निश्चयम्।
तस्माद् बहुश्रुतः शास्त्रं विजानीयाच्चिकित्सकः॥
शास्त्रं गुरुमुखोद्गीर्णमादायोपास्य चाऽसकृत।
यः कर्म कुरुते वैद्यः स वैद्योऽन्ये तु तस्कराः॥

जो मनुष्य एक शास्त्रको पढ़ लेता है, वह शास्त्रके निश्चयको नहीं जान सकता; किन्तु जो बहुतसे शास्त्रोंको पढ़ता और सुनता है, वही चिकित्साके मर्मको समझता है। जो मनुष्य गुरुके मुख से पढ़े हुए शास्त्रपर बारम्बार विचार करता है और विचार कर काम करता है वही वैद्य है; उसके सिवा और सब चोर हैं।

विद्यार्थीको रोग-परीक्षा और औषधि-विज्ञान दोनों विषय खूब अच्छी तरह सीखने चाहियें। जिस वैद्यको रोगोंके निदान-कारण, पूर्व्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति—इन पाँचोंका भली भाँति ज्ञान नहीं होता, वह वैद्य दवा करना जाननेपर भी दो कौड़ीका होता है। जिन वैद्योंको रोगकी पहचान नहीं, जिन हकीमोंको मर्ज़को तशख़ीस नहीं, वह हरगिज़ कामयाब नहीं होते; उन्हें चिकित्सा में सफलता नहीं होती। यह दृढ़ निश्चय है कि, रोग-परीक्षामें निपुण हुए बिना वैद्यको सफलता होही नहीं सकती। मान लो, कहीं धूलमें लट्ठ लगही गया, किसी तरह सफलता होही गयी, तोभी अधिकांश स्थलोंमें असफलता ही होगी। रोग को न समझनेवाले

वैद्यके हाथमें जाकर हज़ारों रोगियोंके रोग असाध्य होजाते हैं; हज़ारों रोगियोंके प्राण असमयमें ही नाश होते हैं ; इसीसे कहा है कि आयुर्वेद में "रोग-परीक्षा-विद्या" मुख्य है; उसका जानना परमावश्यक है। शास्त्रोंमें कहा है।

> यस्तु रोगमविज्ञाय, कर्मण्यारभते भिषक् ।
> अप्यौषध विधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया: ॥
>
> भेषजं केवलं कर्तुं यो जानाति न चामयम् ।
> वैद्यकर्म स चेत् कुर्याद्वधमर्हति राजतः ॥

जो वैद्य औषधियोंके प्रयोगकी विधि यानी दवा देनेकी रीति तो जानता है, किन्तु रोगोंको नहीं पहचानता; लेकिन बिना रोगके पहचानेही चिकित्सा करना आरम्भ कर देता है, उसे कभी सफलता हो जाती है और कभी नहीं होती।

जो मनुष्य केवल औषधि देना जानता है, किन्तु रोगोंको नहीं पहचानता; अगर ऐसा मनुष्य चिकित्सा-कर्म करे तो राजाको उसे प्राणदण्डकी सज़ा देनी चाहिये।

देखिये, हिन्दू राजाओंके राज्यमें मूढ़ वैद्योंके लिये कैसी-कैसी कठोर सज़ाएँ मुक़र्रर थीं ; इसीसे उस ज़मानेमें मूढ़ वैद्य न होते थे। बहुत ही ठीक बात है। वैद्यको रोग-परीक्षामें अवश्य निपुण होना चाहिये। क्योंकि जिस तरह तीर या गोली चलानेवालेका काम पहले शिस्त लगाना और पीछे गोली मारना है, उसी तरह वैद्य का काम सबसे पहले रोगका निर्णय करना और पीछे दवा देना है। यदि निशानेबाज़ बिना निशाना ठीक किये ही गोली छोड़ेगा, तो कदाचित ही गोली निशानेपर लगेगी; किन्तु यदि वह निशाना ठीक करके गोली चलावेगा तो गोली ठीक निशाने पर लगेगी, कभी वार ख़ाली न जायगा। इसी तरह वैद्य यदि रोगीके रोगको अच्छी तरह समझ कर दवा देगा, तो निश्चयही उसे सफलता होगी।

'रोग-परीक्षा' वैद्यके कामोंमें मुख्य है। इसीसे शास्त्रमें पहलेही रोग-परीक्षा करना मुख्य लिखा है। कहा है :—

रोगमादौ परीक्षेत् ततोऽनन्तरमौषधम्।
ततः कर्म भिषक् पश्चात ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥
यस्तु रोग विशेषज्ञः सर्व भैषज्य कोविदः।
देशकाल प्रमाणज्ञस्तस्य सिद्धिरसंशयम् ॥

वैद्यको उचित है कि पहले रोग की परीक्षा करे, पीछे औषधि को परीक्षा करे, जब रोग और औषधि दोनोंकी परीक्षा कर चुके, तब ज्ञानपूर्वक चिकित्सा करे।

जो वैद्य रोगोंके भेदोंको जानता है, जो वैद्य सब तरहकी दवाओंको जानता है, जो देश-काल और मात्राके प्रमाणको जानता है, उसकी सिद्धि अवश्य होती है।

रोगको पहचानना, मर्ज़की तशख़ीस करना, बड़ा कठिन काम है। बाज़-बाज़ मौक़ोंपर अच्छे-अच्छे अनुभवी वैद्य इस काममें चक्कर खा जाते हैं। इसीलिए शास्त्रकारोंने रोग पहचाननेके बहुतसे तरीक़े लिखे हैं। संक्षेपमें, चरकने रोग-परीक्षाकी विधि तीन तरहसे लिखी है :—

(१) आप्तोपदेश यानी शास्त्रोपदेश से।
(२) प्रत्यक्ष ज्ञान-द्वारा।
(३) अनुमन-द्वारा।

किसीने लिखा है कि देखने, छूने और हाल पूछनेसेही प्रायः सब रोगोंका ज्ञान हो जाता है, किन्तु सुश्रुतने इसके लिए छै उपाय लिखे हैं। उन्होंने कहा है :—

(१) कानसे, (२) चमड़ेसे, (३) आँखोंसे (४) जीभसे (५) नाक़से—इन पाँचों इन्द्रियोंसे तथा (६) रोगीसे हाल पूछनेसे, रोगोंका ज्ञान हो जाता है। सुश्रुताचार्य्यके बादके विद्वानोंने रोग जाननेका

उपाय "नाड़ी-परीक्षा" और निकाला है। इन सब परीक्षाओंकी बात हम आगे चलकर अच्छी तरह समझावेंगे। यहाँ तो इतना केवल विद्यार्थीके ध्यान देनेके लिए लिखा है। पहला काम विद्यार्थीका रोगोंके नाम, और उनके रूप प्रभृतिका ज्ञान प्राप्त करना और उनको हर समय कण्ठाग्र रखना है। अगर वैद्यको रोग के लक्षणही याद न होंगे, तो प्रत्यक्ष और अनुमानसे कोई लाभ न होगा।

रोग-परीक्षाके अन्तर्गत और भी कितनी ही परीक्षायें होती हैं, उन सब परीक्षाओंके भी हो जानेपर 'रोग-परीक्षा'का काम पूरा होता है। यहाँ हम चन्द परीक्षाओंकी बात विद्यार्थीका औत्सुक्य मिटानेके लिये लिखते हैं। इनको खूब खोल-खोलकर आगे समझावेंगे। यहाँ यही समझाना चाहते हैं कि, चरक के लिखे तीनों उपायों अथवा सुश्रुत के लिखे छै उपायों से वैद्य को कौन-कौन परीक्षायें करनी होती हैं। सुश्रुतमें लिखा है:—

आतुरमुपक्रममाणेन भिषजायुरेवादौ परीक्ष्येत् ।
सत्यप्यायुषि व्याध्यृत्वग्नियो देहबल सत्त्व
सात्म्य प्रकृति भेषज देशान् परीक्ष्येत् ॥

रोगीकी चिकित्सा करनेवालेको पहले (१) आयु, (२) रोग, (३) ऋतु, (४) अग्नि, (५) अवस्था, (६) देह, (७) बल, (८) सत्व, (९) सात्म्य, (१०) प्रकृति (११) औषधि (१२) देश प्रभृतिकी परीक्षा करके चिकित्सा आरम्भ करनी चाहिये।

पहले आयुकी परीक्षा बड़े मतलबसे लिखी है। इसका मतलब यह है कि, पहले आयुको देखना चाहिये। अगर रोगीकी उम्र मालूम हो, तो इलाज करना चाहिये। अगर रोगीकी उम्रही बाकी न हो, तो वैद्यको भूलकर भी इलाज न करना चाहिये; क्योंकि जिसकी उम्रही पूरी हो चुकी है, उसकी उम्र वैद्य नहीं बढ़ा सकता। वैद्य तो, उम्रके होनेपर, रोगी को रोगमुक्त कर सकता है। कहा है:—

भिषगादौ परीक्षेत रुग्णस्यायुः प्रयत्नतः।
तत आयुषि विस्तीर्णे चिकित्सा सफला भवेत्॥
व्याधेस्तत्त्व परिज्ञानं, वेदनायाश्च निग्रहः।
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः॥

वैद्यको पहले यत्नपूर्व्वक रोगीकी आयु-परीक्षा करनी चाहिये, क्योंकि आयुके दीर्घ होनेसेही यानी लम्बी उम्र होनेसेही चिकित्सा सफल होती है। रोगके तत्त्व को जानना और रोगीकी तकलीफ को दूर करना,—यही वैद्यका काम है। वैद्य आयुका स्वामी नहीं है, यानी जिसकी आयु नहीं रही है उसे आयु दे दे, वैद्य में यह सामर्थ्य नहीं है।

जिस तरह रोग-परीक्षामें पण्डित होना आवश्यक है, उसी तरह औषधियोंके मामलेमें भी पूर्ण जानकारी रखना उचित है। जो वैद्य केवल रोगोंकी पहचान तो जानता है, मगर औषधियोंके मामले में कुछ नहीं समझता, उसे चिकित्सामें कभी सफलता नहीं होती। केवल रोग पहचान लेनेसे ही, बिना दवा के, रोगीका रोग निवारण हो नहीं सकता; इसलिये यदि कोई रोगी ऐसे वैद्यके हाथमें पड़ जाता है तो वृथा प्राण गँवाता है। कहा है:—

यस्तु केवल रोगज्ञो, भेषजेष्वविचक्षणः।
तं वैद्यं प्राप्य रोगी स्याद्यथा नौर्नाविकं विना॥

जो वैद्य केवल रोगोंको पहचानता है, किन्तु औषधि करना नहीं जानता, अगर ऐसा वैद्य रोगीकी चिकित्सा करता है, तो रोगी इस तरह विपदमें फँसता है, जिस तरह नाव बिना मल्लाहोंके विपद में फँसती है।

औषधियोंके नाम और उनकी पहचान जान लेनेसे ही काम नहीं चल सकता। औषधियोंके गुण, बल, वीर्य्य, विपाक आदि

सभी विषयोंमें जानकारी रखनेकी ज़रूरत है। जो औषधियोंके विषयमें इतना भी नहीं जानता, वह वृथा चिकित्सक होनेका ढोंग करता है और प्राणियों की प्राणहानि करता है। चरक में लिखा है:—

औषधीर्नाम रूपाभ्यां जानन्ते ह्य जपावने।
अविपाश्चैव गोपाश्चये चान्ये वनवासिनः।

न नाम ज्ञान मात्रेण रूपज्ञानेन वा पुनः।
औषधीनां परां प्राप्तिं कश्चिद्वेदितुमर्हति॥

योग विन्नाम रूपज्ञस्तासां तत्वविदुच्यते।
किं पुनर्यो विज्ञानीयादौषधीः सर्वथाभिषक्

योगमासन्त यो विद्या देशकालोपपादितम्।
पुरुषं पुरुषं वीक्ष्य स विज्ञेयो भिषक्तमः॥

गाय, भेड़ और बकरी चरानेवाले और जङ्गलमें रहनेवाले जङ्गल में पैदा होनेवाली दवाओंके नाम और रूप जानते हैं, परन्तु मनुष्य औषधियोंके नाम और रूप जाननेसे ही औषधियोंके काममें लानेकी तरकीब नहीं जान सकता। जो औषधियोंके नाम और रूप एवं उनके काममें लानेकी विधि जानता है, उसे "औषधि-तत्वज्ञ" कहते हैं और जो जङ्गलकी जड़ी-बूटियोंके नाम आदि पूरी तरहसे जान कर, उनको देश-काल और व्यक्ति-भेदसे काममें लाता है, उसे श्रेष्ठ वैद्य कहते हैं।

मतलब यह है कि वैद्य-विद्या सीखनेवालेको दवाओंके नाम, रूप, गुण, बल, वीर्य्य, विपाक और प्रभाव आदि अच्छी तरहसे सीखने चाहियें। ये विद्या निघण्टु रटने और जङ्गलमें जाकर जङ्गली लोगोंकी सहायतासे जड़ी-बूटियों के देखने से अच्छी तरह आ सकती है। जो वैद्य निघण्टु नहीं जानता, उसको क़दम-क़दम पर हँसी होती है। कहा है:—

निघण्टु विना वैद्यो, विद्वान् व्याकरण विना ।
अनभ्यासेन धानुष्कस्त्रयो हास्यस्य भाजनम् ॥

विना निघण्टु पढ़ा वैद्य, विना व्याकरण पढ़ा विद्वान् और विना अभ्यास का तीरन्दाज़—तीनों अपनी हँसी कराते हैं।

जो कुछ ऊपर लिखा है उसके सिवा औषधियोंके प्रयोगकी विधि भी सद्वैद्यसे अच्छी तरह सीखनी चाहिये। यदि केवल दवाओंके नाम, रूप, गुण आदि मालूम हों, किन्तु उनके प्रयोग करनेकी रीति न मालूम हो, तोभी अर्थका अनर्थ होनेकी सम्भावना रहती है। यदि तीक्ष्ण विष भी क़ायदे से काममें लाया जाय, तो उत्तम औषधि का काम देता है। यदि उत्तम औषधि भी, बेक़ायदे, ऊटपटाँग रीति से, काम में लाई जाय, तो तीक्ष्ण विष का काम करती है। घृत और मधु दोनों ही परमोत्तम पदार्थ हैं, किन्तु कोई अनजान इन दोनों को समान भाग में मिलाकर काम में लावे, तो ये विषके समान हो जायँगे। इसलिये किसी विद्वान् और अनुभवी वैद्यके पास रहकर, दवा बनाने और चिकित्सा करनेका अभ्यास करना चाहिये। जो मनुष्य पूर्णरूपसे शास्त्रोंको पढ़ समझ लेता है, और अनेक प्रकारकी अच्छी-अच्छी औषधियाँ तैयार रखता है, तोभी अगर उसने किसीके पास रहकर अपनी आँखोंसे चिकित्सा नहीं देखी, स्वयं अभ्यास नहीं किया, वह बहुधा घबराया करता है। इसलिये चिकित्सा-कर्म अवश्य देखना चाहिये। कहा है :—

यस्तु केवल शास्त्रज्ञः क्रियास्वकुशलो भिषक् ।
स मुह्यति आतुरं प्राप्य यथा भीरुरिवाहवमे ।
यस्तूभयज्ञो मतिमान्समर्थोर्थसाधने ।
आहवे कर्म निर्वोढुं द्विचक्रः स्यन्दनो यथा ।
पीण चारादयथाऽचक्षुर ज्ञानाद् भीत भीतवत् ।
नौर्मारुतवशोवाज्ञो भिषक् चराति कर्मसु ।

तस्माच्छास्त्रेऽर्थ विज्ञाने प्रवृत्तौ कर्म दर्शने।
भिषक् चतुष्टये युक्तः प्राणाभिषर उच्यते॥

जो वैद्य केवल चिकित्सा-शास्त्रको जानता है, लेकिन चिकित्सा करनेमें कुशल नहीं है; वह रोगीके पास जाकर इस तरह घबराता है, जिस तरह कायर पुरुष लड़ाईमें जाकर घबराता है।

शास्त्र और क्रिया दोनों को पूरी तरहसे जानने वाला वैद्य उसी तरह अपना प्रयोजन सिद्ध कर सकता है; जिस तरह दो पहियों का रथ युद्धमें अपना काम कर सकता है।

जिस तरह अन्धा, डरके मारे, आगेको हाथ चला-चला कर चलता है, तूफानके ज़ोर से नाव जिस तरह उलट-पुलट होती या डगमगाती हुई चलती है; उसी तरह मूर्ख वैद्य घबराकर काम करता है।

जो शास्त्र, और शास्त्रके अर्थ को जानता है, जिसने औषधि करनेमें अनुभव प्राप्त कर लिया है, जिसने वैद्यों की चिकित्सा-परिपाटी अच्छी तरह देखली है, उस वैद्यको "प्राणदाता" कहते हैं।

बहुत लिखनेसे क्या, हमने अनेक बातें विद्यार्थी के जाननेके योग्य ऊपर लिखी हैं। इतने से ही विद्यार्थी बहुत कुछ समझ सकता है। सारांश यह कि, विद्यार्थीको चिकित्सा-शास्त्रके सब अंग अच्छी तरहसे पढ़ने-समझने चाहिएँ। साथ ही किसी अनुभवी और विद्वान् वैद्यके पास रहकर चिकित्सा-कर्म का अभ्यास करना चाहिये; तभी वह पूर्ण वैद्य होकर मनुष्योंके इलाजमें हाथ डाल सकता है।

चिकित्सा-कर्म आरम्भ करनेवालोंके लिए उपयोगी शिक्षा।

वैद्य जब तक आयुर्वेदके सब अङ्गों को अच्छी तरह न पढ़ ले; गुरुसे पास रहकर, गुरुके साथ-साथ जाकर चिकित्सा का अभ्यास न करले; तब तक स्वयं किसीका इलाज न करे।

२ वैद्य को चाहिये कि किसीको अनजानी, बिना आज़माई दवा न दे; क्योंकि अनजानी दवा अनेक बार विष, शस्त्र, अग्नि और इन्द्र के वज्र के समान अनर्थ करती है। यदि किसी वैद्य को किसी दवा के नाम, रूप और गुण तो मालूम हों, किन्तु उसके देनेकी विधि न मालूम हो तो रोगी को भूलकर भी न दे; क्योंकि अनजानपनसे, बेक़ायदे, दी हुई दवा बहुधा अनर्थ करती है; रोगी का रोग बढ़ता है अथवा उसके प्राणनाश होते हैं, और वैद्यका इहलोक और परलोक दोनों में बुरा होता है। इस लोक में बदनामी होती है और उस लोक में दण्ड मिलता है।

३ अगर तुमने वैद्यकशास्त्र नहीं पढ़ा है, अगर तुमने गुरुके पास रहकर चिकित्सा का अभ्यास नहीं किया है, तो अपने पेट पालने के लिए ज़बर्दस्ती वैद्य मत बनो। चरक में कहा है:—

वरमाशी विषविषं क्वथितं ताम्रमेव वा।

पीतमत्याग्नि सन्तप्ता भक्षिता वाप्ययो गुडाः॥

नतु श्रुतवतां वेशं बिभ्रता शरणागतात्।
गृहीतमन्नं पानं वा वित्तं वा रोग पीड़ितात्.॥

साँप का ज़हर पीना अच्छा, गर्मागर्म औटाये ताम्बे का पीना अच्छा, आगमें लाल किये हुए लोहे के गोले का निगलना अच्छा; किन्तु पढ़े-लिखे वैद्यकासा रूप बनाकर, शरण में आये हुए रोगीसे अन्नपान या धन लेना हरगिज़ अच्छा नहीं।

४ अगर आपमें वैद्य के सब गुण हैं, और वैद्य की सम्पद आपके पास है, तो आप बेखटके मनुष्योंकी प्राणरक्षा कीजिये, क्योंकि वैद्य मनुष्यों का प्राणरक्षक कहलाता है।

अगर आप औषधिका उत्तम रूपसे प्रयोग करेंगे, तो आपको चिकित्सामें सफलता होगी; सफलता होनेसे आपकी नामवरी फैलेगी; नामवरी होने से लक्ष्मी आपके चरणोंमें लोटेगी।

५ अगर आप उत्तम वैद्य होना चाहते हो, तो युक्ति से काम लो; क्योंकि चिकित्साकी सफलता युक्तिके अधीन है। युक्तिके जानने-वाले वैद्य की सदा जय होती है। युक्ति जानने वाला वैद्य औषधि जानने वाले वैद्यों से ऊँचा रहता है। मतलब यह है कि, दवाओं के गुण और रोगों की पहचान जानने से वैद्य उत्तम नहीं हो सकता, किन्तु कुछ ऊपरी युक्तियोंका जानना भी आवश्यक है। जैसे कोई पाचक औषधि किसी रोगी को ढेर सारी एक ही बार खिला देने-वाले वैद्य से, कई बारमें उस औषधि को खिलानेवाला वैद्य उत्तम है। जो वैद्य मूर्खतासे, बिना सोचे-समझे, रोगी को कोई अमृत-समान दवा एक बार ही खिला देगा, उसके रोगी को निस्सन्देह आराम न होगा; उपकार के बदले अपकार होगा। किन्तु जो वैद्य समझ-बूझ कर, रोगीका बलाबल विचार कर, दवाको कई बार में रोगी को देगा; तो दवा अपना चमत्कार दिखावेगी। मान लो, किसी रोगी को ज़ोर से दस्त लग रहे हैं, यदि उस रोगी

को एक बार ही एक छटाँक औषधि दे दी जाय; तो वह सारी दवा मल के साथ मिलकर, दस्तोंके साथ निकल जायगी और कोई लाभ न करेगी। यदि उसी दवा के चार या छै भाग करके, दो दो घण्टे पर दिये जायँ, तो वह पेटमें पचकर दस्तों को बन्द कर देगी। इसी को 'युक्ति' कहते हैं। यह किसीके सिखाने से नहीं आती, अपने-आपही आती है।

६ वैद्य को चाहिये कि पहले रोगी को दवा की हलकी मात्रा दे। बाज़-बाज़ औक़ात, अच्छी दवा भी रोगी के मुआफ़िक़ न होने से फायदेके बजाय उलटा नुक़सान करती है। जब देखे कि दवाने कोई हानि नहीं की, तब वैद्य दवा की दूनी या ड्योढ़ी मात्रा कर दे। इस तरह पहले थोड़ी मात्रा में दवा देने और पीछे हानि-लाभ देखकर मात्रा बढ़ा देनेसे कोई उपद्रव भी न होगा और रोगी आराम भी हो जायगा। अम्लपित्त-रोग में 'क्षार' बहुधा लाभदायक होता है। किन्तु अगर वही 'क्षार' अधिक मात्रामें दे दिया जाता है, तो दस्त होने लगते हैं, खट्टी-खट्टी डकारें आने लगती हैं अथवा उदरस्तम्भ हो जाता है। अगर क्षार की मात्रा अधिक न दी जाय, थोड़ी-थोड़ी कई बारमें दी जाय; तो कोई भी उपद्रव न हो और रोग आराम हो जाय। जो वैद्य बुद्धिमान् और युक्तिके जानने वाले होते हैं, वे रोग और रोगी दोनों का विचार करके, मात्रा और काल के विभाग से, इलाज करते और सिद्धिलाभ करते हैं। चरक में लिखा है :—

मात्राकालाश्रया युक्तिः, सिद्धिर्युक्तौ प्रतिष्ठितः।
तिष्ठत्युपरि युक्तिज्ञो, द्रव्यज्ञानवतां सदा॥

युक्ति, मात्रा और काल के आश्रय है; और सिद्धि युक्तिके आश्रय है; इसलिये युक्तिवान् वैद्य, दवाओं के ज्ञान रखने वाले वैद्य से श्रेष्ठ होता है।

७ वैद्य, औषधि, सेवक और रोगी, ये चार चिकित्साके पाद हैं ; अर्थात् इन चारोंके ठीक होने से रोग शान्त होता है। इन चारोंमें से प्रत्येक में चार-चार गुण होते हैं।

शास्त्रमें पारदर्शिता, बहुदर्शिता, चतुराई, और पवित्रता—ये वैद्य के चार गुण हैं।

बहुता, योग्यता, अनेक प्रकारके योग-वियोग पूर्व्वक कल्पना, और कीड़े प्रभृति से रहित होना—ये औषधि के चार गुण हैं।

रोगी की सेवा करना जानना, चतुराई, स्वामिभक्ति और पवित्रता—ये सेवक के चार गुण हैं।

सब बातों का याद रखना, वैद्य की आज्ञा का अक्षर-अक्षर पालन करना, निर्भय होना, अपने रोग का यथार्थ हाल कहना—ये रोगीके चार गुण हैं।

इसका मतलब यह है कि यदि वैद्य, औषधि, सेवक और रोगी में ऊपर कहे हुए गुण हों, तो बहुधा आरोग्यकी ही सम्भावना रहती है। इसलिये यदि वैद्य चारों गुण वाला हो, तो उसे औरोंके गुण देखकर इलाज करना चाहिये। अर्थात् यदि रोगीकी सेवा-सुश्रूषा करनेवाला मूर्ख हो, रोगी वैद्य की आज्ञा माननें वाला न हो, अपने रोग का ठीक-ठीक हाल कहनेवाला न हो, वैद्य का कहा हुआ उसे याद न रहे—ऐसे-ऐसे दोष हों, तो हरगिज़ इलाज न करे अन्यथा अपयशका पात्र होगा।

भिषक् प्रभृति पादचतुष्टय,—ये सोलह गुण-सम्पन्न होने से रोग और आरोग्यके कारण हैं, परन्तु इन पादचतुष्टयोंमें वैद्य प्रधान है। क्योंकि उपदेश करना, आगा-पीछा सोचना, दवा देने की तरकीब बताना प्रभृति सब काम वैद्यके हैं। जिस तरह रसोइया, रसोई करनेके बर्तन, अग्नि और ईंधन इन चारोंसे रसोई तैयार होती है, पर इनमें "रसोइया" ही प्रधान है। यदि रसोइया उत्तम न हो,

तो रसोई-कार्य के कारण-स्वरूप—बर्तन, ईंधन और अग्नि ये कितने ही अच्छे क्यों न हों, रसोई हरगिज़ उत्तम न होगी। इसी तरह औषधि, परिचारक (सेवक) और रोगी के अपने-अपने चारों गुण-युक्त होने पर भी, यदि वैद्य अच्छा न हो, तो हरगिज़ आरोग्य लाभ न होगा। इसीलिये वैद्य को प्रधान कहा है। और भी सुनिये,—कुम्हार, चाक, मिट्टी और सूत इन चारोंसे घड़ा बनता है। लेकिन चाक, मिट्टी और सूत हो; किन्तु कुम्हार न हो, तो घड़ा नहीं बन सकता; उसी तरह वैद्य के बिना रोगी, परिचारक और औषधि से चिकित्सा नहीं हो सकती। मतलब यह निकला कि, सबमें वैद्य ही प्रधान है। उसीका उत्तम होना ज़रूरी है। चिकित्साकी सफलता-असफलता का दारमदार वैद्य पर ही निर्भर है। इसलिये वैद्य की ज़िम्मेवरी बहुत बड़ी है।

८ यदि आप चिकित्सा-कर्म में सफलता प्राप्त करना चाहें, तो आप शास्त्र और बुद्धि दोनों से काम लीजिये। शास्त्र दर्पण है, अपनी बुद्धि प्रतिबिम्ब—अक्स—है। जिस तरह दर्पण और प्रतिबिम्बसे स्वरूप का ज्ञान होता है, उसी प्रकार शास्त्र और बुद्धि दोनों से जो चिकित्सा की जाती है, वही चिकित्सा उत्तम होती है। जो वैद्य केवल शास्त्र पर चलते हैं, अपनी बुद्धि से काम नहीं लेते, उन्हें सफलता नहीं होती।

९ वैद्य को उचित है कि रोगियों से मैत्री करे और करुणासे काम ले; उत्साह के साथ साध्य रोगी की चिकित्सा करे, स्वस्थ शरीर वाले या मरनेवाले रोगी को दवा न दे।

१० वैद्य को रोग-परीक्षा करते समय साध्य और असाध्य का ख़याल कभी न भूलना चाहिये। जो वैद्य साध्य और असाध्य दो प्रकारके विभाग करके चिकित्सा करता है, वह निश्चय ही रोग को आराम करता है; किन्तु जो वैद्य साध्य और असाध्य का ख़याल नहीं करता, असाध्य रोगी का भी इलाज करना आरम्भ कर देता

है, उसकी दुनिया में बदनामी होती है। लोग कहते हैं, जब वैद्यजी को साध्यासाध्यका ही ज्ञान नहीं, तब क्यों चिकित्सा करके अपनी धूल उड़वाते हैं। शास्त्रमें कहा है :—

ये न कुर्वन्त्यसाध्यतां चिकित्सां ते भिषग्वरा: ।
अत: वैद्य: श्रम: कार्य: साध्यासाध्य परीक्षणे ॥
साध्यासाध्य विभागज्ञो, ज्ञानपूर्व चिकित्सक: ।
काले चारभते कर्म यत्तत् साधयाति ध्रुवम् ॥
स्वार्थ विद्या यशो हानिमुपक्रोशमसंग्रहम् ।
प्राप्नुयान्नियतं वैद्यो योऽसाध्यं समुपाचरेत् ॥
सद्वैद्यास्ते न येऽसाध्यानारभन्ते चिकित्सितुम् ।

जो असाध्य-रोगी की चिकित्सा नहीं करते, वे श्रेष्ठ वैद्य हैं ; इसलिये वैद्यको साध्य-असाध्य की परीक्षा करनी चाहिये।

जो साध्य-असाध्य के विभाग को जानने वाला वैद्य, साध्य-असाध्य का विचार करके चिकित्सा करना आरम्भ करता है, वह निश्चय ही रोगी को आराम करता है।

जो वैद्य असाध्य रोगी का इलाज करता है, उसके स्वार्थ, विद्या और यश तीनों की हानि होती है। जगह-जगह उसकी निन्दा होती है और वह नालायक़ समझा जाता है।

जो असाध्य की चिकित्सामें हाथ नहीं डालते, वह "सद्वैद्य" यानी उत्तम वैद्य हैं।

सारांश यह, कि असाध्यकी चिकित्सासे कोई लाभ नहीं। जो असाध्य है वह आराम होगा नहीं ; बिना आराम हुए कुछ धन भी नहीं मिलेगा, कोरी बदनामी का ठीकरा पल्ले पड़ेगा। इसलिये धन और यश चाहते हो, तो असाध्य रोगी को हाथमें न लो।

११ रोगीकी आयुका देखना वैद्यका सबसे पहला काम है। इस-

लिये चिकित्सा में सब से पहले आयु-परीक्षा किया करो। अगर रोगी की आयु दीखे, तो इलाज हाथ में लो; अगर रोगी आयु-हीन दीखे तो इन्कार कर दो, कह दो कि हमसे इलाज न होगा। अगर आप आयुष्मान् रोगी का इलाज करेंगे, तो रोगी को अवश्य आराम हो जायगा, आप को धन और यश मिलेगा। अगर आप लालचवश आयुष्हीन का भी इलाज हाथमें लेंगे, तो रोगी तो आयु न होने से अवश्य ही मर जायगा, आपके पल्ले केवल बदनामी आवेगी। क्योंकि जिसकी आयु क्षीण होगई है, जिसकी उम्र पूरी होगई है, उसकी उम्र कोई वैद्य बढ़ा नहीं सकता, वैद्य का काम तो रोग के तत्व को समझना और रोगी की वेदना का नाश करना है। देखिये शास्त्रमें कहा है :—

भिषगादौ परीक्षेत् रुग्णस्यायुः प्रयत्नतः।
तत आयुषि विस्तीर्णे चिकित्सा सफला भवेत्॥

व्याधेस्तत्त्व परिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः।
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः॥

वैद्य को सबसे पहले यत्नपूर्वक रोगी की आयु-परीक्षा करनी चाहिये, क्योंकि आयु के दीर्घ होने से ही चिकित्सा सफल होती है।

रोग के तत्व को जानना और रोगी की पीड़ा का दूर करना—यही वैद्य के काम हैं; वैद्य आयु का स्वामी नहीं है।

अगर कोई यह सवाल करे कि जब आयु ही होगी, तब रोगी मरेगा ही क्यों? आप ही लोटपोट कर खड़ा हो जायगा। इसलिए ऐसी दशामें चिकित्साकी ज़रूरत ही क्या है? जिनकी ऐसी समझ है वे ग़लती करते हैं; आयु होने पर भी रोगी बिना चिकित्साके मर जाता है, इस विषय में अपनी ओर से कुछ न कहकर, हम दो चार ऋषि-वाक्य उद्धृत करते हैं। आशा है, उनसे वैसे प्रश्न करनेवालों को सन्तोष हो जायगा। कहा है :—

साध्या याप्यत्वमायान्ति, याप्याश्चसाध्यतां तथा।
घ्नंति प्राणानसाध्यास्तु, नराणाम क्रियावताम्॥
आयुष्मान् पुरुषो जीवेत्सव्यथो भेषजै विना।
भेषजेन पुनर्जीवेत स एव हि निरामयः॥
सति आयुषि नोपायं विनोत्थातुंक्षमो रुजी।
दर्शितश्चात्र दृष्टान्तः पंकमग्नो यथा गजः॥
सति चायुषि नष्टः स्यादामयैश्चाचिकित्सितः।
यथा सत्यपि तैलादौ दीपो निर्वाति वात्यया॥

चिकित्सा न करने वाले मनुष्योंके साध्य रोग याप्य और याप्य असाध्य हो जाते हैं; असाध्य रोग निश्चय ही मनुष्य के प्राणनाश कर डालते हैं।

आयु होने पर यदि चिकित्सा न की जाय तो मनुष्य जीवेगा, परन्तु दुःखों के साथ; और यदि चिकित्सा की जायगी तो बिना दुःखोंके जीवेगा।

आयु के होने पर भी रोगी बिना उपायों के नहीं उठ सकता, जिस तरह कीच में फँसा हुआ हाथी बिना खींचे नहीं निकल सकता।

जिस तरह तेल बत्ती वग़ैरः के होने पर भी, दीपक हवा के झोंके से बुझ जाता है; उसी तरह आयु होने पर भी रोगी बिना चिकित्साके मर जाता है।

१२ साध्यासाध्य परीक्षाके सिवा वैद्य को "अरिष्ट-चिह्न" अवश्य देखने चाहिएँ। अरिष्ट-चिह्नोंसे वैद्य को मृत्यु का पता बहुत ठीक लगता है। पहले वैद्य अरिष्ट-चिह्नों के जानकार और अभ्यासी होने के कारण ही, बरसों पहले रोगी की मृत्यु बता दिया करते थे। इसलिए वैद्यको अरिष्ट-चिह्नों की परीक्षा अवश्यमेव करनी चाहिये। जो वैद्य "अरिष्ट-चिह्नों" को देखकर इलाज करता है,

वह देवताकी तरह पुजता है। जो बिना अरिष्ट-चिह्नों को देखे इलाज करते हैं, वे बदनाम होते हैं। अरिष्ट-चिह्नोंके विषयमें हम आगे लिखेंगे; तथापि इस जगह इतना बता देने में हर्ज नहीं कि, अरिष्ट किसे कहते हैं। जिन लक्षणों के होने से रोगी की मृत्यु निश्चय ही हो, यदि ऐसे ही चिह्न नज़र आवें, तो उन चिह्नों को "अरिष्ट" या "रिष्ट" कहते हैं। जिस तरह वृक्ष में फूल आने से फल लगने की, धूआँ होने से आग होने की, और बादल होनेसे वर्षा की सम्भावना होती है; उसी तरह अरिष्ट-चिह्न होनेसे मृत्यु होने की सम्भावना होती है। वङ्गसेन महोदय कहते हैं:—

न त्वरिष्टस्य जातस्य नाशोऽस्ति मरणादृते।
मरणञ्चापि तन्नास्ति यन्नारिष्टं पुरः सरम्॥

अरिष्ट होनेसे मृत्यु अवश्य होती है। वह मृत्यु नहीं, जिसमें पहले अरिष्ट के लक्षण न हों और वह अरिष्ट नहीं, जिसके होने से मरण न हो।

वाग्भट ने कहा है:—

विना अरिष्टं नास्ति मरणं, दृष्ट रिष्टम्च जीवितम्।
अरिष्टे रिष्ट विज्ञानं नच रिष्टेऽप्य नैपुणात्॥

अरिष्ट बिना मरण नहीं होता, और अरिष्ट होने से ज़िन्दगी नहीं रहती। जो अरिष्ट-चिह्न जानने में निपुण नहीं हैं, उनको अरिष्ट-ज्ञान नहीं होता।

वङ्गसेन ने कहा है:—

असिद्धिं प्राप्नुयाल्लोके, प्रति कुर्वन गतायुषः।
तस्माद्यत्नेनारिष्टानि लक्षयेत् कुशलो भिषक्॥

जिसकी आयु पूरी हो गई है, उस मनुष्यकी चिकित्सा करनेसे वैद्य

की सिद्धि नहीं होती। इसवास्ते चतुर वैद्य को अच्छी तरह से 'अ-रिष्ट' देखकर इलाज करना चाहिये।

सुश्रुतने कहा है:—

एतान्यारिष्ट रूपाणि, सम्यग् बुद्धेत भिषक्।
साध्यासाध्य परीक्षायां स राज्ञ: संमतो भवेत्॥

जो वैद्य इन अरिष्ट-लक्षणोंको अच्छी तरह जानता है और साध्या-साध्य की परीक्षा करने में निपुण है, वह राजाओं के योग्य होता है।

अरिष्ट-चिह्नोंके पहचानने का अभ्यास करने से रोगी की आयु का हाल वैद्य फ़ौरन जान जाता है। इसलिये वैद्य इनका अभ्यास करे और आयु-परीक्षा के लिए इनसे चिकित्सा में अवश्य काम ले।

(१३) अगर चिकित्सा में विशेष सफलताकी इच्छा रखते हो, तो रोगी के पास जाकर इतनी बातें अवश्य देखो:—

(१) रोग की आयु अल्प है, मध्यम है या दीर्घ है? अरिष्ट-चिह्नों सेही आयु का पता लगता है।

(२) अगर आयु शेष हो, तो देखो कि रोगी को कौन रोग है रोग होनेके कारण क्या हैं? रोगके पूर्ण रूप से प्रकट होनेके पहले क्या-क्या चिह्न प्रकट हुए थे?

(३) रोगके मालूम हो जाने पर, रोगकी साध्यता और असाध्यता का विचार करो। साथ-ही-साथ यह भी देखो कि, कोई अरिष्ट-चिह्न तो नहीं है। अगर रोग असाध्य हो, अरिष्ट-चिह्न स्पष्ट नज़र आवें तो रोगी को त्याग दो। अगर रोग साध्य हो, अरिष्ट न हो, तो बुद्धिमानी से इलाज करने का विचार करो। मगर इलाज का विचार करनेके पहले निम्नलिखित बातोंका विचार और भी करो:—

(४) देखो कि ऋतु कौनसी है? इस ऋतु में कौनसे दोष का कोप होता है? यह ऋतु रोगी के वातादि दोषों को शान्त

करनेवाली है या कुपित करनेवाली ; ऋतुतुल्यता है अथवा नहीं।

(४) रोगीकी अग्नि कैसी है? अग्नि तीक्ष्ण है, मन्द है, या सम है अथवा विषम है।

(५) रोगी की अवस्था कितनी है; यानी उसकी उम्र क्या है? रोगी बालक है, जवान है या बूढ़ा है? अवस्था जानकर इस बात का विचार करो कि, इस अवस्था में कौनसा दोष बढ़ा हुआ रहता है। यह रोग जो रोगी को है, इस अवस्था में ज़ोर करता है या कमज़ोर रहता है; यानी सामान्य साध्य रहता है या कष्टसाध्य। दवा देते समय रोगी की अवस्थानुसार ही दवा की मात्रा तजवीज करो। बालक और वृद्ध* रोगियों की चिकित्सा में सावधानी की ज़रूरत है; क्योंकि ये दोनों कोमल और बलहीन होते हैं।

(६) रोगी का शरीर दुबला है या मोटा, अथवा स्वाभाविक है?

(७) रोगी में कितना बल है? रोगी बलवान है या बलहीन? रोगी के बलाबल का विचार करके ही दवा देनी चाहिये। यदि वैद्य दुर्बल रोगी को अति बलवान औषधि दे दे, तो रोगी के मर जाने की सम्भावना है। कमज़ोर रोगी अति बलिष्ट, अत्यन्त गर्म और अत्यन्त शीतल दवा अथवा अग्नि-कर्म, क्षार-कर्म और शस्त्र-कर्मको नहीं सह सकता। कमज़ोर रोगी बहुत तेज़ दवासे अक्सर मर जाता है। इसलिये दुर्बल रोगीको हल्की दवा देनी चाहिये। अगर तेज़ दवा देने की ज़रूरत हो, तो थोड़ी-थोड़ी मात्रामें कई बार देनी चाहिए, जिससे किसी प्रकारके उपद्रवकी सम्भावना न रहे। विशेषकर स्त्रियोंके मामलेमें इस बातका और भी ख़याल रखना चाहिये; क्योंकि स्त्रियोंका हृदय अस्थिर—चञ्चल—नर्म, खुला हुआ और अत्यन्त डरपोक होता है। जो वैद्य इन बातोंका विचार किये बिना दवा देते हैं, वे रोगीकी प्राणहानि करते हैं।

* ६० वर्षके बाद वृद्धावस्था आरम्भ होती है। इस अवस्थामें 'वायु' बहुत बढ़ जाता है।

(८) रोगी के सत्व यानी मनकी परीक्षा करनी चाहिये। देखना चाहिये, रोगी प्रवर-सत्त्व है, मध्य-सत्त्व है या हीनसत्त्व। आत्मा के साथ मन का संयोग होनेसे, मन शरीर का पालन-पोषण करता है। सत्त्व, बल-भेदके कारण तीन प्रकारका होता है।

प्रवर-सत्त्ववाला प्राणी निज और आगन्तु कारण से हुई घोर पीड़ा से भी नहीं घबराता। मध्य-सत्त्ववाला दूसरे की देखा-देखी या दूसरे की सहायता से पीड़ा को सहन कर सकता है। हीन-सत्त्ववाला न तो आप धीरज रखता है और न दूसरे की सहायता से धैर्य्य धारण करता है। ऐसे पुरुष, बड़े भारी डील-डौलके होने पर भी, ज़रासी पीड़ा नहीं सह सकते। लड़ाई की भयङ्कर बात सुनने से या कहीं खून गिरता देख कर ही बेहोश हो जाते हैं अथवा उनका चेहरा फक्क हो जाता है।

(६) सात्म्य-परीक्षा भी करनी चाहिये। देखना चाहिये कि रोगी को कैसा आहार-विहार अनुकूल होता है ; यानी कैसा खाना-पीना उसके मिज़ाज के मुआफ़िक़ होता है। सात्म्य-परीक्षा रोगी से पूछने से होती है।

जिन प्राणियों को घी, दूध, तेल, मांस और खट्टे, मीठे, नमकीन प्रभृति छहों प्रकारके रस सात्म्य यानी मुआफ़िक़ होते हैं; वे बल-वान, क्लेश सहनेवाले और दीर्घजीवी होते हैं। जो लोग हमेशा रूखा भोजन करते हैं, जिन्हें कोई एकही रस मुआफ़िक़ होता है, वे कमज़ोर और कम-उम्र होते हैं। जिन्हें मिले हुए रस मुआफ़िक़ होते हैं, वे मध्यबली होते हैं।

सात्म्य-परीक्षा से वैद्य को दवा और पथ्य तजवीज करनेमें बड़ा सुभीता होता है। इससे प्रकृति का भी निश्चय हो जाता है। जैसे; जिसे गर्म आहार-विहार मुआफ़िक़ होते हैं, उसका मिज़ाज ठण्डा और जिसे शीतल आहार-विहार मुआफ़िक़ होते हैं, उसका मिज़ाज गर्म होता है।

(१०) प्रकृति-परीक्षा भी करनी चाहिये। देखना चाहिये, रोगीकी प्रकृति कैसी है? रोगी की प्रकृति वात की है, या पित्त की या कफ की; यानी रोगीका मिज़ाज गर्म है या ठण्डा। रोग रोगीकी प्रकृति के अनुकूल है या प्रतिकूल? प्रकृति-तुल्यता है या नहीं? जैसे किसी की पित्त प्रकृति हो और उसको कफ का उपद्रव हो, तो प्रकृति-तुल्यता नहीं है। प्रकृति तुल्यता*, देशतुल्यता†, ऋतु-तुल्यता‡ आदि ख़राब हैं। प्रकृति-तुल्यता आदि के न होने से रोग सुखसाध्य होता है।

(११) औषधि की परीक्षा भी करनी चाहिये; यानी यह देखना चाहिए कि, औषधि रोगी की प्रकृति और ऋतु के अनुकूल है या प्रतिकूल; देशकाल प्रभृति के विचार से विरुद्ध तो नहीं है।

(१२) देशकी भी परीक्षा करनी चाहिये। देखना चाहिये रोगी जाङ्गल$ अनूप§ और साधारण¶ इन देशोंमें से किसमें पैदा हुआ है,

---

* पित्त-प्रकृतिवालेको कफका उपद्रव हो तो प्रकृति-तुल्यता न हुई। यह अच्छी बात है। अगर पित्त-प्रकृतिवालेको पित्तका ही रोग हो तो प्रकृति-तुल्यता हो गई, जो खराब है।

† अनूपदेशमें स्वभावसेही वात-कफके रोग होते हैं। अगर रोगीको उस देशमें पित्तका रोग हुआ तो देशतुल्यता न हुई, इसलिये रोग सुखसाध्य है। अगर अनूपदेशमें वात-कफका रोग हो, तो देश-तुल्यता हो गई। देशतुल्यता कष्ट साध्य है।

‡ शरद ऋतुमें "पित्त" कुपित होता है; यानी शरद "पित्त" का मौसम है। अगर शरद ऋतुमें किसीको पित्तका रोग हो, तब तो ऋतुतुल्यता हुई। अगर शरद ऋतुमें "कफ" का रोग हो तो ऋतुतुल्यता न हुई। ऋतुतुल्यताका न होना, रोगी और वैद्य दोनोंके लिये अच्छा है।

$ जिस देशमें पानी और दरख्त कम हों और जहाँ पित्त और वातके रोग होते हों, उस देशको "जाङ्गल देश" कहते हैं। ऐसा देश मारवाड़ है।

§ जिस देशमें पानी बहुत हो, वृक्ष बहुत हों, और जहाँ वात और कफके रोग होते हों, उस देशको "अनूपदेश" कहते हैं। जैसे बङ्गाल।

¶ जिस देशमें अनूप और जाङ्गल दोनोंके लक्षण हों, वह साधारण देश कहलाता है।

किस देशमें बड़ा हुआ है और किस देशमें रोगी हुआ है ? उस देश की आब-हवा कैसी है, वहां कैसे रोग होते हैं, रोगीको कैसा रोग हुआ है; देशतुल्यता है या नहीं ? जैसे देश बादी हो, और रोग भी बादी का हो, तो देश-तुल्यता समझनी चाहिये। अगर ऐसा हो तो रोग कष्टसाध्य है।

(१३) रोगीके लिये मात्रा नियत करनेमें वैद्यको पूरी चतुराईसे काम लेना चाहिये। औषधि की मात्राका कोई बँधा हुआ क़ायदा नहीं है। काल, अग्नि, बल, उम्र, स्वभाव, देश और वातादि दोषों का विचार करके; वैद्य रोगी की मात्रा नियत करे। न कम मात्रा नियत करे न ज़ियादा; रोग के बलाबल के अनुसार मात्रा नियत करने से लाभ होगा। कम मात्रा से रोग आराम न होगा, अधिक से रोग बढ़ जायगा या रोगी मर जायगा। कहा है:—

नाल्पंहन्त्यौषधं व्याधिं यथाल्पाम्बु महानलम् ।
दोषवच्चातिमात्रंस्याच्छस्य मृत्युदकं यथा ॥
मात्रयाहीनया द्रव्यं विकारं न निवर्त्तयेत् ।
द्रव्याणामाति बाहुल्याद्व्यापत्संजायते ध्रुवम् ॥

जिस प्रकार अत्यन्त प्रज्वलित अग्नि पर थोड़ासा गर्म जल डालने से वह नहीं बुझती, उसी प्रकार बड़े रोगमें थोड़ी मात्रा की औषधि से रोग आराम नहीं होता। जिस तरह खेतमें अधिक जल बरसने से अनाज नष्ट हो जाता है, उसी तरह छोटे रोगमें औषधि की अधिक मात्रा देने से रोगी मर जाता है।

कम मात्रा से रोग आराम नहीं होता और अधिक मात्रा से निश्चय ही विपद् आती है।

(१४) यदि आपको रोगी के रोग में निम्नलिखित बातें नज़र आवें, तो आप शौक़से इलाज करें; भगवान चाहेंगे तो आपको अवश्य सफलता प्राप्त होगी। ऐसे रोग को सुखसाध्य कहते हैं; यानी

जिस रोग में निम्नलिखित लक्षण हों, वह बिना कठिनाई के सुख-से आराम हो जायगा—

(क) रोगके हेतु यानी कारण* थोड़े हों।

(ख) उस रोग के पूर्वरूपों† में जितने लक्षण होने चाहियें, उससे कम हुए हों।

(ग) उस रोग के लक्षण जितने शास्त्रमें लिखे हैं, उस से कम हों।

(घ) दूष्य‡ देश, प्रकृति और कालके साथ उस रोगकी तुल्यता न हो।

(ङ) ऐसा रोग न हो, जिसका इलाज न हो सके।

(च) रोगकी गति एक हो; चाहे अधोगामी हो चाहे ऊर्द्धगामी§।

(छ) रोग नया हो यानी थोड़े दिन का हो।

(ज) रोग के साथ कोई उपद्रव¶ न हो।

(झ) रोग एक दोषज हो; यानी तीनों दोषों में से किसी एक के कारण हो; दो या तीनों दोषोंके कुपित होने से न हो।

---

* जिन कारणोंसे रोग होता है, उन्हें रोगके कारण कहते हैं। जैसे; अति भोजनसे अजीर्ण रोग होता है। यहां "अति भोजन" अजीर्णका हेतु या कारण है।

† रोगके पूरी तरह प्रकट होनेके पहले जो लक्षण दिखाई देते हैं, उन्हें "पूर्वरूप" कहते हैं। जैसे ज्वर होनेके पहले,—नेत्रोंका जलना, शरीरका टूटना, सिरमें दर्द होना प्रभृति।

‡ रस रक्त आदि को "दूष्य" कहते हैं। वात-पित्त कफको "दोष" कहते हैं। पित्त भी गर्म है और रक्त भी गर्म है। अगर पित्त से रक्त दूषित हुआ, तो "दूष्यतुल्यता" हुई। परन्तु कफ शीतल है, अगर उससे रक्त दूषित हो, तो दूष्यतुल्यता न हुई। दूष्यतुल्यता कष्ट-साध्य है।

§ रक्तपित्त रोगमें रक्त ऊपरके रास्ते नेत्र, कान, नाक और मुंहसे निकलता है तथा नीचेके रास्ते लिङ्ग, गुदा और योनिसे निकलता है। जो एक रास्तेसे गिरता है तो रोग सुखसे आराम हो जाता है; दोनों राहोंसे गिरता है तो कष्टसे आराम होता है।

¶ रोगके साथ उपद्रव। जैसे मुख्य रोग तो ज्वर हो, किन्तु उसके साथ कास, श्वास, हिचकी, वमन, अतिसार आदि हों, तो इनको 'ज्वरके उपद्रव' कहेंगे। उपद्रवहीन रोग सहजमें आराम होता है।

(ञ) रोगी का शरीर ऐसा हो, जो हर प्रकार की औषधि को सहन कर सके। चाहे दागिये, चाहे चार-कर्म कीजिये, चाहे चीर-फाड़ कीजिये, चाहे जुलाब दीजिये, चाहे क्षय कराइये।

(ट) जैसो क़ीमती या दुर्लभ दवा चाहो मिल सकती हो। दवा पहले कहे हुए चारों गुण युक्त हो।

(ठ) रोगी की सेवा करनेवाला रोगीका भक्त, चतुर, सुश्रुषा-कर्म की जाननेवाला और पवित्र हो।

(ड) रोगी में रोगी के सब गुण हों ; यानी रोगी सब बातोंका याद रखनेवाला, वैद्य की आज्ञा पालन करनेवाला, निर्भयचित्त,और अपने रोग का ज्यों का त्यों ठीक हाल कहनेवाला हो।

(ढ) स्वयं आप वैद्य महाशय में शास्त्रपारंगतता, बहुदर्शिता, चतुराई, और पवित्रता,—ये चारों गुण हों यानी आप सच्चे वैद्य हों।

(१५) गर्भवती, बालक, और वृद्ध का रोग यदि अत्यन्त उपद्रव-सहित हो, तो असाध्य होता है; इसलिये ऐसी अवस्था में इनका इलाज न करना चाहिये।

(१६) अगर किसी रोगी का रोग त्रिदोष से हुआ हो, रोग चिकित्सा के मार्ग को अतिक्रम कर गया हो; साथ ही रोग अस्थिर-ताजनक, मोहजनक, और इन्द्रिय-विनाशक हो; तो आप रोगी को हाथ में न लीजिये और यदि ले लिया हो तो जवाब दे दीजिये। अगर किसी दुर्बल व्यक्ति का रोग बहुत बढ़ गया हो और "अरिष्ट-चिह्न" नज़र आते हों, तो आप रोगी को जवाब दे दीजिये।

(१७) अगर किसी रोगी को जुलाब देना हो, तो बड़ी सावधानी

और समझ-बूझ कर दीजिये। जुलाब देना सहज काम नहीं है। जुलाब का ज़ियादा लग जाना या न लगना, दोनों ख़राब हैं।

अगर जुलाब न लगेगा तो रोगीके मुखमें पानी भर-भर आवेगा, हृदय में अशुद्धि होगी, कफ और पित्तकीसी वमन होने की शंका होगी, पेट में अफारा होगा, खाने में अरुचि होगी, उल्टी होगी, देह में बल न रहेगा, शरीर भारीसा मालूम होगा, आँखों में नींदसी आवेगी, शरीर गीला-गीलासा हो जायगा, ज़ुकाम के चिह्न नज़र आवेंगे, अधोवायु खुलकर न निकलेगी।

अगर जुलाब ज़ोर से लग जायगा; तो पहले तो मल, पित्त, कफ और अधोवायु निकलेंगे; शेष में केवल खून गिरने लगेगा। इसके बाद मांस और मेद से घुला हुआ पानीसा निकलेगा, या दस्त कफ और पित्त जिसमें न होगा, ऐसा जल निकलेगा या काला-काला खून निकलेगा। रोगी को प्यास बहुत लगेगी, वायुका कोप हो जायगा। इसीलिये विद्वानों ने कहा है:—

चिकित्साप्राभृतो विद्वान् शास्त्रवान् कर्मतत्परः
नरं विरेचयति यं संयोगात् सुखमश्नुते ॥
यो वैद्यमानीत्वबुधो विरेचयाति मानवम्
सोऽति योगादयोगाच्च मानवो दुःखमश्नुते ॥

चिकित्सा-कर्म में कुशल, विद्वान्, शास्त्रों के जाननेवाला और अपने कामका अभ्यास रखनेवाला वैद्य जिसको जुलाब देता है, वह रोगी रोग से छूटकर सुखी होता है। किन्तु वैद्यत्व का घमण्ड करनेवाला अज्ञान वैद्य जिसको जुलाब देता है, वह मनुष्य अतियोग—अधिक जुलाब लग जाने और अयोग—जुलाब न लगने के कारण दुःख का भागी होता है।

(१८) महर्षियों की निम्नलिखित शिक्षायें प्रत्येक वैद्य को सदा याद रखनी चाहियें:—

"हे वैद्य ! यदि तुझे कर्म-सिद्धि, अर्थ-सिद्धि, यशोलाभ और स्वर्ग की कामना है, तो सदा गुरु के उपदेशों पर ध्यान दे। हमेशा सब जीवों की मङ्गल कामना कर, सर्वन्तःकरण से रोगियों के आरोग्य करने में सावधानी से लगा रह ; अपनी जीविका के लिये रोगियों से अत्यन्त धन न ले ; मन से भी परस्त्री-गमन की इच्छा न कर ; पराये धन पर मन मत चला ; सदा साफ़-सफ़ेद कपड़े पहना कर और अपने चिकित्सा के यन्त्रों यानी औज़ारों को हमेशा साफ़ रखा कर ; भूलकर भी मदिरा पान मत कर; पाप-कर्म से दूर रह; निष्पाप लोगों की संगति कर ; धर्म में मति रख; सबका भला चाह ; सच्चे दिल से पराया हित कर ; ज़ियादा बकवाद मत कर ; सदा देश-काल का विचार रख; बातों को याद रक्खा कर ; तरह-तरह की वैद्योपयोगी वस्तुओं का संग्रह किया कर।

"जो व्यक्ति राजद्रोही हों, जो बड़े आदमियों से विरोध रखते हों, जो दुष्ट और दुराचारी हों, जिन्हें अपनी बदनामी का भय न हो, जो स्वयं मरनेको तैयार हों,—ऐसे लोगोंकी चिकित्सा न करनी चाहिये। जिन स्त्रियों के सिर पर उनके पति या भाई आदि सम्बन्धी न हों, उनका इलाज भी न करना चाहिये। स्त्रियाँ यदि कोई चीज़ उपहार-स्वरूप दें ; तो बिना उनके पति, भाई, देवर आदि सम्बन्धियों की आज्ञा के न लो।

"घर के मालिक की आज्ञा लेकर घरमें जाओ। घरमें ख़बर करा कर घुसो। जहाँ जाओ दिव्य वस्त्र पहन कर जाओ ; घरमें नीचा सिर करके घुसो। रोगी के पास जाकर रोग का तत्त्व समझने की चेष्टा करो और किसी तरह की फ़ालतू बात मत करो। रोगी के काम के सिवा और किसी भी विषयमें वाक्य, मन, बुद्धि, और इन्द्रियों को न लगाओ।

"रोगी के घर की बात और किसी से कभी मत कहो। रोगीकी मृत्यु निश्चित हो, तुमको रोगी के मरने का सोलह आना विश्वास

हो जाय, तो यह बात किसी से भी मत कहो। ऐसी बात सुनने से रोगी और रोगी के सम्बन्धियों के चित्त पर गहरी चोट लगती है।

"तुम कैसे ही धुरन्धर विद्वान् क्यों न हो, पर अपनी तारीफ़ आप कभी मत करो; जो लोग अपनी बड़ाई आप करते हैं, उनसे प्राणी विरक्त हो जाते हैं।"

(१९) रोगी को रोग-परीक्षाके समय जल्दबाज़ी मत करो, चाहे आपकी हानि ही क्यों न होती हो, आपको और जगह की फ़ीस ही क्यों न मारी जाती हो। थोड़े रोगी हाथ में लेना, और उन सबको रोगमुक्त करना अच्छा ; किन्तु ढेर रोगियों को हाथमें ले लेना और फिर उन्हें सँभाल न सकना अच्छा नहीं।

आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा (चमड़े) से रोगी के रोग की परीक्षा करो, पूछने की बातें पूछ कर मालूम करो। जब सब तरह से आपकी समझ में रोग आ जाय, रोग साध्य हो, रोगी की आयु हो, अरिष्ट न हो—तब रोगी की अवस्था, देश, काल, और मात्रा का विचार करके उत्तम औषधि दो और दवा-सेवन-विधि एवं पथ्यापथ्य की बात रोगी और परिचारक को अच्छी तरह समझा दो। बहुतसे वैद्य मारे जल्दीके अथवा मिज़ाजके कारण आधी बात कहते और आधी नहीं कहते, फ़ीस जेब में डाल कर चल देते हैं। हमने अनेक बार देखा है, रोगी के ऊपरवालों के अच्छी तरह न समझने से अमृत-समान दवाएँ भी बेकार साबित हुई हैं अथवा उपद्रव बढ़ गये हैं।

(२०) नाड़ी-परीक्षा की आजकल चाल हो गई है। अगर वैद्य नाड़ी न पकड़े, तो लोग उसे वैद्य नहीं समझते। इसलिये वैद्यों को नाड़ी पकड़नी ही पड़ती है। किन्तु सारे रोगों का हाल केवल नब्ज़से किसी को भी मालूम नहीं हो सकता ; क्योंकि कितने ही रोगों में नाड़ी की चाल एकसी होती है। वहाँ निश्चय रूपसे कैसे

मालूम हो सकता है कि अमुक ही रोग है। जैसे—धातुक्षीण वाले की नाड़ी क्षीणगति और बिल्कुल मन्दी होती है और मन्दाग्निवाले की नाड़ी भी क्षीणगति और बिल्कुल मन्दी होती है; इसी तरह तृप्त मनुष्य की नाड़ी स्थिर होती है और कफ तथा प्रदररोग में भी नाड़ी स्थिर होती है। सारांश यह, कि नाड़ीपरीक्षा अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि नाड़ीपरीक्षा से वैद्य का बड़ा काम निकलता है, पर एकमात्र नाड़ी-परीक्षा पर निर्भर रहने से बहुधा धोखा हो जाता है।

यद्यपि प्राचीन शास्त्र "चरक सुश्रुत" प्रभृति में नाड़ी-परीक्षा का ज़रा भी ज़िक्र नहीं है, तोभी आजकल इसका रिवाज हो गया है। नाड़ीज्ञान-बिना वैद्य की प्रतिष्ठा नहीं है, और नाड़ी-परीक्षासे लाभ भी है, इसलिए वैद्य को इसका अभ्यास अवश्य करना चाहिये। मगर नाड़ीपरीक्षा गुरु के सिखाने से जैसी अच्छी आती है, वैसी अपने-आप पुस्तकों की सहायता से नहीं आ सकती। हाँ, जो एकलव्यकी तरह चतुर पुरुष हैं वे अपने-आप भी इस कठिन विद्या को सीख सकते हैं, पर सभी एकलव्य नहीं, इसी से हमने गुरु की बात लिखी है। आजकल नाड़ी-परीक्षा शास्त्रानुसार हो गई है; यानी आजकलके शास्त्र इसे और परीक्षाओं के साथ शामिल करते हैं। यहाँ इस बात को फिर समझ लेना चाहिये कि, यदि वे लोग केवल नाड़ीपरीक्षासे काम चलता देखते, तो नाड़ी-परीक्षा के साथ मूत्रपरीक्षा, मलपरीक्षा, जिह्वा-परीक्षा प्रभृति और सात परीक्षाओं की ज़रूरत न समझते।

कहा है:—

गदाक्रान्तस्य देहस्य, स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत् ।
नाड़ी मूत्र मलं जिह्वां, शब्द, स्पर्श दृगाकृतिम् ॥

रोगी के शरीर के आठ स्थानों की परीक्षा करनी चाहिये :— नाड़ी, मूत्र, मल, जीभ, शब्द, स्पर्श, आँख और आठवें आकृति।

यद्यपि आजकल नाड़ीपरीक्षा प्रधान है; तथापि प्रमेह, सोज़ाक और पथरी-रोगमें बिना "मूत्रपरीक्षा" के काम नहीं चलता। अतिसार, संग्रहणी और सन्निपात प्रभृति रोगों में "मलपरीक्षा" करनी होती है। आमवात प्रभृति रोगों में "जिह्वा" की और कण्ठ के रोगों में "शब्द" की परीक्षा की जाती है। दाद खुजली प्रभृति चर्म-रोगों में 'स्पर्श-परीक्षा' होती है यानी हाथ से छूकर रोगका तत्त्व मालूम करते हैं। पाण्डु-कामला यानी पीलिये वग़ैरः में आँखें देखी जाती हैं। फोड़ा आदि में फोड़े की आकृति देखते हैं। हमने ऊपर उदाहरण-स्वरूप जो रोग लिखे हैं, इनके सिवा अन्यान्य रोगोंमें भी नेत्र, जीभ आदि देखे जाते हैं। ज्वर में शरीर के हाथ लगानेसे ज्वर का ज्ञान होता है।

(२१) चिकित्सा करनेवालेके लिए अनेक मौक़े ऐसे भी आ जाते हैं, जब किसी रोगका नाम उसे नहीं मालूम होता। यह बात दो तरहसे होती है—(१) वैद्यको समय पर उसे रोगके लक्षण याद न आने से; (२) कोई ऐसा रोग प्रकट हो जानेसे, जिसके लक्षण पूर्व्वाचार्योंने लिखेही न हों। मोती-ज्वर, पानी-ज्वर, यकृत-रोग, फिरङ्ग प्रभृति ऐसे अनेक रोग हैं, जो पहले भारतमें न होते थे; किन्तु अब विदेशियोंके आवागमनसे भारतमें आकर बस गये हैं। ऐसे रोगोंके निदान लक्षण आदि पुराने ग्रन्थोंमें नहीं हैं। भाव-प्रकाश और बङ्गसेन में फिरङ्ग और यकृत की चिकित्सा लिखी है; किन्तु प्लेग, मोती-ज्वर आदिका ज़िक्र इनमें भी नहीं है।

यद्यपि हमारे पूर्व्वाचार्योंने अनेक रोगोंके नाम और रूप आदि लिख दिये हैं; तोभी चिकित्साका दार-मदार वातादि दोषों पर रक्खा है। हमारे यहाँ दोषोंकी विषमताका नाम रोग है और समताका नाम आरोग्य है। जिस क्रिया द्वारा वैषम्य-प्राप्त धातुएँ समताको प्राप्त होती हैं यानी घटे हुए और बढ़े हुए दोष समान हो जाते हैं, उसे ही "चिकित्सा" कहते हैं। वाह-वाह! कैसी

अच्छी तरकीब रक्खी है! क्या ऐसी अच्छी तरकीब और किसी देशके चिकित्साशास्त्र में भी है? कदापि नहीं।

शास्त्रकारोंने सभी रोगोंके नाम नहीं लिखे हैं। इसीलिये किसी रोगका नाम यदि न मालूम हो, तो वैद्यको घबराना और मुँह उतारना उचित नहीं। चरकमें लिखा है :—

विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात्कदाचन।
नहि सर्व विकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः॥

अगर कोई वैद्य रोग जाननेमें कुशल न हो, तो हरगिज़ न शरमावे; क्योंकि सभी रोगोंकी स्थिति नामसे ही नियत नहीं है।

अगर वैद्यको किसी रोगके नामका पता न लगे तो घबरावे नहीं, परन्तु वातादिक दोषोंकी परीक्षा अच्छी तरह कर ले; यानी इस बातकी खोज करे कि, कौनसा दोष कुपित है या कौनसा दोष घटा या बढ़ा है और कौनसा दोष समान है। जिन दोषोंकी घटती-बढ़ती देखे, उन्हें समान करे। दोषोंके समान होनेसेही रोगी आराम हो जायगा। कहा है :—

नास्ति रोगो बिना दोषैर्यस्मात्तस्माच्चिकित्सकः।
अनुक्तमपि दोषाणां, लिंगैर्व्याधिमुपाचरेत्॥

रोग दोषोंके बिना नहीं होते, इसलिये यदि किसी रोगका नाम शास्त्रमें न लिखा हो, तो वैद्य दोषों (वात, पित्त, कफ) के चिह्न देख कर, उन्हींके अनुसार रोगकी चिकित्सा करे; अर्थात् घटे हुए दोषोंको बढ़ाकर और बढ़े हुए दोषोंको घटाकर समान करे; क्योंकि दोषोंकी विषमता का नाम ही रोग और समता का नाम ही आरोग्य है।

चरक में औरभी लिखा है :—

विकारो धातु वैषम्य, साम्यं प्रकृतिरुच्यते ।
सुखसंज्ञकमारोग्यं, विकारो दुःखमेवच ॥
याभिःक्रियाभिर्जायन्ते, शरीरेधातवः समाः ।
सा चिकित्सा विकाराणां, कर्मतद्भिषजां मतम् ॥

वात, पित्त और कफ की विषमता का नाम रोग है और इनकी समता का नाम आरोग्य है। आरोग्य का नाम सुख और रोग का नाम दुःख है।

जिस क्रिया के द्वारा विषम धातुएँ सम हो जायँ, उसे ही रोगों की चिकित्सा कहते हैं और यही वैद्यों का कर्म है।

२२ हारीत मुनिने लिखा है कि, तपस्वी, ब्राह्मण, स्त्री, बालक, दीन, दुर्बल, बुद्धिमान्, पण्डित, महात्मा, वेदपाठी, साधु, अनाथ और बन्धुहीन रोगी की चिकित्सा वैद्य, बिना कुछ लिये, पुण्यार्थ करे और इनकी चिकित्सामें टालमटोल करके विलम्ब न करे।

राजा, साहूकार, ठाकुर, सेनापति—इनकी चिकित्सा करके वैद्य को धन लेना चाहिए और इनसे भय न करना चाहिये।

ब्राह्मण, प्रोहित, कवीश्वर, कत्थक, और ज्योतिषी—इनकी चिकित्सा अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि ऐसेही लोगोंकी चिकित्सा से वैद्य को यश मिलता है।

कसाई, चोर, म्लेच्छ, अग्नि लगानेवाला, मछलियों को मारने वाला, अनेकों का दुश्मन और चुग़लख़ोर,—इनकी चिकित्सा न करनी चाहिए।

अब हारीत मुनिका ज़माना नहीं है, इसलिए अब जैसा समय है वैसाही काम करना चाहिये। मतलब यह है, कि जिनके पास धन है, जो देने योग्य हैं, उनसे धन अवश्य लेना चाहिये और जिनके पास धन नहीं है, जो दीन और अनाथ हैं, उनकी चिकित्सा मुफ़्त करनी चाहिये। मुफ़्त इलाज करनेसे अवश्य कीर्त्ति फैलेगी।

इस विषयमें बङ्गसेन महोदयने आजकलके समय के अनुकूल खूब अच्छा लिखा है। उन्होंने लिखा है:—"अत्यन्त क्रोधी, बिना विचारे हर प्रकार का साहस करनेवाला, भयभीत, किसीका उपकार न माननेवाला, हर समय शोकमें डूबा रहनेवाला, मरनेकी इच्छा करने वाला, जगत् से वैर रखनेवाला, शिथिल इन्द्रियोंवाला, वैद्यमें विश्वास न रखनेवाला, अपने तईं वैद्य के समान समझनेवाला, वैद्य को ठगनेवाला,—ऐसे रोगियों की चिकित्सा वैद्यको न करनी चाहिये। ऐसे रोगियों का इलाज करनेसे वैद्य को सिवा हानिके कोई लाभ नहीं; मिलने-जुलनेकी तो खाक नहीं, यदि किसी तरह रोग बढ़ जाय तो वैद्य बेचारे की बदनामी होती है। निर्धनों की चिकित्सा करनेमें वैद्यको लोभ त्याग कर पुण्य-सञ्चय करना चाहिये और धनवानोंसे धन लेना चाहिये।

२२ हमारे देशमें आजकल "लंघन" की बड़ी चाल होगई है। ज्वर आया नहीं कि, रोगी को वैद्यजीने लंघन का हुक्म दिया नहीं। इसका नतीजा बहुत ख़राब होता है। अनेक रोग उठ खड़े होते हैं। लंघन कराने से वातादि दोषों का क्षय होता है, भूख लगती है, ज्वर हलका होता है; मगर चाहे जिस ज्वरमें, चाहे जिस रोगी को लंघन कराने और बलका विचार किये बिना अंधाधुन्ध लंघन करानेका परिणाम ख़राब होता है। लंघन इस तरह कराना चाहिये, जिससे बल न घटे, क्योंकि बलके अधीन ही आरोग्यता है और आरोग्यताके लिये ही चिकित्सा की जाती है। वात रोगी, प्यासे, भूखें, थके हुए तथा बालक, बूढ़े, गर्भवती स्त्री आदि को लंघन कराना ही मुनासिब नहीं। वाग्भट्ट ने लिखा है,—जिसे खाना खा चुकते ही बुखार चढ़ आवे, और जिसे आमज्वर हो, उन्हें वमन यानी क़य करानी चाहिये। अत्यन्त लंघन करनेसे हड़फूटन, खाँसी, मन में भ्रम प्रभृति तकलीफें उठ खड़ी होती हैं; भूख प्यास का नाश हो जाता है और रोगी बलहीन हो जाता है। इसवास्ते

लङ्घन विचार कर कराने चाहिएँ। लंघनके सम्बन्धमें विस्तार से हम आगे लिखेंगे।

२४ वैद्य जिस रोगीका इलाज करे, उसको औषधि ही का प्रबन्ध करके न रह जाय। साथ-ही पथ्य-अपथ्य का भी ख़याल रक्खे। हमने अनेक वैद्य ऐसे देखे हैं, जो रोगी को देखकर दवा लिख जाते या दे जाते हैं, परन्तु पथ्य का उन्हें ख़याल ही नहीं रहता। रोगी या रोगी के घरवाले अगर पूछते हैं, तो आप लापरवाहीसे साबूदाना या मूँग का जूस या रूखी रोटी परवल का साग आदि बता कर अपना पीछा छुड़ाते हैं। वैद्यको इस बातका हमेशा ख़याल रखना चाहिये कि, बिना पथ्य सेवनके हज़ार उत्तम औषधियाँ देने पर भी, रोगी को आराम नहीं हो सकता। कहा है :—

विनापि भेषजैर्व्याधिः, पथ्यादेव निवर्त्तते।
नतु पथ्य विहीनस्य, भेषजानां शतैरपि॥

पथ्ये साति गदार्त्तस्य, किमौषध निषेवणैः।
अपथ्ये साति गदार्त्तस्य, किमौषधानिषेवणैः॥

(बिना दवा के केवल पथ्य से भी रोगी का रोग आराम होजाता है और पथ्यहीन रोगी का रोग हज़ारों दवाइयोंके सेवन से भी आराम नहीं होता)

यदि पथ्य सेवन किया जाय तो रोगी को दवा खानेकी ज़रूरत नहीं; उसका रोग बिना दवाके ही आराम हो जायगा; यदि रोगी अपथ्य सेवन करे तो उसे दवा देना व्यर्थ है; क्योंकि अपथ्य सेवन करने पर, हज़ारों दवाइयाँ देने से भी रोग आराम न होगा। इसी-लिए कहा है कि "एक पथ्य और हज़ार दवा।"

२५ कैसीभी बड़ी जगह हो, पर वैद्य को रोगी के घर बिना बुलावा आये हरगिज़ न जाना चाहिये। जो वैद्य बिना बुलाये रोगी के घर जाते हैं उनका मान नहीं होता। कहा है:—

कुचैलः कर्कशः स्तब्धः ग्रामणीः स्वयमागतः।
शस्यते यश्च वैद्यो न धन्वन्तरिसमा यदि॥

जो वैद्य मैले कपड़े पहनता है, कड़वी वाणी बोलता है, अभिमानी, कातर और व्यवहार-कुशल नहीं होता, गाँव का गँवार होता है, बिना बुलाये अपने आप रोगीके घर चला जाता है; यदि वह धन्वन्तरिके समान हो, तोभी उसकी इज़्ज़त नहीं होती। इसके विपरीत जो साफ़-सफ़ेद वस्त्र पहनता है, मीठी-मीठी बातें करता है, घमण्ड नहीं करता और व्यवहार-कुशल होता है, तमीज़दारीसे काम लेता है और बिना बुलाये रोगी के यहाँ नहीं जाता, उसका आदर-मान होता है।

२६ अगर तुम किसी वैद्य को असाध्य रोगी की चिकित्सा करते और सफलता प्राप्त करते भी देखलो, तोभी तुम स्वयं वैसा मत करो। असाध्य रोगीका इलाज हाथमें लेनेवाले वैद्य अच्छे वैद्य नहीं; चाहे उन्हें घुणाक्षर न्याय की तरह सफलता ही क्यों न हो जाय। देखते हैं, अगर मूर्ख भी शीघ्र ही प्रमेह में मापान और मदात्यय रोग में जी की शराब का सेवन करता है, तो उसका काम बन जाता है।

२७ पहले के वैद्य रोगी के जल का बहुत कुछ ख़याल रखते थे; मगर आजकलके वैद्य भी डाक्टरों की देखा-देखी, बहुधा, सभी रोगोंमें शीतल जल पीनेको दिला देते हैं; अथवा जिनका ख़याल गर्म जल पर जमा हुआ है वह सभी रोगोंमें औटाया हुआ जल दिला देते हैं। मगर यह बड़ी भारी ग़लती है। वैद्य को चाहिये कि जिन रोगों में गर्म जल की आज्ञा है, उनमें गर्म जल दिलावे और जिनमें शीतल जल की आज्ञा है, उनमें शीतल जल दिलवावे; अन्यथा भलाईके बदले बुराई होने की सम्भावना है। रक्तपित्त, मूर्च्छा, और ख़ूनविकार एवं पित्तके रोगों में गर्म जल हानिकारक है; इसी तरह ज़ुकाम,

ताज़ा ज्वर, हिचकी और खाँसी वगैरः में शीतल जल हानिकारक है। सन्निपात-रोगमें प्याससे पीड़ित रोगी को बिना पकाया शीतल जल देना और उसकी मृत्युको बुलाना, दो बात नहीं हैं। कहा है :—

मूर्च्छा पित्तोष्ण दाहेषु, विषरक्ते मदात्यये।
श्रमे भ्रमे विदग्धेऽन्ने, तमके वमथौ तथा।
उर्द्धगे रक्तपित्ते च शीताम्बु प्रशस्यते॥

पार्श्वशूले, प्रतिश्याये वातरोगे गलगृहे।
आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यः शुद्धौ नवज्वरे
अरुचि गृहणी गुल्मश्वास कासेषु विद्रधौ।
हिक्कायां स्नेहपानेच शीताम्बु परिवर्जयेत्॥

सन्निपातेन तप्यन्तं, पार्श्वरुक्तालु शोषिणम्
यः पाययेज्जलं शीतं, स मृत्युर्नर विगृहः॥

मूर्च्छा, पित्त, गरमी, दाह, विष, रक्तविकार, मदात्यय, श्रम, भ्रम, तमकश्वास, वमन और ऊपरके रक्तपित्त,—इन रोगोंमें तथा जिसका अन्न जल गया हो, उसे शीतल जल अच्छा है।

पसली की पीड़ा, जुकाम, बादीके रोग, गलग्रह, अफारा, दस्तकब्ज, जुलाब के ऊपर, नये बुखारमें, अरुचि, संग्रहणी, गुल्म-रोग, श्वास, खाँसी, विद्रधि और हिचकी में तथा तेल आदि पीने पर शीतल जल पीना मना है; अर्थात् इन रोगोंमें गरम किया हुआ जल पीना चाहिये।

सन्निपात-रोगी यदि प्यासके मारे घबरा रहा हो,—उसकी पसलियों में दर्द हो, उसका तालुआ सूख रहा हो, अगर ऐसी दशामें वैद्य उस रोगी को ठण्डा पानी पीनेको दिलावे, तो उस वैद्य को रोगी की मृत्यु समझना चाहिये।

बहुत से रोग ऐसे भी हैं, जिनमें वैद्य को रोगीके लिये थोड़ा-थोड़ा जल पीने को हिदायत करनी चाहिये। अरुचि, जुकाम, मन्दाग्नि, सूजन, क्षय, मुखप्रसेक (मुँह से जल गिरना), उदर-रोग, कोढ़, नेत्ररोग, ज्वर, व्रण, और मधुमेह में अल्प जल पीना अच्छा है।

२८ सन्निपात में रोगी अक्सर बकझक करने लगता है, उस समय लोग कहा करते हैं कि इसे बादी आगई है। मूढ़ वैद्य उस बादीके शान्त करनेके लिये रोगी को "घी" पिलाते हैं, क्योंकि घृतपान करनेसे वात की शान्ति होना प्रसिद्ध है। मगर यह बड़ी भारी ग़लती है, (सन्निपातमें "घी" पिलाना रोगी को मारना है।) बङ्गसेनमें लिखा है :—

सन्निपातेन मनुजं विलपन्तन्तु यो घृतम् ।
पाययद् भोजयेद् वापि तौ च स्यातामुभौ वधम् ॥

सन्निपात-रोगमें प्रलाप करते हुए रोगी को घी पिलाने या उसके भोजन में घी देनेसे रोगी मर जाता है।

सन्निपात-रोगी को भूख लगने पर मांस और भात देना तथा दाहके मारे रोगी के चिल्लाने पर उसके ऊपर ठण्डा पानी गिराना, महामूर्खों का काम है। इन बातों से रोगी मर जाता है।

सन्निपातोंमें "मधु" कदापि न देना चाहिये, क्योंकि मधु खाने पर शीतल उपचार किया जाता है, और सन्निपात में शीतल उपचार की मनाही है।

सन्निपात-ज्वर में अगर पसीना आवे तो उसे शीघ्र बन्द करना चाहिये, क्योंकि पसीने से शीत आने और शीघ्र ही रोगी के मरने का भय रहता है।

सन्निपातके शान्त होने पर, दूध प्रभृति पतले रसों के सेवन या दिनमें सोने से आमाशयमें कफ सञ्चित होकर, वायुके मार्गों को रोक कर, धमनियोंमें घुसकर "तन्द्रा" पैदा करता है। तन्द्रा-

वाले की आँखें आधी बन्द और आधी खुलीसी रहती हैं और कुछ टेढ़ी-मेढ़ीसी मालूम होती हैं, आँखों के तारे इधर-उधर घूमते हैं, पलक स्थिर हो जाते हैं, बाहर से ही दाँत दीखते हैं। ऐसे-ऐसे और भी लक्षण होते हैं। यह तन्द्रा तीन दिन तक साध्य है, फिर असाध्य हो जाती है, इसलिये नास वग़ैरः देकर, यथा-सामर्थ्य, तन्द्राको शीघ्र दूर करना चाहिये, नहीं तो रोगी मर जायगा। ज्वरमें तन्द्रा सबसे अधिक बुरा उपद्रव है। कहा है :—

सन्निपात ज्वरोत्पन्नां युक्त्या तन्द्रां जयेद्भिषक्।
उपद्रवः कष्टतमो, ज्वराणां सविशेषतः॥

सन्निपात-ज्वर में जो तन्द्रा पैदा हो, उसे वैद्य को बड़ी बुद्धिमानी से नाश करना चाहिये, क्योंकि ज्वर में यह उपद्रव सबसे अधिक कष्टकर है।

सन्निपात-ज्वर के अन्तमें रोगी के कानकी जड़में एक प्रकार की घोर सूजन पैदा हो जाती है, उस सूजनसे कोई ही भाग्यवान बचता है; नहीं तो जिनके होती है वे हो मर जाते हैं। उसको भी अपनी भरसक जोंक प्रभृति उपचारों से शीघ्र नाश करना चाहिये।

सन्निपात-ज्वर के रोगियों के आराम करने के वास्ते—बेहोशी, पसीना, तन्द्रा प्रभृति उपद्रवोंके नाश करने के लिये,—उत्तमोत्तम नास, अंजन, शरीर या हाथ पैरोंमें मलने की उत्तमोत्तम दवाइयाँ वैद्य पहले से तैयार रक्खे। ऐसे रोग में वक्त पर हाथ पैर फूल जाते हैं, अनेक चीज़ों के जल्दी न मिलने या तैयार करने में देरी होने से रोगी की जान चली जाती है। यहाँ हमने सन्निपात-ज्वर-सम्बन्धी दो चार इशारे लिख दिये हैं, खोल-खोलकर प्रत्येक विषय, जहाँ सन्निपात-ज्वर का ज़िक्र होगा वहाँ समझावेंगे।

जितने रोग हैं उनमें ज्वर की चिकित्सा कठिन है। गाय भैंस हाथी घोड़े प्रभृति पशुओं को तो ज्वर मारही डालता है; केवल

मनुष्य इसे सह लेते हैं, पर मनुष्योंमें भी यह स्वभावसे ही कष्ट-साध्य है। यह सब रोगों से बलवान है, इसीसे इसे रोगों का राजा कहा है। ज्वरोंमें भी सन्निपात-ज्वर सबसे बुरा है। इसलिये वङ्गसेन ने कहा है :—

समुद्रतरणं ह्येतद्वदन्ति भिषगीश्वराः।
मृत्युना सह योद्धव्यं सान्निपात चिकित्सुना॥
सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरतिमानवम्।
कस्तेन न कृतो धर्म्मः काञ्च पूजां न सोऽर्हति॥

जो वैद्य सन्निपात की चिकित्सा करता है, वह साक्षात् मौत से लड़ता है; उसको प्राचीन वैद्य समुद्र से निकालनेवाला कहते हैं।

सन्निपात-रूपी समुद्र में डूबे हुए रोगी को जो बचाता है, उसने कौनसा धर्म नहीं किया और वह किस पूजाके योग्य नहीं है?

हारीत-संहितामें लिखा है,—"सन्निपात-ज्वरमें पहले वात-कफको नाश करनेवाली क्रिया करनी चाहिये; जब कफका क्षय हो जाता है तब वात और पित्त आपही शान्त हो जाते हैं। सन्निपात-ज्वरमें यत्नसे तन्द्रा को दूर करना चाहिये, क्योंकि यह बड़ा कठिन और शीघ्र प्राणनाशक उपद्रव है। सन्निपात-ज्वरमें कफसे पूरित रोगीको जो वैद्य पथ्य देता है, वह वैद्य रोगी का शत्रु है। इस ज्वरमें पथ्य और दवा योंही न दे देनी चाहिये।" मतलब यह है कि वैद्य सन्निपात-ज्वरमें ऐसे उपाय करे, जिससे कफ दूर हो। जब कफ निकल जाय, शरीरके छेद शुद्ध हो जायँ, शरीर हलका हो जाय और प्यास जाती रहे; तब वैद्य पथ्यादिका विचार करे; कफ के बिना दूर हुए ही यदि पथ्य दे दिया जायगा तो रोगी अवश्य मरेगा। सन्निपातके इलाजमें बड़े धैर्य्य, बड़े साहस और बड़ी बुद्धिमानी की ज़रूरत है।

२८ याद रक्खो; ज्वर ऋतुके अनुसार दोषों की तुल्यता होने से

साध्य होता है; प्रमेह दोषों की दूष्यता समान होने से साध्य होता है और रक्तगुल्म पुराना होनेसे सुखसाध्य होता है।

३० जिस रोगी के शरीर की शोभा नष्ट होगई हो, इन्द्रियाँ अपना-अपना काम न कर सकती हों, अन्नमें एकदम अरुचि हो, ज्वर तेज और उसका वेग गम्भीर हो,—ऐसे ज्वर रोगी का इलाज मत करो।

बवासीर यानी अर्शके रोगीको भी समझ-बूझकर हाथमें लेना चाहिये। यदि बवासीर गुदाकी पहली वलि या पहले आँटे में हो, एक दोष से उत्पन्न हुई हो, और बहुत दिनों की न हो तब तो आप इलाज कीजिये; रोगी आराम हो जायगा। अगर बवासीर दो दोषोंसे पैदा हुई हो, गुदा की दूसरी वलि में हो और जिसे एक वर्ष हो चुका हो, वह तकलीफ़ से आराम होती है। जो बवासीर जन्म से हो, अथवा तीनों दोषों से पैदा हुई हो और भीतर की वलि में हो, उसको असाध्य समझो और वैसी बवासीर आराम करने का दावा मत करो। हाँ, असाध्य बवासीर भी अगर रोगी की उम्र बाक़ी हो; वैद्य, औषधि, सेवक और रोगी अपने-अपने चारों गुणों से युक्त हों; रोगी की अग्निदीप्त हो; तो शायद बड़ी-बड़ी चेष्टाओंसे आराम हो जाय।

अगर बवासीर वाले रोगी के हाथ, पाँव, मुख, नाभि, गुदा और फोतों में सूजन हो, हृदय और पसलियोंमें दर्द हो, तो रोग को असाध्य समझो।

जिस बवासीर-रोगी को प्यास लगती हो, अरुचि हो, दर्द के मारे घबराता हो, खून ज़ियादा गिरता हो, साथ ही सूजन और अतिसार हो, ऐसा रोगी मर जाता है।

अनेक बवासीर-रोगी जिनकी बवासीरमें अत्यन्त तकलीफ़ नहीं होती, जिनके शरीर में बल होता है, दवा सेवन करते रहते हैं और साथ ही अपथ्य भी सेवन करते रहते हैं, इसलिये उनको आराम

नहीं होता; बल्कि रोग बढ़ जाता है। हारीत-संहिता में लिखा है:—

यथाकाष्टचयं दूरात् प्राप्य घोरतरोऽग्निकः।
तथा अपथ्यस्य संयोगाद्भवेद्घोरतरोगदः॥

जैसे लकड़ियोंके ढेर में दूर से पड़ी हुई अग्नि घोर रूप धारण कर लेती है, उसी तरह अपथ्य के संयोग से रोग भी घोर रूप धारण कर लेता है। इसलिये आप अपने रोगी से चेता-चेताकर कह दो, कि भाई! दिशा पेशाबको हाजत मत रोकना, स्त्री-प्रसङ्ग मत करना, हाथी या घोड़े की सवारी मत करना, उकरू मत बैठना, दोष करने वाले पदार्थ हरगिज़ न खाना-पीना। एक तरफ दवा होती रहे और दूसरी ओर रोगी उपरोक्त काम करता रहे, तो रोग कैसे आराम होगा? बवासीर-रोगी को "माठा" सेवन करनेको सलाह ज़ोर से दीजिए। माठा सेवन करनेसे मस्से जाते रहते हैं और फिर पैदा नहीं होते। माठे से बल, वर्ण और अग्नि की वृद्धि होती है, शरीर के स्रोत शुद्ध हो जाते हैं, इसलिए रसका सञ्चार अच्छी तरह होता है और कफ-वात के सैकड़ों विकार नाश हो जाते हैं।

चीते की जड़ की छाल को खूब महीन पीस कर, घड़े में लेप करके, उसीमें दही जमा कर और बिलोकर माठा पीने से हमारे अनेक रोगी बवासीर से छुटकारा पागये हैं। यह नुसखा बहुत अच्छा है। सारांश यह; कि बवासीरमें मेदेका बलवान रहना, अग्निवृद्धि होना, भूख लगना बहुत ज़रूरी है। इसके लिए तक्र यानी माठा § परमोत्तम है। आप अपने रोगीको माठा पीने की सलाह अवश्य देते रहें।

---

§ यद्यपि माठा बल पैदा करता है और थकान दूर करता है; ग्रहणी-दोष, बवासीर और अतिसारमें हितकारी है तथापि और और रोगोंमें यह नुकसान भी करता है। जिनको मूर्छा, भ्रम, प्यास रोग और रक्तपित्त हो, उनको माठा कभी न देना चाहिये। इन रोगोंमें माठा लाभके बदले हानि करता और अनेक रोग पैदा करता है। ग्रीष्म ऋतु और शरद ऋतु में माठा हानिकारक है।

पाण्डु या पीलिया अत्यन्त पुराना हो तो असाध्य समझो। जिस पीलियेवालेके शरीरमें सूजन हो, जिसे जगत्‌के सभी पदार्थ पीले-ही-पीले दीखें, उसे भी असाध्य समझो। रुधिरके क्षय होनेसे जिसका शरीर सफेद या पीला होगया हो; जिसके दाँत, नाख़ुन और नेत्र पीले होगये हों और जिसे सारे संसार के पदार्थ पीले दीखें, वह पीलिये वाला रोगी अवश्य मर जाता है।

वात-व्याधि, प्रमेह, कुष्ट, ववासीर, भगन्दर, पथरी, मूढ़गर्भ और उदर रोग—ये आठ "महाव्याधि" कहलाती हैं। ये आठों स्वभाव से ही कष्टसाध्य हैं। यदि इन महारोगोंके साथ बलक्षय, मांसक्षय, श्वास, तृषा, शोष, छर्दि, ज्वर, मूर्च्छा, अतिसार, हिचकी—ये उपद्रव हों; तब तो इनका आराम होना असम्भव ही है। इसलिये उत्तम वैद्य, जो अपनी सिद्धि चाहे, ऐसे रोगवालोंको हाथ में न ले।

बालक, अति वृद्ध और विकल के सारे शरीरमें सूजन हो, तो वे निश्चय ही मर जायँगे।

जिस रोगीका सारा चमड़ा पीला होगया हो, जिसकी आँखें पीली पड़ गई हों, जिसका पेशाव भी पीला हो तथा जिसे सभी चीज़ें पीली दीखें—ऐसा रोगी अवश्य मर जाता है।

जो रोगी बहुत दिनों का बीमार हो और जिसका रोग बढ़ रहा हो, जो खाने को न खाता हो, जो टूटे हुए अंगों को देखता रहता हो और जो औषधि न लेता हो—ऐसे रोगी का इलाज समझ-बूझ-कर करना; ऐसी जगह सफलता की बहुत ही कम आशा है।

जिस रोगी की जीभ, दोनों होठ, और आँखें लाली होगई हों अथवा उनसे खून गिरता हो;—ऐसा रक्तातिसार और रक्तपित्तवाला रोगी मर जाता है। जिसको कय में खून गिरे, विशेष करके जिसकी आँखें लाल हों और जिसे सब तरफ लाल-ही-लाल रंग दीखे—ऐसा रक्त-पित्त रोगी भी मर जाता है।

उपयोगी परिभाषायें ।

(१) आयुर्वेद—जिस ग्रन्थ से आयु का हिताहित और आयु का प्रमाण मालूम हो, उसे 'आयुर्वेद' कहते हैं ।

(२) आयु—शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के संयोग को 'आयु' कहते हैं ।

(३) द्रव्य—पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि), पवन, आकाश, आत्मा, मन, काल और दिशाओं के समूह को 'द्रव्य' कहते हैं ।

(४) चेतन—इन्द्रिय-विशिष्ट द्रव्य को 'चेतन' कहते हैं । जैसे; मनुष्य पशु पक्षी आदि ।

(५) अचेतन—इन्द्रिय-रहित द्रव्य को 'अचेतन' कहते हैं । जैसे; वृक्षादि ।

(६) स्थावर—इन्द्रियहीन जीवोंको जो चेतना-रहित हैं 'स्थावर' कहते हैं ।

(७) जङ्गम—इन्द्रियवाले चैतन्य जीवों को 'जङ्गम' कहते हैं ।

(८) अर्थ—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, और शब्द को 'अर्थ' या 'विषय' कहते हैं ।

(९) विषय—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द इनको विषय कहते हैं । ये पांचों ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं ।

(१०) द्रव्यगुण—गुरु, लघु आदि को गुण कहते हैं । "द्रव्य-गुण" २० हैं ।

(११) कर्म—प्रयत्न आदि चेष्टा को "कर्म" कहते हैं।

(१२) शारीरिक दोष—वात, पित्त और कफ,—ये शारीरिक दोष हैं।

(१३) मानसिक दोष—रज और तम,—ये मन के दोष हैं।

(१४) शारीरिक वायु—तीन दोषोंमें से एक दोष है। यह रूखा हलका, शीतल, सूक्ष्म, चञ्चल, पिच्छिलता-रहित और परुष है। इस के विपरीत गुण वाले द्रव्यों से इसकी शान्ति होती है।

(१५) रस— रस छः हैं। मीठा, खट्टा, नमकीन, चरपरा, कड़वा और कसैला।

(१६) वातनाशक रस—जिस रस से बादी शान्त हो, उसे वात-नाशक रस कहते हैं। मीठा, खट्टा, और नमकीन,—ये तीन रस वातनाशक हैं।

(१७) पित्तनाशक रस—मीठा, कसैला और कड़वा—ये तीन रस पित्त को शान्त करते हैं।

(१८) कफनाशक रस—कड़वा, कसैला और चरपरा,—ये तीन रस कफ को शान्त करते हैं।

(१९) पित्त—तीन दोषों में से एक दोष है। यह कम चिकनाई लिये, गर्म, तीक्ष्ण, पतला, खट्टा, दस्तावर और चरपरा है। रूखे, शीतल प्रभृति विपरीत गुणवाले द्रव्यों से इसकी शान्ति होती है।

(२०) कफ—तीन दोषोंमें से एक दोष है। यह भारी, शीतल, मृदु, चिकना, मधुर, स्थिर और पिच्छिल है। रूखे गर्म प्रभृति विपरीत गुणवाले द्रव्यों से इसकी शान्ति होती है।

(२१) प्राणिज द्रव्य—प्राणियोंसे पैदा होनेवाले द्रव्योंको "प्राणिज द्रव्य" कहते हैं। जैसे दूध, शहद, गोरोचन आदि।

(२२) पार्थिव द्रव्य—पृथ्वी-सम्बन्धी द्रव्योंको "पार्थिव द्रव्य" कहते हैं। जैसे; शीशा, रांगा, तांबा, हरताल आदि।

(२३) स्थावर द्रव्य—चेतना-रहित जीवों से सम्बन्ध रखनेवाले

द्रव्यों को "स्थावर द्रव्य" कहते हैं। जैसे; आम, जामुन, गूलर, जौ, गेहूँ आदि।

(२४) मूलप्रधान औषध—उन औषधों को कहते हैं, जिनकी केवल मूल या जड़ ही ली जाती है। ये गिन्ती में १६ हैं। जैसे बच, निशोथ आदि।

(२५) फल-प्रधान औषधि—उन औषधों को कहते हैं, जिनके फल ही लिये जाते हैं। ये उन्नीस हैं। जैसे मैनफल, वायबिडङ्ग आदि।

(२६) चार स्नेह—घी, तेल, चरबी और मज्जा,—ये चार स्नेह या चिकने पदार्थ हैं।

(२७) पञ्चलवण—संचर नोन, कालानोन, सेंधानोन, बिड़नोन, और समन्द्र नोन,—ये पाँच तरह के नोन हैं। अजीर्ण, वायुगोला, शूल और उदर-रोगों में ये हितकारी हैं।

(२८) आठ मूत्र—भेड़ का मूत्र, बकरी का मूत्र, गायका मूत्र, भैंस का मूत्र, हथनी का मूत्र, ऊँटनी का मूत्र और गधी का मूत्र, ये आठ तरह के मूत्र होते हैं। ये अफारा, बवासीर, उदर-रोग, वायुगोला और कुष्ठ आदि रोगोंमें, तथा लेप पुल्टिस और तरड़ा देनेके काम में आते हैं। इनके पीने से कफ का नाश, वायु का अनुलोमन (सीधापन) और पित्त का अधोगमन (नीचे जाना) होता है। इनमें बकरीका दूध—पथ्य और त्रिदोष-नाशक है। गोमूत्र—कृमिरोग, कोढ़ और खुजलीको आराम करता है; पीनेसे त्रिदोष-जन्य उदर-रोग नाश होते हैं। भैंस का मूत्र दस्तावर है; बवासीर, सूजन और उदर-रोग में अच्छा है। ऊँट का मूत्र—श्वास, खाँसी और बवासीर को नाश करता है। गधी का मूत्र—मृगी और उन्मादमें अच्छा है। हाथीका मूत्र—कृमि और कोढ़को नाश करता है, मल-मूत्र के रुकनेको दूर करता है; विष-विकार, कफ और बवासीर में अच्छा है।

(२६) आठ दूध—भेड़, बकरी, गाय, भैंस, ऊँटनी, घोड़ी, हथिनी, और स्त्री का दूध—ये आठ दूध होते हैं।

(३०) तेरह वेग—मूत्र, मल, शुक्र, अधोवायु, वमन, छींक, डकार, जँभाई, भूख, प्यास, निद्रा, आँसू, और श्वास—ये तेरह वेग हैं। इनके रोकने से बड़े-बड़े भयानक रोग होते हैं।

(३१) चिकित्साके पाद—वैद्य, औषध, सेवक और रोगी,—ये चार चिकित्सा के पाद हैं।

(३२) रोग—वात, पित्त और कफकी विषमताको "रोग" कहते हैं।

(३३) स्वास्थ्य—वात, पित्त और कफकी समानताको "स्वास्थ्य" या "आरोग्य" कहते हैं।

(३४) सुख-दुःख—आरोग्यता को "सुख" और रोग को "दुःख" कहते हैं।

(३५) चिकित्सा—जिस क्रिया द्वारा विषम (बिगड़े हुए) दोष समान किये जाते हैं, उसे ही "चिकित्सा" कहते हैं।

(३६) वैद्य के चार गुण—शास्त्रपारङ्गतता, बहुदर्शिता, चतुरता और पवित्रता,—ये चार वैद्य के गुण हैं।

(३७) औषध के चार गुण—बहुता, योग्यता, योग-वियोग पूर्व्वक कल्पना, और कीड़े आदिसे रहित होना,—औषधके ये चार गुण हैं।

(३८) सेवक के चार गुण—सुश्रुषा-ज्ञान, चतुराई, स्वामिभक्ति, और पवित्रता—सेवक के ये चार गुण हैं।

(३९) रोगी के चार गुण—स्मरण-शक्ति, वैद्य की आज्ञापालन, निर्भयता, रोग का यथार्थ हाल कहना—रोगी के ये चार गुण हैं।

(४०) साध्य—जिस रोग को वैद्य आराम कर सके, उसे "साध्य" कहते हैं।

(४१) सुखसाध्य—जिस रोग को वैद्य सुख से आराम कर सके, उसे "सुखसाध्य" कहते हैं; अथवा जो रोग एक दोषसे उत्पन्न होता

है, जिसमें कोई उपद्रव नहीं होता और जो नया होता है, उसे "सुखसाध्य" कहते हैं। सुखसाध्य रोगके आराम करनेमें वैद्यको बहुत कष्ट नहीं उठाना पड़ता।

(४२) कष्टसाध्य—जिस रोग को वैद्य बड़ी तकलीफ़ों से आराम कर सके, अथवा जो चीरफाड़ प्रभृतिसे इलाज करने लायक़ हो, उसे "कष्टसाध्य" या "कृच्छ्रसाध्य" कहते हैं।

(४३) असाध्य—जो रोग आराम न हो सके, रोगी के प्राण नाश करके पीछा छोड़े, उसे "असाध्य" कहते हैं।

(४४) अचिकित्स्य—जिस रोगका इलाज न हो सके, उसे 'अचि-कित्स्य' कहते हैं।

(४५) याप्य—जो रोग क्रिया यानी चिकित्साको धारण कर ले, किन्तु रोगमें की हुई क्रिया ज्योंही निवृत्त हो, कि रोगी मर जाय; ऐसे रोगको "याप्य" कहते हैं; अथवा असाध्य रोग यदि नरम हो, आराम होनेका कुछ भरोसा हो, तो उसे भी "याप्य" कहते हैं।

(४६) द्विदोषज—जो रोग वात, पित्त और कफ इन तीन दोषों में से किन्हीं दो दोषोंके कोपसे हो, उसे "द्विदोषज" कहते हैं।

(४७) त्रिदोषज—जो रोग तीनों दोषोंसे हो, उसे "त्रिदोषज" कहते हैं।

(४८) चार परीक्षा—आप्तोपदेश, प्रत्यक्ष, अनुमान और युक्ति— ये परीक्षा के चार प्रकार हैं; यानी इन चारों से परीक्षा होती है।

(४९) आप्तोपदेश—जो ज्ञान और तपोबल के प्रभाव से रजोगुण और तमोगुण से रहित हो गये हैं, जो त्रिकालज्ञ हैं, जिनका निर्मल ज्ञान कभी नाश नहीं होता, उनको 'आप्त' कहते हैं और उनके उपदेश को "आप्तोपदेश" कहते हैं।

(५०) प्रत्यक्ष ज्ञान—आत्मा, मन, इन्द्रिय, और इन्द्रियों के विषय,—इनके इकट्ठे होनेसे इन्द्रिय ज्ञान-होता है। इसीको "प्रत्यक्ष-ज्ञान" कहते हैं।

(५१) अनुमान—कार्य, कारण, और कार्य-कारण,—इन तीनोंके लक्षणों से किसी बात का अन्दाज़ा लगानेको "अनुमान" कहते हैं। जैसे धुआँ के देखने से आग का अनुमान होता है और गर्भ के देखने से इस बात का अनुमान किया जाता है कि, पहले मैथुन किया गया है।

(५२) युक्ति—जो बुद्धि अनेक प्रकार के कारणों से अनेक प्रकार के नतीजे निकाल सके, उसे 'युक्ति' कहते हैं। जैसे बीज बिना अंकुर कहाँ से होगा?

(५३) त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ और काम,—ये "त्रिवर्ग" कहाते हैं।

(५४) आप्तागम—लोक-परम्परा से चले आनेवाले शास्त्रवाक्य को 'आप्तागम' कहते हैं।

(५५) त्रिविध बल—स्वाभाविक बल, कालकृत बल और युक्ति-कृत बल—इन तीनों प्रकार के बलों को 'त्रिविधबल' कहते हैं। शरीर और मनके स्वभावसे जो बल होता है, उसे "स्वाभाविक बल" कहते हैं। ऋतु विशेष और अवस्था विशेष के कारण जो बल होता है, उसे "कालकृत बल" कहते हैं और जो बल अच्छा-अच्छा खाने और कसरत वग़ैरः से किया जाता है, उसे "युक्तिकृत-बल" कहते हैं।

(५६) तीन आयतन—रोगके तीन आयतन या कारण होते हैं। (१) इन्द्रियों के विषय,—रूप, रस, शब्द, स्पर्श और गन्धका अतियोग, अयोग और मिथ्या योग। (२) कर्म का अतियोग, अयोग और मिथ्या योग। (३) काल का अतियोग, अयोग और मिथ्या योग। बस, इन तीन कारणों से रोग होते हैं। किसी खूबसूरत स्त्री को हद से ज़ियादा देखना "रूपका अतियोग" है। किसी खूबसूरत स्त्री या चीज़ को देखना ही नहीं या देखना छोड़ देना; "रूपका अयोग" है। बहुत ही बारीक या बहुतही दूर की अथवा महाभयङ्कर चीज़ को देखना "मिथ्या योग" है। इसी तरह इन्द्रियों के और चारों विषयों के सम्बन्ध में समझ लो।

किसी काम में एकदम लग जाना "कर्म का अतियोग" है । उस में बिलकुल न लगना "कर्म का अयोग" है । कर्म को जिस तरह करना चाहिये उस तरह न करना, कर्म का "मिथ्या योग" है। मल के वेग को रोकना या बिना वेग के मल त्याग करना, विषम भाव से चलना-फिरना सोना प्रभृति "शारीरिक मिथ्या योग" हैं । निन्दा करना, झूठ बोलना, झगड़ा करना, कठोर वचन बोलना प्रभृति "वाचिक-मिथ्यायोग" हैं । शोक, क्रोध, लोभ, ईर्षा, द्वेष प्रभृति "मानसिक-मिथ्यायोग" हैं ।

सरदी-गरमी का ज़ियादा पड़ना, वर्षा का ज़ोर से होना, "काल का अतियोग" है। इनका ऋतु के लक्षण-अनुसार न होना, "कालका अयोग" है । इनका ऋतुओं के लक्षणों के विपरीत होना "कालका मिथ्यायोग" है ।

(५७) कर्म—शरीर, वाणी और मन की चेष्टा को 'कर्म' कहते हैं ।

(५८) काल—सरदी, गरमी और वर्षा इन मौसमों के समुदाय या समिष्टि को "संवत्सर" या "वर्ष" कहते हैं । इसीको "काल" कहते हैं ।

(५९) तीन रोग—रोग तीन तरहके होते हैं:—(१) निजरोग, (२) आगन्तु रोग, (३) मानसिक रोग । शरीर के वायु, कफ और पित्त के कारण से जो रोग होते हैं उन्हें 'निज रोग' कहते हैं । विष, हवा, आग और चोट वगैरः के लगने से जो रोग होते हैं उन्हें 'आगन्तु' रोग कहते हैं । प्यारी चीज़ के न मिलने और अप्यारी चीज़ के मिलने से जो रोग होते हैं उन्हें, 'मानसिक रोग' कहते हैं ।

(६०) तीन रोग-स्थान—रोगों के तीन स्थान हैं:—(१) रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र;—ये सात धातु और त्वचा (चमड़ा); (२) मर्म, अस्थि, सन्धि ; (३) कोष्ठ या कोठे । येही तीनों रोगों के स्थान हैं । गलगण्ड, अपची, अर्बुद, कुष्ट प्रभृति रोग पहले प्र-

कार के हैं। पक्षाघात, अंगग्रह, अपतानक, लकवा (अर्दित), सूजन, यक्ष्मा, अस्थि-शूल, सन्धि-शूल तथा सिर में होनेवाले, वस्ति में होने वाले और हृदय में होनेवाले रोग दूसरे प्रकार के हैं; यानी ये मर्म-स्थानों, हड्डियों और शरीर की जोड़ों में होते हैं। ज्वर, अतिसार, वमन, हैज़ा, श्वास, खाँसी, हिचकी, अफारा, उदर-रोग और तिल्ली प्रभृति रोग कोठों में होते हैं।

(६१) तीन वैद्य— छद्मचर वैद्य, सिद्ध-साधित वैद्य और वैद्य-गुण-युक्त वैद्य,—ये तीन वैद्य होते हैं। जो वैद्योंकीसी शीशी, पुस्तक वगैरः रखते हैं और वैद्यों के से कपड़े पहन कर वैद्य होने का ढोंग करते हैं, पर असल में वैद्यक का अक्षर भी नहीं जानते, उन्हें "छद्मचर वैद्य" कहते हैं। जो किसी नामी-गिरामी विद्वान वैद्य के कारण से पुजने लगते हैं, मगर जानते कुछ नहीं, उन्हें "सिद्ध-साधित वैद्य" कहते हैं। जो वैद्य प्रयोग-कुशल, विद्वान्, आरोग्यदाता और प्राण-रक्षक होते हैं यानी सच्चे वैद्य होते हैं, उन्हें "वैद्य" या "सद्वैद्य" कहते हैं। आज-कल छद्मचर और सिद्ध-साधित वैद्य बहुत हैं।

(६२) तीन औषधि—तीन प्रकार की औषधियाँ होती हैं। (१) दैवव्यपाश्रय (२) युक्तिव्यपाश्रय (३) सत्वावजय। हवन, जप, पूजा, व्रत, उपवास, हीरा-पन्ना आदि रत्नों का धारण करना प्रभृति, पहली क़िस्म की दवा है। क़ायदेके माफ़िक़ पथ्य-परहेज़ करना और औ-षधि सेवन करना, दूसरी क़िस्म की दवा है और देश, काल, बल, कुल और शक्ति के विरुद्ध काम न करना, अहित विषयों से मनको रोकना या शान्ति लाभ करना, ये तीसरी क़िस्म की दवा है। मत-लब यह है कि, जप हवन व्रत उपवास प्रभृति करने, पथ्य और औ-षधि सेवन करने और शान्त रहने से रोग आराम होते हैं।

(६३) रसक्षय—रस धातुके क्षय या कमीको "रसक्षय" कहते हैं। जिस समय शरीर में रसका क्षय होता है, उस समय मनुष्य का हृ-दय विलोयासा हो जाता है, ज़ोर की आवाज़ बर्दाश्त नहीं होती,

कलेजा धक-धक करता है और सूनासा मालूम होता है, ज़रा भी मिहनत करने से आँखों के सामने अँधेरा आ जाता है।

(६४) रक्तक्षय—जब शरीर में खून कम होता है, तब कहते हैं कि रक्तक्षय हुआ है। रक्तक्षय होने से शरीर का चमड़ा कड़ा, रूखा और फटासा हो जाता है।

(६५) मांसक्षय—मांसके कम होनेको कहते हैं। मांसक्षय होनेसे कमर, गर्दन और पेट ये विशेष रूप से सूख जाते हैं।

(६६) मेदक्षय—चरबी के कम होने को कहते हैं। मेदक्षय होने से सन्धियाँ फटने लगती हैं, दोनों आँखों में ग्लानि होती है, थकानसी मालूम होती है और पेट पतला हो जाता है।

(६७) अस्थिक्षय—हड्डीके क्षय होने को कहते हैं। अस्थिक्षय होने से बाल, रोएँ, नाखुन, मुँछ, हड्डी और दांत बिना समय के यानी समयसे पहिले गिर जाते हैं,जोड़ ढीलेसे हो जाते हैं और भ्रम होता है।

(६८) मज्जाक्षय—हड्डियों के गूदे के क्षीण होनेको कहते हैं। मज्जाक्षीण होने पर हड्डियाँ गिरने लगती हैं, दुर्बल और हल्की हो जाती हैं और रोगी को सदा वायु का रोग बना रहता है।

(६९) शुक्रक्षय—वीर्य के क्षय होने को कहते हैं। इसके क्षय होने से मनुष्य कमज़ोर हो जाता है, मुँह सूखता है, पीलापन छा जाता है; अवसाद, ग्लानि और नपुंसकता होती है तथा वीर्य नहीं निकलता।

(७०) विष्ठाक्षय—विष्ठा यानी मलका क्षय होनेसे वायु आँतोंमें दर्द करती है। शरीर रूखा हो जाता है, वायु कूखको ऊँचो करके और तिरछी होकर ऊपर नीचे जाती है।

(७१)मूत्रक्षय—पेशाब के कम होनेको कहते हैं। मूत्र-क्षय होने से मूत्रकृच्छ्र रोग हो जाता है। पेशाब का रङ्ग बदल

जाता है, प्यास लगती है, मुँह सूखता है, मल-मार्ग सूने, हलके और सूखे से मालूम होते हैं।

(७२) ओजक्षय—सब धातुओंमें "ओज" सार है। ओजक्षय होनेसे रोगी सदा डरता रहता है, कमज़ोर हो जाता है, हर समय चिन्ताग्रस्त रहता है, सारी इन्द्रियाँ पीड़ित होती हैं। शरीर क्षीण, रूखा और कान्तिहीन हो जाता है।

(७३) दोषों की तीन अवस्था—वात, पित्त और कफ की तीन अवस्थाएँ होती हैं। (१) क्षय (२) वृद्धि (३) स्थिति ; यानी घटना, बढ़ना और समान रूपसे रहना,—ये तीन अवस्थायें होती हैं।

(७४) दोषों की तीन गति—वात, पित्त और कफ की तीन गति या चाल होती हैं—(१) ऊर्ध्व (२) अध, (३) तिर्यक, यानी ये दोष ऊपर, नीचे और तिरछे चलते हैं। इनके सिवा और भी तीन गति होती हैं—(१) कोठों में जाना (२) रसरक्त आदि सात धातुओं और चमड़े में जाना (३) मर्म-स्थान, हड्डी और सन्धियों में जाना।

(७५) दोषों की कालकृत तीन गति—ऋतुओं के बदलने के साथ वात, पित्त और कफकी तीन गति होती हैं :—(१) संचय (२) कोप (३) उपशम। वर्षा ऋतुमें पित्त का सञ्चय होता है ; शरद् ऋतु में उसका कोप होता है और हेमन्त में शान्ति होती है।

(७६) प्रकृतिस्थ पित्त—जब पित्त घटा या बढ़ा हुआ नहीं होता, समभावसे होता है; तब कहते हैं, कि पित्त प्रकृतिस्थ है। प्रकृतिस्थ पित्त की गरमी से ही अन्न पचता है। जब यह कुपित होता है; अनेक रोग पैदा करता है।

(७७) प्रकृतिस्थ कफ—प्रकृतिस्थ कफ ही शरीर में बल है, विकृत कफ ही शरीर में मल है, कफ ही शरीर में "ओज" कहाता है। इसे ही अवस्था-भेद से वायु कहते हैं।

(७८) प्रकृतिस्थ वायु—प्रकृतिस्थ वायु ही प्राणियोंका प्राण है।

इसी से सब तरह की चेष्टायें होती हैं। इसी के कुपित होनेसे अनेक रोग होते हैं।

(७९) प्रत्याख्याय—असाध्य रोग यदि दारुण हों, आराम होने की ज़रा भी उम्मीद न हो, तो "प्रत्याख्याय" यानी त्याज्य कहाते हैं।

(८०) निदान—रोग की उत्पत्तिके कारण को "निदान" कहते हैं।

(८१) पूर्वरूप—रोग की उत्पत्ति के पहले लक्षण को "पूर्वरूप" कहते हैं।

(८२) रूप—रोग प्रकट हो जाने पर जो लक्षण प्रकाशित हो, उसे ही "रूप" कहते हैं।

(८३) उपशय—जो वस्तु अपनी आत्मा के अनुकूल हो, उसे "उपशय" या "सात्म्य" कहते हैं।

(८४) सम्प्राप्ति—व्याधि की उत्पत्ति को "सम्प्राप्ति" कहते हैं।

(८५) प्राधान्य सम्प्राप्ति—वातादि दोषके कम और ज़ियादा होने से प्रधानता और अप्रधानता होती है।

(८६) विधि—रोगों के भेद को विधि कहते हैं। (१) निज और आगन्तु; (२) एक-दोषज, द्विदोषज, त्रिदोषज; (३) साध्य और असाध्य; (४) मृदु और दारुण—रोगोंके ये चार प्रकार हैं।

(८७) विकल्प—मिले हुए वात, पित्त और कफ के अंशांश की कल्पना को "विकल्प" कहते हैं। जैसे; ज्वरके ६३ विकल्प होते हैं।

(८८) बलकाल सम्प्राप्ति—ऋतु, दिन, रात, और आहार इनके काल-भेद से व्याधि के बलकाल में भेद होता है। वर्षा-काल की अपेक्षा शरद् ऋतु में पित्त-ज्वरका अधिक बल होता है। मध्याह्न-काल और मध्यरात्रि में पित्तज्वरवाले को अधिक कष्ट होता है।

(८९) चार अग्नि—तीक्ष्ण, मन्द, सम और विषम—ये चार अग्नि होती हैं।

(९०) मन्दाग्नि—मनुष्य की कफ की प्रकृति होने से मन्दाग्नि होती है, उसे थोड़ा भी आहार यथार्थ रूपसे नहीं पचता।

(८१) तीक्ष्णाग्नि—मनुष्य की पित्त प्रकृति होने से तीक्ष्ण अग्नि होती है। इस अग्निवाले को ज़ियादा खाया-पीया भी सुख से पच जाता है।

(८२) विषमाग्नि—मनुष्य की वात प्रकृति होने से विषम अग्नि होती है। इस अग्निवाले को कभी अन्न पच जाता है, कभी नहीं पचता।

(८३) समाग्नि—जिसकी अग्नि सम होती है, उसका खाया-पीया अच्छी तरह पच जाता है।

(८४) रोगका निदान रोग—यों तो सभी रोगोंके आदि कारण—कुपित हुए वात, पित्त और कफ—ये तीन दोष हैं। परन्तु इनके सिवा रोग भी रोग का कारण या निदान होता है; यानी जिस तरह कुपित हुए वात आदि दोषों से रोग होते हैं, उसी तरह रोगों से भी रोग होते हैं; अर्थात जो काम निदान करता है, वही काम रोग भी करता है। जैसे, ज्वर के संताप से रक्तपित्त होता है; रक्तपित्त से ज्वर उत्पन्न होता है; रक्तपित्त और ज्वर इन दोनों से श्वास होता है; तिल्ली के बढ़ने से उदर-रोग होता है; उदर-रोग से सूजन या शोथ होता है; बवासीरसे उदर-रोग और गुल्म होता है; जुकाम (प्रतिश्याय) से खाँसी होती है; खाँसी से ओज प्रभृति धातुओं का क्षय होकर, क्षय या राजयक्ष्मा अथवा राजरोग होता है। पहले तो ये रोग स्वतन्त्र होते हैं, जब इन्हें बल मिल जाता है, तब ये दूसरे रोगों को पैदा करते हैं। इनमें एक विचित्रता होती है; यानी कोई रोग तो दूसरे को पैदा करके आप शान्त हो जाता है; और कोई दूसरेको पैदा करके आप भी जैसे-का-तैसा बना रहता है। बवासीर आप नहीं मिटती, जैसी-की-तैसी बनी रहती है और उदर-रोग तथा गुल्म रोग पैदा कर देती है।

(८५) पीयूषपाणि—जिस वैद्यके हाथमें अमृत हो, यानी जिसके हाथमें आकर सभी रोगी आराम हो जाते हों, उसे "पीयूषपाणि" कहते हैं।

(८६) दोष—वात, पित्त, और कफ को दोष कहते हैं। धातु और मल इन दोषोंसे दूषित होते हैं, इसलिये इन्हें "दोष" कहते हैं। यह देह को धारण करते हैं, इसलिये विद्वान् इन्हें "धातु" भी कहते कहते हैं। वाग्भट्टने कहा है, वात, पित्त और कफ दूषित होने से देह का नाश करते हैं और शुद्ध होने से शरीर को धारण करते हैं।

(८७) धातु—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र—इन सातों को "धातु" कहते हैं। यह मनुष्य के शरीर में स्वयं स्थित रह कर देह को धारण करते हैं, इसीलिये इन्हें "धातु" कहते हैं।

(८८) रस—भले प्रकार से पचे हुए भोजन के सार को "रस" कहते हैं।

(८९) मर्म—शिरा, स्नायु, सन्धि, मांस, और हड्डी,—ये जब इकट्ठे होकर मिलते हैं, तब "मर्मस्थल" कहलाते हैं। इन मर्मस्थलोंमें विशेष कर प्राण रहते हैं। देहधारियों के शरीरमें कुल १०७ मर्म हैं।

(१००) सन्धि—शरीर के जोड़ों को सन्धि या जोड़ कहते हैं। देहधारियोंके शरीर में २१० सन्धि या जोड़ होते हैं।

(१०१) शिरा—एक प्रकार की नसे हैं, ये सब शिरायें नाभिमें बँधी हैं, और चारों ओर को फैल रही हैं। इन्हींसे सन्धियाँ बँधी हैं और यही वातादि दोषों और रस रक्त आदि धातुओं को बहाती हैं। इन्हीं शिराओं से शरीर सिकुड़ता और फैलता है। यह गिन्तीमें सात सौ हैं।

(१०२) स्नायु—स्नायु भी एक प्रकार की नसे हैं। ये शिराओंकी अपेक्षा मज़बूत हैं। देह में मांस, हड्डी और सन्धियाँ इन्हींसे बँधी हुई हैं। मनुष्य-शरीर में नौ सो स्नायु हैं।

(१०३) धमनी—नाड़ियों को कहते हैं। ये नाभि से उत्पन्न हुई हैं और गिन्तीमें चौबीस हैं।

(१०४) कण्डरा—बड़ी स्नायुओंको कण्डरा कहते हैं। ये गिन्तीमें

१६ हैं। ये भी शरीर के सुकेड़ने और फैलाने में काम आती हैं।

(१०५) रन्ध्र—छेदों को कहते हैं। आँखोंमें दो, कानोंमें दो, नाक में दो, मुख में एक, लिङ्ग में एक, गुदा में एक,—इस तरह मर्द के शरीर में मुख्य नौ छेद होते हैं ; पर स्त्रियों के तीन छेद ज़ियादा होते हैं,—स्तनोंमें दो, गर्भाशय में एक।

(१०६) स्रोत—मन, प्राण, अन्न, पानी, दोष, धातु, उपधातु, धातुओं का मल, मूत्र, और विष्टा इत्यादि पदार्थ शरीरमें जिन रास्तों से चलते हैं उन रास्तों को "स्रोत" कहते हैं। ये स्रोत अनगिन्ती हैं।

(१०७) त्वचा—चमड़े को कहते हैं। जिस तरह आग पर औटे हुए दूध में मलाई होती है, उसी तरह पित्त से पके हुए वीर्य्य और रज से त्वचा होती है। ये त्वचायें सात होती हैं।

(१०८) रोग और आरोग्य—दोषों की विषमता को "रोग" और उनकी समता को "आरोग्य" कहते हैं।

(१०९) आगन्तुक रोग—लकड़ी पत्थर आदिके लगने से जो रोग होता है, उसे "आगन्तुक रोग" कहते हैं।

(११०) स्वाभाविक रोग—जो रोग अपने स्वभावसे होते हैं, उनको "स्वाभाविक रोग" कहते हैं। भूख, प्यास, सोनेकी इच्छा, बुढ़ापा, मृत्यु, जन्मसे अन्धापन प्रभृति स्वाभाविक रोग हैं।

(१११) मानसिक रोग—जो रोग मनसे होते हैं, उन्हें "मानसिक रोग" कहते हैं। काम, क्रोध, मोह, लोभ, भय अभिमान, दीनता, चुगली, शोक, ईर्षा, द्वेष, मात्सर्यता, उन्माद, मृगी, मूर्च्छा, भ्रम, अन्धकार और संन्यास प्रभृति रोग मानसिक रोग हैं।

(१११क) कायिक रोग—काया यानी शरीर से सम्बन्ध रखनेवाले रोगोंको "कायिक रोग" होते हैं। जैसे पीलिया, ज्वर आदि।

नोट—चारों प्रकारके रोगोंका भेद अच्छी तरह समझ लो।

(११२) कर्मज व्याधि—पूर्वजन्मके प्रबल दुष्ट कर्मों के कारण जो व्याधि होती है, वह अच्छो से अच्छो चिकित्सा करने पर भी आराम नहीं होती, उसे "कर्मज व्याधि" कहते हैं।

(११३) दोषज व्याधि—मिथ्या आहार-विहारके कारण वात, पित्त और कफके कुपित होनेसे जो रोग होते हैं, उन्हें "दोषज व्याधि" कहते हैं।

(११४) त्रिविधा रोग—साध्य, याप्य, और असाध्य—इन तीनों प्रकार के रोगों को "त्रिविधा रोग" कहते हैं।

(११५) उपद्रव—रोग को आरम्भ करनेवाले दोषोंका प्रकोप होने से जो और-और विकार होते हैं उन्हें "उपद्रव" कहते हैं। जैसे; ज्वर में खाँसी, ज्वर का उपद्रव है।

(११६) अरिष्ट—जिन लक्षणोंके प्रकट होनेसे रोगी की मृत्यु अवश्य हो, उन लक्षणों को "अरिष्ट या रिष्ट" कहते हैं।

(११७) प्रतिनिधि—जो औषधि दूसरी औषधिके स्थानमें काम देती है, उसे उसका "प्रतिनिधि" कहते हैं। जैसे रसौत के अभावमें दारूहल्दी ली जाती है, अतः दारूहल्दी रसौत को प्रतिनिधि हुई।

(११८) षट्रस—मीठा, खट्टा, खारी, कड़वा, चरपरा, कसैला—इन छै रसों को षट्रस कहते हैं। ये छै रस पदार्थों में रहते हैं।

(११९) त्रिफला—हरड़, बहेड़ा और आमला—इन तीनों को एकत्र मिलाकर "त्रिफला," "फलत्रिक" अथवा "वरा" कहते हैं।

(१२०) त्रिकुटा—सोंठ, मिर्च और पीपल—इन तीनों को एकत्र मिलाकर "त्रिकुटा" कहते हैं।

(१२१) पञ्चकोल—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ,—इन पाँचों को एक-एक कोल यानी आठ-आठ माशे ले, तो उसे "पञ्चकोल" कहते हैं।

(१२२) षडूषण—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता सोंठ, और गोल मिर्च—इनको "षडूषण" कहते हैं।

(१२३) चतुर्बीज—मेथी, हालों, काला ज़ीरा और अजवायन—इन चारों मिले हुए पदार्थोंको "चतुर्बीज" या "चारदाना" कहते हैं।

त्रिजातक—दालचीनी, इलायची और तेजपात,—इन तीनों को "त्रिजातक" कहते हैं। अगर इनमें नागकेशर और मिलादें, तो इन्हें "चतुर्जातक" कहते हैं।

(१२५) मांसपेशी—मांस के टुकड़ों को कहते हैं। इनसे शरीर सीधा खड़ा रहता है और उसमें बल रहता है।

(१२६) आयु-मृत्यु—शरीर और प्राणके संयोग को "आयु" कहते हैं। शरीर और प्राण के वियोग होने को पञ्चत्व या "मरण" कहते हैं।

(१२७) उदान वायु—यह वायु गले में रहती है। इसीकी शक्ति से आदमी बोलता और गीत प्रभृति गाता है। इसीके कुपित होनेसे कण्ठादिक के रोग होते हैं।

(१२८) प्राणवायु—यह वायु सदैव मुखमें चलती है और प्राणों को धारण करती है। इसीके द्वारा खाया-पिया भीतर जाता है। इसीके कुपित होने से हिचकी और श्वास प्रभृति रोग होते हैं।

(१२९) समान वायु—यह वायु आमाशय और पक्वाशय में रहनेवाली जठराग्नि से मिलकर, अन्न को पचाती और मलमूत्र को अलग-अलग करती है। इसके कुपित होनेसे मन्दाग्नि, अतिसार, वायु गोला प्रभृति रोग होते हैं।

(१३०) अपानवायु—यह वायु पक्वाशय में रहती है। यही मल, मूत्र, शुक्र, गर्भ और आर्त्तवको निकालकर बाहर डालती है। इसके कुपित होनेसे मूत्राशय और गुदासे सम्बन्ध रखनेवाले रोग होते हैं।

(१३१) व्यानवायु—यह वायु सारे शरीर में घूमती है। यही वायु रस, पसीना और खून को बहाती है। आँख :खोलना, बन्द करना, नीचे डालना और ऊपर को फेंकना प्रभृति क्रियाएँ

इसीसे होती हैं। यह कुपित होकर सारे शरीरके रोगों को प्रकट करती है।

(१३२) पाचक पित्त—यह पित्त भच्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य—इन चारों प्रकार के अन्नों को पचाता है, इसीसे इसे "पाचक पित्त" कहते हैं।

(१३३) भ्राजक पित्त—यह पित्त चमड़े में रहता है और कान्ति उत्पन्न करता है। इसीसे शरीर में किया हुआ चन्दन वग़ैरः का लेप, मालिश किया हुआ तेल और स्नान वग़ैरः पचते हैं।

(१३४) रञ्जक पित्त—यह पित्त रँगने का काम करता है, इसीसे इसे "रञ्जक" कहते हैं। यह यकृत और प्लीहामें रहकर खून बनाता है।

(१३५) साधक पित्त—मेधा और धारणा शक्तिको करता है।

(१३६) आलोचक पित्त—यह पित्त दोनों आँखोंमें रहता है; इसीसे जीवको दिखाई देता है।

(१३७) क्लेदन कफ—यह कफ अन्नको गीला करता है। इसी कारण से इकट्ठा हुआ अन्न अलग-अलग हो जाता है। यह आमाशयमें रहता है।

(१३८) अवलम्बन कफ—यह कफ हृदय में रहता है। यह अवलम्बन आदि कर्म द्वारा हृदय का पोषण करता है।

(१३९) संश्लेषण कफ—यह कफ सन्धियोंमें रहता है और इनको जोड़ता है।

(१४०) रसन कफ—यह कफ कण्ठमें रहता है और रसको ग्रहण करता है। इसीसे कड़वे, कसैले, चरपरे प्रभृति रसोंका ज्ञान होता है।

(१४१) स्नेहन कफ—यह कफ मस्तकमें रहता है। यह इन्द्रियों को तृप्त करता है; इसीसे इन्द्रियों में अपने-अपने कामकी सामर्थ्य होती है।

(१४२) एकादश इन्द्रिय—कान, आँख, जीभ, नाक, और त्वचा—

ये पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और मुँह, हाथ, पैर, उपस्थ और गुदा—ये पाँच कर्म्मेन्द्रियाँ हैं। ग्यारहवाँ "मन" इनका सञ्चालक है। इन ग्यारहों को "एकादश इन्द्रिय" कहते हैं।

(१४३) त्रिविध अहंकार—राजस, तामस और सात्त्विक तीन तरह के अहंकार होते हैं। सांख्य-शास्त्रवाले कहते हैं कि इन्द्रियाँ तीनों तरह के अहंकारोंसे पैदा हुई हैं; किन्तु वैद्यक-शास्त्रवाले इन्हें भौतिक कहते हैं।

(१४४) पञ्चतन्मात्रा—शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रस-तन्मात्रा और गन्धतन्मात्रा—ये पाँच "तन्मात्रायें" हैं।

(१४५) भूतपञ्चक—आकाश, पवन, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये "पञ्च महाभूत" हैं।

(१४६) इन्द्रियोंके विषय—कान, आँख, जीभ, नाक चमड़ा, ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये ज्ञानेन्द्रियों के पाँच विषय हैं; यानी कान का विषय सुनना, चमड़े का छूना, आँखका देखना, जीभ का स्वाद लेना और नाक का सूँघना।

इसी तरह मुँह (वाणी), हाथ, पैर, उपस्थ (लिङ्ग या भग) और गुदा—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। भाषण, आदान, विहार, आनन्द और उत्सर्ग—ये क्रमसे कर्मेन्द्रियों के पाँच विषय हैं; यानी मुँहका विषय बोलना, हाथकाकाम लेना-देना, पैर का काम चलना-फिरना, उपस्थ का काम सम्भोग-आनन्द करना या मूत्र त्याग करना, और गुदाका काम मल त्याग करना है।

(१४७) षोडश विकार—दश इन्द्रिय, उभयात्मक-मन और पञ्च महाभूत—ये सोलह विकार हैं।

(१४८) चौबीस तत्त्व—अव्यक्त, महान्, अहङ्कार, पाँच तन्मात्रा, ग्यारह इन्द्रिय और पाँच महाभूत—इन्हीं चौबीसों को चौबीस तत्त्व कहते हैं। इन्हीं चौबीसों तत्त्वोंसे यह शरीर बना है। इस शरीररूपी घरमें जो जीवात्मा रहता है वही पच्चीसवाँ है। मन उसका दूत

है। यद्यपि जीवात्मा आकाश की तरह निर्विकार है, तथापि जिस तरह निर्विकार आकाश संध्या-समय सूर्य्य-किरणोंके संयोग से लाल हो जाता है; उसी तरह जीवात्मा विकारवान् वस्तुओंके संयोग से विकारवान् हो जाता है।

(१४९) जीव-बन्धन—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, दश इन्द्रिय और बुद्धि ये जीवके बन्धन हैं।

(१५०) काम—पुरुषों को स्त्रियों से और स्त्रियों को पुरुषों से उपभोगके लिये जो प्रीति होती है उसे "काम" कहते हैं।

(१५१) क्रोध—प्राणीके हृदयसे एकबारगीही गरमी प्रकट होकर पराया बुरा चाहती है, उससे चित्तको एक प्रकार का दुःख पहुँचता है, उसी दुःख या क्लेश को "क्रोध" कहते हैं।

(१५२) लोभ— पराया धन, पराया भाग और परायी सामर्थ्य की बात देख-सुनकर प्राणी के हृदय में जो तृष्णा पैदा होती है, उसे ही "लोभ" कहते हैं।

(१५३) मोह—बुरे को भला और भले को बुरा समझना मिथ्या-ज्ञान है। कल्याणकारक और अकल्याणकारक बातों का निश्चय जब बुद्धिको नहीं होता, वह इन दोनों के बीचमें घूमती है, तब उसे "संशय" या "मोह" कहते हैं।

(१५४) अहंकार—जब प्राणी कार्य्य-कारण से युक्त 'अहं' इस अभिमान के साथ काम में लगता है, तब उसको "अहंकार" कहते हैं। "यह काम मैं करता हूँ," "यह काम मैंने किया"—यह भाव अहंकार प्रकट करता है।

(१५५) मल या विष्ठा—जो कुछ खाते हैं, उसके सार को 'रस' और निःसार को 'मल' कहते हैं। यही मूत्रवाहिनी नसों द्वारा वस्ति या मूत्राशय अथवा पेड़ूमें जाकर मूत्र या पेशाब हो जाता है और शेष रहा हुआ कीट पक्वाशय के एक कोने में जाकर

विष्ठा या मल हो जाता है। इसे अपानवायु गुदाके बाहर निकाल कर फेंक देती है।

(१५६) गुदा—शरीर का वह सूराख़ है, जिधर से अपान वायु मल को निकालती है। इस गुदा में शङ्ख की भाँति तीन वलियाँ या आँटे होती हैं। इन वलियोंके नाम प्रवाहिनी, सर्जनी और ग्राहिका हैं।

(१५७) स्वरस—ताज़ा रसदार द्रव्य लाकर, उसे तत्काल कूटने और कपड़े में रखकर निचोड़नेसे जो रस निकलता है, उसे "स्वरस" कहते हैं। नोट—अगर ताज़ा रसदार द्रव्य न मिले,तो सूखा हुआ आध सेर द्रव्य चूर्ण करके, एक सेर जलमें एक दिन-रात भिगोकर छान ले, उस रस को भी 'स्वरस'की जगह काममें लेते हैं; अथवा वैद्य सूखे द्रव्यको अठगुने जलमें पकावे, जब चौथाई पानी रह जाय, तब उतार कर 'स्वरस'के स्थानमें ग्रहण करे।

(१५८) कल्क—सूखे या जल-युक्त ताज़ा द्रव्यको शिल पर पीस कर लुगदीसी बना लेते हैं, उसीको "कल्क" कहते हैं। आवाप और प्रक्षेप कल्क के पर्य्याय शब्द हैं।

(१५९) चूर्ण—सूखा हुआ द्रव्य भली भाँति कूट-पीसकर कपड़ेमें छान लिया जाय, तो उसे "चूर्ण" कहते हैं।

(१६०) शृत—कूटे हुए द्रव्यको जल मिलाकर आगपर पकाते हैं, फिर मसलकर कपड़ेमें छान लेते हैं;छाननेसे जो रस निकलता है,उस को "शृत" कहते हैं। क्वाथ, कषाय और निर्यूह इसके पर्याय हैं।

(१६१) शीत—आठ तोले द्रव्यको कूटकर, बयालीस तोले जलमें एक रात भिगो रक्खे, उसको "शीत" कहते हैं।

(१६२) तण्डुलोदक—आठ तोले सूखे हुए चाँवल अच्छी तरहसे कूटकर चौगुने जलमें एक दिन या एक रात भिगो रक्खे, फिर छान ले; इस जलको "तण्डुलोदक" कहते हैं। शारङ्गधरमें लिखा है—चार तोले साफ चाँवलोंको अठगुने पानी, यानी बत्तीस तोले जल, में

डाल, हाथसे मसले। यह "चाँवलों का धोवन" सब काममें लावे।

(१६३) फाँट—आठ तोले द्रव्यको अच्छी तरहसे कूटकर, मिट्टी के बर्तनमें, चौगुने गर्म जलके साथ भिगो रक्खो; जब खूब गर्म हो जाय, छान लो; इसको "फांट" एवं चूर्ण द्रव्य कहते हैं।

(१६४) उष्णोदक—जलको मिट्टीके बासनमें औटावे, जब औटते-औटते अष्टमांश (सेरका आधा पाव), चतुर्थांश (सेरका एक पाव), अथवा अर्द्धांश (सेरका आध सेर) रह जाय, तब उतार ले या थोड़ा ही गरम कर ले—ऐसे जलको "उष्णोदक" कहते हैं।

(१६५) अवलेह—क्वाथादि दुबारा आग पर पकाकर घना यानी गाढ़ा किया जाय, तो उसे "अवलेह," लेह "या प्राश" कहते हैं।

(१६६) मात्रा—एक बार में रोगीको जितनी दवा दी जाय, उतनी दवाको दवाकी "मात्रा, खूराक या मौताद" कहते हैं।

(१६७) कर्ष—वैद्यक-शास्त्रकी पुरानी तोल है। आजकलके दो तोले के बराबर एक कर्ष होता है। कोई-कोई एक तोलेके बराबर लिखते हैं।

(१६८) पल—यह भी एक तोल है। पल आठ तोले का होता है।

(१६९) प्रस्थ—यह भी तोल है। प्रस्थ २ सेर का होता है।

(१७०) खारी—यह भी तोल है। एक खारी ५१२ सेर यानी १२ मन, ३२ सेर की होती है।

(१७१) पञ्चलवण—विरिया, सञ्चर, सेंधा, विड़, उद्भिद, और समन्दर नोन—इन पाँचके मेलको "पञ्चलवण" कहते हैं।

(१७२) मूत्रवर्ग—भेड़का मूत्र, बकरीका मूत्र, गोमूत्र, भैंसका मूत्र, हाथीका मूत्र, ऊँटका मूत्र, घोड़ेका मूत्र, गधेका मूत्र—इन आठको "मूत्रवर्ग" कहते हैं।

(१७३) चार स्नेह—घी, तेल, वसा और मज्जा—ये चार प्रकार

के स्नेह हैं। ये पीने, मालिश करने, पिचकारी लगाने और नस्य-कर्म के काममें आते हैं।

(१७४) दुग्धवर्ग—भेड़का दूध, बकरीका दूध, गायका दूध, भैंस का दूध, ऊँटनीका दूध, हथनीका दूध, और गधीका दूध—इन दूधों को "दुग्धवर्ग" कहते हैं।

(१७५) सर्वगन्ध—दालचीनी तेजपात, इलायची, नागकेशर, कपूर, काकोली, अगर, लोबान और लौङ्ग—इन सबको मिलाकर "सर्वगन्ध" कहते हैं।

(१७६) महती त्रिफला—हरड़ बहेड़ा और आमला—इनको "महती त्रिफला" कहते हैं।

स्वल्प त्रिफला—गम्भारी-फल, फालसा और खजूर—इनको "स्वल्प त्रिफला" कहते हैं।

(१७८) त्र्यूषण—पीपल, सोंठ, और मिर्चको "त्र्यूषण" कहते हैं।

(१७९) त्रिमद—बायविडङ्ग, मोथा, और चीता—इनको "त्रिमद" कहते हैं।

(१८०) क्षीर-वृक्ष—गूलर, बड़, पीपल, वेतस और पिलखन—इन पाँचोंको "क्षीरवृक्ष" कहते हैं

(१८१) पञ्चपल्लव—आम, जामुन, कैथ, बिजौरा नीबू और बेल—इस पांचों को "पंचपल्लव" कहते हैं।

(१८२) महत् पंचमूल—बेल, श्योनाक, गम्भारी, पाढ़ल, अरणी, —इन पाँचोंको "महत् पंचमूल" कहते हैं।

(१८३) लघु पंचमूल—शालपर्णी, (सरिवन) पिठवन, वृहती, कटेरी, और गोखरू—इन पाँचोंको "लघु पंचमूल" कहते हैं।

(१८४) दशमूल—लघु पंचमूल और वृहत् पंचमूल—इन दोनों की दसों चीज़ोंको मिलाकर "दशमूल" कहते हैं।

(१८५) पंचतृण—कुश, कांस, शर, दर्भ और गन्ना—इन पाँचों को "पंचतृण" या "पंचमूल" कहते हैं।

(१८६) वल्लीज पंचमूल—विदारीकन्द, मेढ़ासिंगी, हल्दी, अनन्त-मूल, और गिलोय,—इन पाँचोंको "वल्लीज पंचमूल" कहते हैं।

(१८७) कण्टकाख्यमूल—करञ्ज, गोखरू, तालमखाना, पिया-वांसा और शतावरी, इन—पाँचोंको "कण्टकाख्यमूल" कहते हैं।

(१८८) अष्टवर्ग—ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, ऋषभक, जीवक, काकोली, क्षीरका कोली,—इन आठोंको "अष्टवर्ग" कहते हैं।

(१८९) जीवनीयगण—अष्टवर्गकी आठों चीजें तथा मसवन, मुगवन, जीवन्ती, मुलहठी—इन सबको मिलाकर "जीवनीयगण" कहते हैं।

(१९०) श्वेत मरिच—सहँजने के बीजको "श्वेत मरिच" कहते हैं।

(१९१) ज्येष्ठाम्बु—चाँवलोंके पानीको "ज्येष्ठाम्बु" कहते हैं।

(१९२) सुखोदक—गरम जलको "सुखोदक" कहते हैं।

(१९३) वेशवार—बिना हड्डीका मांस, गुड़, घी, पीपल, और मिर्च मिला कर पकाया जाय, तो उसे "वेशवार" कहते हैं।

(१९४) अम्लमूलक—मूली काँजीमें भिजो रखकर, बासी करके पका ली जाय, तो उसको "अम्लमूलक" कहते हैं।

(१९५) कट्वर—मक्खनसहित दहीके माठेको "कट्वर" कहते हैं।

(१९६) तक्र—दहीमें दहीसे चौथाई जल मिलाकर मथे, तो वह "तक्र" कहावेगा। आधा पानी मिला कर मथने पर "उद-श्वित" तैयार होगा। अगर दहीमें बिल्कुल पानी न मिलावें और मथें तो "मथित" तैयार होगा।

(१९७) आसव—गन्नेका रस पकाकर जो मद्य तैयार किया जाय, उसे "सीधु" कहते हैं और गन्नेके कच्चे रससे जो मद्य तैयार किया जाता है, उसे "आसव" कहते हैं।

(१९८) कृशरा या खिशरा—तिल, चाँवल और उर्दसे तैयार किये हुए यवागूको "कृशरा या खिशरा" कहते हैं।

(१९९) अरिष्ट—पके हुए क्वाथ और मधुर रस-युक्त पतले पदार्थ से बने हुए मद्यको "अरिष्ट" कहते हैं।

(२००) तुषोदक—चरकने कहा है, उर्दकी भुसी भुनाकर पकावे, फिर उसमें जौका आटा मिलाकर, कांजी तैयार करनेकी विधिके अनुसार, जल डालकर भिगो रक्खे; जब खट्टा हो जाय तब "तुषोदक" तैयार समझे।

(२०१) पंचक्रिया—वमन, विरेचन, नस्य, निरूह और अनुवासन,—इन पाँच क्रियाओंको "पंचक्रिया" कहते हैं। इन क्रियाओंसे शरीरके वातादि दोष शुद्ध होते हैं।

(२०२) नस्य—नाकसे जो औषधि धीरे-धीरे-चढ़ाई जाती है, उसे "नस्य" कहते हैं। रूखे मस्तकको चिकना करनेके लिए और गर्दन, कन्धे और छाती का बल बढ़ानेके लिए जो तैलादिका प्रयोग किया जाता है, उसको भी "नस्य" कहते हैं।

(२०३) प्रधमन—छः उङ्गल लम्बे, दो मुँहवाले, खाली नलमें तेज दवाका एक तोले चूर्ण भरकर, फूँक द्वारा नाकमें घुसाया जाय, उसे "प्रधमन" कहते हैं।

(२०४) अवपीड़—तेज़ दवाको कूटकर रस निकाला जाय और वह नस्यके काममें लाई जाय, तो उसे "अवपीड़" कहते हैं। गले के रोग, सन्निपात, विषम ज्वर, उन्माद प्रभृति रोगोंमें "अवपीड़ नस्य" दी जाती है; किन्तु प्रबल दोष और अचेतन अवस्थामें "प्रधमन नस्य" देनी चाहिये। इससे शीघ्र लाभ होता है।

(२०५) यवागू—चाँवल अथवा मूँग अथवा उडद अथवा तिल इनमेंसे जिस द्रव्यको यवागू बनानी हो, उसको लेकर, उसमें उससे छः गुना पानी डालकर पकावे, जबतक गाढ़ी न हो जाय पकाता रहे; इसीको "अन्न 'यवागू" और इसीको "क्षशरा" कहते हैं। यह मलादिकोंको स्तम्भन करती, शरीरमें बल-पुष्टि करती और वायुका नाश करती है।

(२०६) विलेपी—चाँवल या मूँगमेंसे कोई चीज़ लेकर, द्रव्यसे चौगुना पानी डालकर पकावे, जब लहापसीके समान गाढ़ी और लिपटनेवाली हो जाय, उतार ले। इसीको "विलेपी" कहते हैं। यह पुष्टिकारक, हृदयको हित, मधुर और पित्त नाशक है।

(२०७) पेया—जिसकी पेया बनानी हो, उस द्रव्यसे चौदह गुणा पानी उसमें डालकर पकावे, जब तक कुछ लहसदार न हो जाय; पकावे; किन्तु बहुत गाढ़ी न हो जाय; पेया पीने लायक़ पतली रहती है। पेयासे कुछ गाढ़ा "यूष" होता है। पेया बलदायक, कण्ठको हितकारी, हलकी और कफ-नाशक है।

(२०८) शुद्ध मण्ड—शुद्ध चाँवलोंको चौदह गुने जलमें डालकर पकाओ, जब चाँवल पक जायँ, माँड निकाल लो। इसी माँडको "शुद्ध मंड" कहते हैं। इसमें सोंठ और सेंधा नोन मिलाकर पीवे, तो अन्नका पाचन हो और अग्नि-दीपन हो।

(२०९) अष्टगुण मंड—धनिया, सोंठ, मिर्च, पीपल, सेंधा नोन, मूँग, चाँवल, हींग और तेल,—इन नौ चीजोंसे यह मंड तैयार होता है।

पहले तेलमें हींग मिलाओ। पीछे आठ तोले मूँग और सोलह तोले चाँवलको तेल-मिली हींगके साथ भूनो। पीछे धनिया, सोंठ, मिर्च, पीपल, और नमकको इन भुने हुए मूँग चाँवलोंमें, इस अन्दाज़से मिलाओ, कि ज़ायका ख़राब न हो। पीछे इनमें चौदह गुना पानी डालकर औटाओ। जब सीज जायँ, उतार कर छान लो। इस मांडकोही "अष्टगुण मंड" कहते हैं।

इस मांडमें आठ गुण हैं। इसके पीनेसे अग्नि दीप्त होती है, मूत्र-वस्तिका शोधन होता है, बल बढ़ता है, ख़ून की वृद्धि होती है। ज्वर, कफ, पित्त, और वायुका नाश होता है।

(२१०) लाजामंड—धानकी भुनी खील अथवा चाँवलोंको भून कर, उसमें चौदह गुना पानी डाल कर औटावे; पीछे पसाकर मांड

निकाल ले। इसी मांडको "लाजा मंड" कहते हैं। इससे कफ पित्तका प्रकोप दूर होता है; संग्रहणी और अतिसार के दस्तोंमें रुकावट होती है; अधिक प्यास वाला ज्वर शान्त होता है।

(२११) वाट्य मंड—अच्छे जौ लेकर कूटो और भूनो, पीछे चौदह गुना जल डालकर पकाओ। पकनेपर मांड निकाल लो। यही "वाट्यमंड" है। इससे कफ पित्तका प्रकोप दूर होता है। यह कण्ठको हितकारी है और रक्तपित्तकी शान्ति करनेवाला है।

(२१२) आम्रादि यवागू—आम, आमला, जामुन—इन तीनों वृक्षोंकी सोलह तोले छालको मिलाकर, जौ-कुट करके, चौसठ गुने पानीमें यानी प्राय: पौने तेरह सेर जलमें औटावे। जब आधा पानी रह जाय, तब उतार कर छान ले; फिर उस दवाके पानीमें सोलह तोले चाँवल डालकर पकावे। जब पकते-पकते गाढ़ा हो जाय, उतार ले। इसे "आम्रादि यवागू" कहते हैं। इस यवागू की खाने से संग्रहणी दूर होती है।

(२१३) पानक—चार तोले दवाको जौकुट कर, चौसठ गुने पानीमें डालकर औटाओ; आधा रहने पर उतार कर छान लो; प्यास लगने पर पिलाओ। जैसे; उशीरादि पानक—

उशीरादिक पानक—खस, पित्तपापड़ा, नेत्रवाला, नागरमोथा, सोंठ, रक्तचन्दन,—इन छे दवाओंको मिलाकर चार तोले लो। पीछे जौकुट करके, २५६ तोले जलमें औटाओ; जब आधा पानी रहजाय उतार लो। शीतल होने पर, जिस ज्वर में अत्यन्त प्यास लगती हो, थोड़ा-थोड़ा दो। इसके पोनेसे प्यास और ज्वर दूर होंगे। इसी तरह और पानक भी तैयार हो सकते हैं।

(२१४) पञ्चमूली क्षीरपाक—औषधिसे अठगुना दूध और दूधसे चौगुना पानी मिलाकर औटानेसे "क्षीर" या दूध तैयार होते हैं। सरिवन, पिथवन, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, और गोखरू—लघुपञ्चमूलकी इन पाँचों द्रव्यों को जौकुट करके, अठगुने दूधमें और दूध से चौगुने

पानी में डाल कर औटाओ। जब औटते-औटते पानी जल जाय और केवल दूध रह जाय, उतार कर छान लो। यही "पंचमूली क्षीरपाक" है। इसके पीने से श्वास, खांसी, मस्तकशूल, पसली का दर्द, पीनस (जुकाम) और जीर्ण ज्वर आराम होते हैं। यह दूध सब तरहके जीर्णज्वरोंकी परमोत्तम परीक्षित औषधि है।

(२१५) क्वाथ—चार तोले औषधि को, चौंसठ तोले जलमें डाल-कर, मिट्टीके वासन में हलकी-हलकी आगसे पकाओ। जब आठवाँ भाग यानी ८ तोले पानी शेष रहे, तब उतार कर छानलो। इसीको "क्वाथ" (काढ़ा), शृत, कषाय और निर्यूह कहते हैं। हाँ, काढ़े के वर्त्तन पर, औटाते समय, ढक्कन भूलकर भी न रक्खो; अन्यथा काढ़ा भारी हो जायगा।

(२१६) पुटपाक—गीली वनस्पति का कूट-पीस कर गोला बनाओ। पीछे उस गोलेको कम्भारी, बड़ या जासुन के पत्तों से लपेट दो और ऊपर से सूत बांध दो। पीछे, उसपर दो अंगुल मिट्टी चढ़ा दो। इसके बाद कण्डे लगाकर, उसके बीचमें गोलेको रखकर, आग लगा दो। जब गोले की मिट्टी लाल हो जाय, गोलेको निकाल लो। पीछे गोलेके ऊपर से मिट्टी और पत्ते हटा कर, उसे कपड़े में रखकर निचोड़ लो। यह रस "पुटपाक-विधिसे" तैयार हुआ। पुट-पाक द्वारा तैयार हुआ रस "शहद" आदि डालकर पिया जाता है।

(२१७) मंथ—आठ तोले दवाको अच्छी तरह कूटो, पीछे बत्तीस तोले शीतल जलको मिट्टी के वर्त्तन में भरो; फिर उसमें आठों तोले दवा डाल दो। पीछे उस दवाको रई से मथो, जब एकदम झाग आने लगें, उसको छान लो। यही मंथ है। इसके पीनेकी मात्रा फांट की तरह दो पल या १६ तोले की है।

(२१८) हिम—आठ तोले दवा को जौकुट करलो, अड़तालीस तोले जल किसी हाँडी में भरकर, उसीमें जौकुट की हुई दवाको डालदो और रातभर भीगने दो। सवेरे उस जलको छान कर पी

जाओ। इसको "हिम" अथवा "शीत काढ़ा" कहते हैं। इसकी मात्रा भी फाँट के समान १६ तोले की है।

(२१९) गुटिका—गोली को कहते हैं। गुटिका, वटी, मोदक, वटिका, पिण्डी, गुड, और वत्ती,—ये सब गोली के नाम हैं। यदि गोली बनानी हों; तो गुड़, खाँड़ या गूगल को पकाकर, उसमें चूर्ण मिलाकर गोली बनालो। अगर बिना पाक किये गोली बनानी हों तो गूगल को शोधकर पीस लो, फिर उसमें चूर्ण मिलाकर घी से गोली बनालो। यदि खाँड़ या मिश्री आदि डालकर गोली बनानी हों, तो चूर्णसे चौगुनी लेकर दोनोंको मिलाकर गोली बना लो। यदि कभी गूगल और शहद दोनों मिलाकर गोली बनानी हों, तो दोनोंको चूर्ण के बराबर लेकर गोली बना लो।

(२२०) शीतरस सीधु—कच्चे ईखके रस आदि मधुर पदार्थों से सिद्ध किये मद्यको "शीतरस सीधु" कहते हैं।

(२२१) पक्व रससीधु—ईख आदि मधुर द्रव पदार्थों को पकाकर जो मद्य बनाते है, उसे "पक्व रस सीधु" कहते हैं।

(२२२) सुरा—चाँवल आदि धान्यको उबाल कर, अग्निके संयोग से, यन्त्र-द्वारा जो मद्य बनाते हैं, उसको शास्त्रमें "सुरा" कहते हैं।

(२२३) कादम्बरी—उपरोक्त नं० २२२ को सुराके घन भागको "कादम्बरी" कहते हैं।

(२२४) जगल—उपरोक्त सुरा के नीचे के भागमें जो पतलासा पदार्थ होता है, उसको "जगल कहते हैं।

(२२५) मेदक—जगल के गाढ़े भाग को "मेदक" कहते हैं।

(२२६) पुक्कस—मेदक के सार-भागको "पुक्कस" कहते हैं।

(२२७) किण्वक—सुराबीजको "किण्वक" कहते हैं।

(२२८) वारुणी—ताड़ या खजूरके रससे, अग्नि के संयोग से, यन्त्र-द्वारा जो रस खींचते हैं, उसको मद्य या "वारुणी", ताड़ी या खजूरी कहते हैं।

(२२९) चुक्र—बिना खट्टे हुए मधुर द्रव पदार्थों को पात्र में भर कर, पात्रका मुँह बन्द करके, उस पर मुद्रा देकर, एक मास या पन्द्रह दिन रखनेसे जो मद्य तैयार हो, उसे "चुक्र" कहते हैं।

(२३०) गुड़सूक्त—गुड़, जल, तेल, कन्दमूल और फल—इन सबको किसी बर्तनमें भरकर, मुँह बन्द करदो, और पीछे मुद्रा दे दो। एक मास या दो पक्ष तक रक्खा रहने दो। जब खट्टा हो जाय, तब काममें लाओ। इसे "गुड़सूक्त" कहते हैं। इसी तरह ईख और घासका सूक्त बनाते हैं।

(२३१) तुषाम्बु—कच्चे जौ भूनकर किसी बासन में रक्खो, ऊपरसे पानी भरकर मुँह बन्द करदो और मुद्रा देदो। कुछ दिन बाद काममें लाओ। यही "तुषाम्बु" है।

(२३२) सौवीर—जौओं के छिलके दूर करके, उनको आगपर पकाओ; फिर उन्हें एक बासनमें भरकर ऊपर से पानी भर दो। फिर मुँह बन्द करके मुद्रा दे दो और कुछ दिन रक्खा रहने दो। यही "सौवीर" है।

(२३३) काँजी—कुलथी अथवा चाँवलों का पानी डाल कर पकालो। पीछे माँड निकाल लो। उस माँड में सोंठ, राई, ज़ीरा, हींग, सेंधानोन, हल्दी प्रभृति डालकर बासन का मुँह बन्द करके मुद्रा देदो। तीन या चार दिन रक्खा रहने दो। इसीको "काँजी" कहते हैं।

काँजी की और विधि—पहले मिट्टीके बर्तनको सरसोंके तेलसे पोत दो। पीछे उसमें निर्मल जल भरदो। पीछे राई, ज़ीरा, सेंधानमक, हींग, सोंठ, हल्दी,—इन छओंको पीस कर डाल दो। पीछे चाँवलों का भात मिला हुआ माँड, कुलथीका काढ़ा, थोड़ेसे बाँसके पत्ते—ये सब भी उसी बर्तनमें डाल दो। पीछे पानी के अन्दाज़से उड़द के दस पाँच बड़े भी उसमें डालदो। पीछे बर्तनका मुख बन्द करके तीन चार दिन रक्खा रहने दो। जब खट्टी-खट्टी बास आने लगे, समझ लो "काँजी" तैयार है।

(२३४) मण्डाकी—एक बर्तन में मूली को कतर-कतर कर डाल दो और ऊपरसे पानी डाल दो। पीछे हल्दी, हींग, राई, सेंधानोन, जीरा, सोंठ प्रभृति डालकर बर्तन का मुँह बन्द करके मुद्रा दे दो। तीन चार दिन रक्खा रहने दो। इसीको "मण्डाकी" कहते हैं।

(२३५) सप्त धातु—रस, रक्त, मांस आदि को देह का धारक होनेसे जिस तरह धातु कहते हैं, उसी तरह सोना, चाँदी, ताम्बा, जस्ता, शीशा, रांगा और फौलाद—इन सातों को भी "धातु" कहते हैं; क्योंकि ये भी बुढ़ापे और कमज़ोरी आदिका नाश करके देहको धारण करते हैं।

(२३६) धातु-शोधन—ये सातों धातुएँ पहाड़ोंसे पैदा होती हैं, इसलिये इनमें मैल रहता है। इनके बारीक पत्र करके, आगमें बारम्बार तपा-तपा कर तेल, माठा, काँजी, गोमूत्र, और कुल्थी का काढ़ा—इनमें से प्रत्येकमें तीन-तीन बार बुझाते हैं। इस तरह सुवर्ण आदि धातुओं का मैल दूर होकर शुद्धि होती है। इसी को "धातु-शोधन" कहते हैं।

शीशा और रांगा नरम धातु हैं। इसलिये जब यह तपने से गल जावें, तब इनको तीन-तीन बार तेल, माँठा, काँजी, कुलथी-क्वाथ, गोमूत्र, हल्दी-क्वाथ और आकके दूधमें बुझानेसे शोधन होता है।

(२३७) मारण—पहले धातुका शोधन होता है। वह हम नं० २३६ में लिख चुके हैं। अब मारण बताते हैं। चूल्हेमें आग जलाओ। चूल्हे पर मिट्टी का खपरा रक्खो। खपरे पर शुद्ध धातु को डाल कर तपाओ। जब गलकर पानी हो जाय, तब धातु से चौथाई इमली की छाल और पीपल की छाल के चूर्ण को पास रखकर, गली हुई धातु पर ज़रा-ज़रा डालो और लोहे की कलछीसे चलाते जाओ। इस तरह एक पहर तक करते रहने से शीशे को और दोपहर तक करते रहनेसे रांगे की भस्म हो जाती है। यही धातुका "मारण" कहलाता है।

(२३८) भस्म—मारण की हुई धातु की भस्म को अन्यान्य चीज़ों के साथ खरल करके, दो सराइयों के बीच में रखकर, सराइयों का मुँह कपड़-मिट्टीसे बन्द करके, खड्डेमें आरने कण्डे भरकर, उन कण्डोंके बीचमें सराइयोंको रखकर, आग लगा देते हैं। ठण्डा होने पर फिर निकाल लेते हैं। इसी तरह कई बार करने से असल "भस्म" तैयार हो जाती है।

(२३९)—निरुत्थ भस्म—जो "भस्म घी, शहत, सुहागा, चिरमिटी, और गुग्गुल,—इन पाँचोंके योगसे भी नहीं जीवे, उसे "निरुत्थ भस्म" कहते हैं। निरुत्थ भस्म मनुष्य का बुढ़ापा नाश करती, बल बढ़ाती और प्रमेह आदि अनेक रोगोंका नाश करती; किन्तु कच्ची भस्म कोढ़, बवासीर प्रभृति अनेक रोग पैदा करती है।

(२४०) मित्रपञ्चक—घी, शहद, सुहागा, चिरमिटी और गूगल,—इनको "मित्रपञ्चक" कहते हैं। ये बराबर-बराबर लिये जाते हैं।

(२४१) उपधातु—सोनामक्खी, नीलाथोथा, अभ्रक, सुरमा, मैनसिल, हरताल, और खपरिया—ये सात उपधातु हैं। इनका भी शोधन होता है; यानी इनका भी मैल अलग किया जाता है।

(२४२) गंडूष और कवल—काढ़े वग़ैरः जो पतले पदार्थ हैं, उनसे मुँह को भरकर, उनको मुँहमें रहने दे; पीछे थोड़ी देरमें बाहर निकाल दे, बस यही "गंडूष" या "कुल्ला" है। कल्कादिक पदार्थ यानी दवाओं की लुगदी को मुँहमें रखकर इधर-उधर फिरावे और मुखमें रक्खे रहे—इसी को "कवल" कहते हैं।

(२४३) प्रतिसारण—किसी सूखी, गीली या पतली दवाको उँगली के पोरुएमें लगा कर, जीभ और सारे मुँहमें लगाने को "प्रतिसारण" कहते हैं। जैसे;—

कूट, दारूहल्दी, लजालू, पाढ़, कुटकी, मजीठ, हल्दी, नागरमोथा और लोध—इन नौ दवाओं का चूर्ण करके, उँगली के पोरुए से जीभ और सारे मुँहमें लगाने से दाँतोंसे खून गिरना, दाँतों का

दर्द, दाह (जलन) और सूजन अवश्य आराम हो जाती है। यही प्रतिसारण का उदाहरण है।

(२४४) आलेप—लिप्त, लेप, लेपन और आलेप,—चारों नाम लेपके हैं। मुख के लेप तीन तरह के होते हैं,—(१) दोषघ्न, (२) विषघ्न और (३) वर्ण्य; अर्थात् सूजन खुजली वग़ैर: के नाश करनेवालेको "दोषघ्न"; भिलावे, वच्छनाग या किसी कीड़ेकी ज़हर के नाश करनेवालेको "विषघ्न" और मुँह की सुन्दरता बढ़ाने वाले तथा मुहाँसे, झाईं, नील प्रभृति नाश करनेवाले को "वर्ण्य" कहते हैं।

जैसे ;—

पुनर्नवा (सांठ), देवदारु, सोंठ, सफ़ेद सरसों, और सहँजनेकी छाल—इन पाँचों को बराबर-बराबर लेकर, काँजी में सिल पर पीसकर लेप करनेसे नौ प्रकारकी सूजन नाश हो जाती है। यह नुसख़ा उत्तम है। अनेक बार इसे रामबाणका काम करते देखा है। (काँजी बनाने की विधि नं० २३३ परिभाषाके शेषवाली उत्तम है।) यह लेप "दोषघ्न" है; यानी वात पित्त और कफ से हुई नौ तरह की सूजन को आराम करता है।

लालचन्दन, मजीठ, लोध, कूठ, फूलप्रियंगु, बड़ के अंकुर, मसूर,—ये सात चीज़ें पसारी के यहाँ से बराबर-बराबर लाकर, पानीमें पीस लो और मुखपर मला करो, तो आपका मुँह खूबसूरत हो जायगा, मुखपर कान्ति विराजने लगेगी, साथ ही यदि कोई बादी का रोग होगा तो वह भी दूर हो जायगा। यह नुसख़ा ठीक है। निष्फल न जायगा। आज़माकर देखिये; मगर बहुत दिन तक लेप कीजिये। यह लेप "वर्ण्य" है।

बकरी के दूधमें तिलों को पीस कर, उसमें मक्खन मिलाकर लेप करो, तो भिलावे की सूजन आराम हो जायगी।

(२४५) शलाका—सलाई को कहते हैं। इससे आँखों में सुरमा लगाया जाता है। शोधे हुए शीशे की सलाईके, बिना सुरमेके, फेरने

से भी अनेक नेत्र-रोग नाश हो जाते हैं। हम अपनी परीक्षित सलाई बनाने की विधि बताते हैं :—

त्रिफले का काढ़ा, भांगरे का रस, सोंठ का काढ़ा, घी, गोमूत्र, शहद, और बकरी का दूध,—इन सातों को पहले तैयार करके रखलो। पीछे एक लोहे के कलछे या मिट्टीके बर्तन में शीशे को गर्म करो, जब पानी-सा होजाय, त्रिफलेके काढ़ेमें डाल दो, फिर निकाल कर फिर पिघलाओ, पानीसा हो जाने पर फिर त्रिफलेके काढ़ेमें डाल दो, इस-तरह सात बार त्रिफले के काढ़े में डालो। पीछे इसी तरह सात बार भाँगरे के रसमें, फिर सात बार सोंठके काढ़े में, फिर सातबार घी में, फिर सात बार गोमूत्र में, फिर सात बार शहद में, फिर सात बार बकरी के दूधमें डालो—इस तरह त्रिफलेके काढ़े वग़ैरः सातों चीज़ों में शीशे को सात-सात बार (कुल ४९ बार) बुझानेसे शीशा शुद्ध हो जायगा। उस शुद्ध शीशे की सलाई बनाकर आँखोंमें फेरा करो, तो नेत्रोंके सारे रोग धीरे-धीरे आराम हो जायँ। अगर ऐसी सलाई बनाकर बेची जायँ, तो लोगों को लाभ हो, बेचनेवाला भी खूब कमावे। बाज़ारू सलाइयां अशुद्ध शीशे की होती हैं, जो लाभ के बदले हानि करती हैं।

नोट—इस सलाईके आँखों में फेरने से जब दोष दूर हो जायँ, आँखों से पानी निकल जाय, तब रोगी क्षण-भर शीतल जल को देखे, पीछे आँखों को जल से धोले। जब तक दोष निकल न जावें, आँखोंको जलसे न धोवे।

(२४६) दीपन—जो पदार्थ कच्चे को न पकावे, किन्तु अग्निको प्रदीप्त करे, उसे "दीपन" कहते हैं। जैसे; सौंफ।

पाचन—जो पदार्थ कच्चे को पकाता है, किन्तु अग्निको दीपन नहीं करता है, उसे "पाचन" कहते हैं। जैसे; नागकेशर।

(२४८) दीपनपाचन—जो पदार्थ अग्नि को दीपन करता है और कच्चे को पचाता भी है; उसे "दीपन-पाचन" कहते हैं। जैसे, चीता।

(२४९) शमन—जो पदार्थ तीनों दोषोंको शुद्ध नहीं करता, समान-दोषों को वढ़ाता नहीं, किन्तु विषम दोषों को सम करता है, वह पदार्थ "शमन" कहाता है। जैसे; गिलोय।

(२५०) अनुलोमन—जो पदार्थ कच्चे वात, पित्त, और कफको पका कर, वायु के वंध को भेदन करके और नीचे लेजाकर गुदा द्वारा निकाल देता है, उसे "अनुलोमन" कहते हैं। जैसे; हरड़।

(२५१) स्रंसन—जो पदार्थ कोठेमें चिपटे हुए पकाने योग्य मल, कफ और पित्त को बिना पकाये ही नीचे लेजाय, उसे "स्रंसन" कहते हैं। जैसे; अमलतास।

(२५२ भेदन—जो पदार्थ वातादि दोषोंसे बँधे हुए अथवा न बँधे हुए गाँठोंके समान मलमूत्रादि को तोड़-फोड़ कर नीचे लेजाकर गुदा द्वारा निकाल दे, उसे "भेदन" कहते हैं। जैसे; कुटकी।

(२५३) रेचन—जो पदार्थ अधपके अथवा कच्चे मलको पतला करके नीचे को गिरा दे; यानी दस्त करादे, उसे "रेचन" कहते हैं। जैसे; निशोथ।

(२५४) वमन—जो पदार्थ कच्चे पित्त, कफ तथा अन्न-समूह को ज़बर्दस्ती मुँहसे निकाले, वह पदार्थ "वमन" कहाता है। जैसे; मैनफल।

(२५५) संशोधन— जो औषधि स्वस्थान में सञ्चित मलों को ऊपर की ओर लेजाकर मुँह और नाक द्वारा वाहर निकाले अथवा संचित मलको नीचे की ओर लेजाकर, गुदा या लिङ्ग या भग द्वारा बाहर निकाले, उसे "संशोधन" कहते हैं। जैसे; देवदालीका फल।

(२५६) छेदन—जो पदार्थ आपसमें मिले हुए कफादि दोषोंको, अपनी शक्तिसे फोड़कर अलग-अलग कर देवे, उसको "छेदन" कहते हैं। जैसे; जवाखार, कालीमिर्च और शिलाजीत।

(२५७) ग्राही—जो पदार्थ अग्निको दीपन करता है, कच्चे को पकाता है, गरम होने की वजह से गीलेपन को सुखाता है, वह "ग्राही" कहलाता है। जैसे; सोंठ, ज़ीरा, गजपीपल।

(२५८) स्तम्भन—जो पदार्थ रूखा, शीतल, कसैला और लघुपाकी होनेके कारण, वायुको उलटा करनेवाला होता है ; यानी नीचे जाने-वाले पदार्थ को नीचे जानेसे रोकता है, उसे "स्तम्भन" कहते हैं। जैसे ; कुड़ा, सोनापाठा।

(२५९) लेखन—जो पदार्थ देहकी धातुओंको अथवा मलको सुखाकर दुर्बलता करता है ; यानी मोटेको पतला करता है, उसे "लेखन" कहते हैं। जैसे ; मधु, उष्णजल, वच, और इन्द्रजौ।

(२६०) वाजीकरण—जिस पदार्थके प्रयोगसे स्त्रीके साथ रमण करने का उत्साह हो ; मैथुन-शक्ति बढ़े, वह द्रव्य "वाजीकरण" कहलाता है। जैसे ; असगन्ध, मूसली, चीनी, शतावर, दूध, मिश्री इत्यादि।

वाजीकरण दो तरह का होता है। (१) वीर्य्यको रोकनेवाला; (२) वीर्य्य को वढ़ानेवाला। दूध, मिश्री, शतावर आदि वीर्य्यको वढ़ा-नेवाले पदार्थ हैं ; अफीम, भांग और जायफल आदि वीर्य्य को स्खलित होनेसे रोकनेवाले हैं।

(२६१) शुक्रल—जिस द्रव्य से वीर्य्य की वृद्धि हो, उसे "शुक्रल" कहते हैं। जैसे ; नागबला, कौंचके बीज इत्यादि।

दूध, उड़द, भिलावे की मींगी, और आमले—ये अपने प्रभाव से, शीघ्र ही रसरक्त आदिको पैदा करके वीर्य्यको प्रकट करते हैं और वीर्य्यकी अधिकता होनेपर उसकी प्रवृत्ति करते हैं।

स्त्री वीर्य्य को निकालनेवाली, कटेरी का फल वीर्य्यको रेचन-करनेवाला, जायफल गिरते वीर्य्यको रोकनेवाला, और इन्द्रजौ वीर्य्य-क्षय करने वाला है।

स्त्री—स्मरण, कीर्त्तन, दर्शन, सम्भाषण, स्पर्श, चुम्बन, आलिङ्गन और मैथुन—इन सारी क्रियाओंसे अथवा थोड़ी क्रियाओंसे अथवा एक ही क्रिया से वीर्य्य को निकालनेवाली है।

(२६२) रसायन—जो पदार्थ बुढ़ापे और ज्वर आदि रोगों का

नाश करे, उसे "रसायन" कहते हैं। जैसे हरड़, दन्ती, गूगल और शिलाजीत।

(२६३) व्यवायि—जो पदार्थ अपक्व यानी कच्चा ही सारी देहमें व्याप्त होकर, पीछे मद्य की तरह पाक अवस्था को प्राप्त हो, उसे "व्यवायि"कहते हैं। और चीज़ें पककर अपना गुण करती हैं, किन्तु व्यवायि पदार्थ कच्चे ही अपने गुणोंसे सारे शरीरमें व्याप्त होकर पीछे पकते हैं। जैसे; भाँग और अफीम।

(२६४) विकाशी—जो पदार्थ सारे शरीर में रहनेवाले वीर्य्य में से 'ओज'को सुखाकर, शरीर की सन्धियों के बन्धनों को ढीला करते हैं, उन्हें 'विकाशी' कहते हैं। जैसे ; सुपारी और कोदों।

(२६५) मादक—जो पदार्थ अधिक तमोगुणवाला और बुद्धि के नाश करनेवाला हो, उसे 'मादक' कहते हैं। जैसे ; मदिरा।

(२६६) विष—जो पदार्थ सारे शरीर में व्याप्त होकर पीछे पकता है, वीर्य्य में से 'ओज' को सुखाकर शरीर के जोड़ों को ढीला करता है, जो कफ को नाश करता है और नशा लाता है तथा जिस में अग्नि का अंश अधिक होता है, जो प्राणी के प्राणों को नाश करता है, और जिस पदार्थ के साथ मिलता है उसी के गुण ग्रहण कर लेता है, उसे 'विष' कहते हैं। जैसे ; वत्सनाभ।

(२६७) प्रमाथी—जो पदार्थ अपने बलसे स्रोतों में से दोषों को निकाल देता है, उसे "प्रमाथी" कहते हैं। जैसे; मिर्च और वच।

(२६८) अभिष्यन्दी—जो पदार्थ रेशेवाला, कफकारी और भारी होने के कारण रस बहाने वाली शिराओं को रोककर शरीरमें भारी-पन करता है, उसे 'अभिष्यन्दी' कहते हैं। जैसे; दही।

(२६९) विदाही—जिस पदार्थ के खानेसे खट्टी-खट्टी डकारें आवें, प्यास लगे, हृदयमें जलन हो, उसे "विदाही" कहते हैं। ऐसी चीज़ देर में पचती है।

(२७०) योगवाही— जो पदार्थ अपने साथ मिले हुई द्रव्यों के गुण ग्रहण करे, उसे 'योगवाही' कहते हैं। जैसे; शहद, घी, तेल, पारा और लोहा आदि।

(७२१) हलका—जो पदार्थ अत्यन्त पथ्य, कफनाशक और शीघ्र पचनेवाला हो, उसे 'हलका' या 'लघु' कहते हैं।

(२७२) भारी—जो पदार्थ भारी हो, वातनाशक हो, पुष्टिकारक हो, कफकारी और देर से पचनेवाला हो, उसे 'भारी' या 'गुरु' कहते हैं।

(२७३) स्निग्ध—जो पदार्थ वातनाशक, वीर्य्यवर्द्धक, कफकारक और बलवर्द्धक होते हैं उन्हें "स्निग्ध" कहते हैं। स्निग्ध का अर्थ चिकना है।

(२७४) रूक्ष—रूक्ष का अर्थ रूखा है। रूखे पदार्थ वायु को बढ़ानेवाले और कफको नाश करनेवाले होते हैं।

(२७५) तीक्ष्ण—तीक्ष्ण पदार्थ पित्त कारक, रसरक्त आदि धातुओंको सुखानेवाले और कफ तथा बादीको नाश करनेवाले होते हैं।

(२७६) श्लक्ष्ण—इसका अर्थ छोटा, पतला और चिकना या तेलिया है। जो पदार्थ स्नेह-युक्त न होने पर भी तथा कठिन होने पर भी चिकना हो, उसे 'श्लक्ष्ण' कहते हैं।

(२७७) स्थिर—जो पदार्थ वायु और मलको रोकनेवाला हो, उसे 'स्थिर' कहते हैं।

(२७८) सर—जो पदार्थ वायु और मल को प्रवृत्त करनेवाला हो, उसे 'सर' कहते हैं। सर का अर्थ यहाँ दस्तावर है। इस शब्दके मलाई, झील, तालाब, सरकना आदि बहुतसे अर्थ होते हैं। "सर" शब्द "स्थिर" का उलटा है। "सर" दस्तावर को कहते हैं, "स्थिर" क़ाबिज़ को कहते हैं।

(२७९) पिच्छिल—जो पदार्थ रेशेवाला, बलकारी, जोड़नेवाला, कफकारी और भारी होता है, उसे 'पिच्छिल' कहते हैं।

(२८०) विशद—गीले को सुखानेवाले, और घाव भरनेवाले पदार्थ को "विशद" कहते हैं।

(२८१) शीत—इसका अर्थ शीतल है। जो पदार्थ सुखकारक, रक्त की अति प्रवृत्तिको रोकनेवाला, मूर्च्छा, दाह, प्यास और पसीने को रोकनेवाला हो, उसे "शीत" कहते हैं। जिस पदार्थ में 'शीत' गुण होता है, यानी जो ठण्डा होता है:उससे मूर्च्छा, प्यास, दाह, वग़ैरः में लाभ अवश्य होता है।

(२८२) उष्ण—इसका अर्थ गर्म है। यह शीत का उल्टा है। जो पदार्थ गर्म और पाचक होता है, उसे "उष्ण" कहते हैं।

(२८३) मृदु—इसका अर्थ नर्म या मुलायम है। पदार्थ में मृदुता एक गुण होता है।

(२८४) कर्कश—इसका अर्थ कठोर है। पदार्थ में कठोरता एक गुण होता है।

(२८५) स्थूल—इसका अर्थ मोटा है। जो पदार्थ शरीर को मोटा करता है और स्रोतों (छिद्रों) को रोकता है, उसे "स्थूल" कहते हैं।

(२८६) सूक्ष्म—इसके अर्थ छोटा, बारीक, न दिखाई देनेवाला आदि कहते हैं। शरीर के सूक्ष्म (अत्यन्त छोटे-छोटे) छिद्रों में तेल आदि जिस गुणसे भीतर घुस जाते हैं, उसे "सूक्ष्म" कहते हैं।

(२८७) द्रव—इसका अर्थ पानी-जैसा पतला है। जो पदार्थ गीला करनेवाला और व्यापक होता है, उसे "द्रव" कहते हैं।

(२८८) शुष्क—इसका अर्थ सूखा है। यह द्रव का उल्टा है। द्रव गीले को कहते हैं और शुष्क सूखे को कहते हैं। पदार्थों में गीलापन सूखापन आदि गुण होते हैं। जो पदार्थ सूखा होता है और व्यापक नहीं होता, उसे "शुष्क" कहते हैं।

(२८९) आशु—जिस पदार्थमें आशु गुण होता है, वह शरीर में

फैल जाता है ; यानी जो पदार्थ पानी में तेल की तरह शरीर में फैल जाता है, उसे "आशु" कहते हैं ।

(२९०) मन्द—जो सब कामोंमें शिथिल और अल्प होता है, उसे "मन्द" कहते हैं ।

नोट—नं० २७१ "हलका" से लेकर ऊपर २९० "मन्द" तक जो शब्द लिखे हैं, ये गिन्ती में बीस हैं । यही बीस गुण द्रव्यों (पदार्थों) में होते हैं । सुश्रुतने पदार्थोंमें जो बीस गुण बताये हैं, उनको हमने विद्यार्थियों की समझ में सुगमता से आने के लिए उलट कर लिख दिया है ।

याद रक्खो; हलकापन आकाश का, भारीपन पृथ्वी का, चिकनापन जल का, रूखपन वायु का और तीक्ष्णता अग्नि का गुण है ।

ध्यान में धर लो; जो पदार्थ हलका होगा, जल्दी पचेगा और जो भारी होगा, देर में पचेगा । जो पदार्थ भारी और चिकना होगा, वह कफकारक अवश्य होगा; जो कफकारक और भारी होगा वह बल, वीर्य बढ़ानेवाला और बादी को नाश करनेवाला होगा । इसीसे प्रायः सभी बल बढ़ाने वाली चीज़ें, बहुधा, भारी और देर में पचनेवाली होती हैं ।

रूखी चीज़ें बादी को बढ़ाती हैं, किन्तु कफ को नाश करती हैं । चिकनी चीज़ें कफको बढ़ाती हैं और बादी को नाश करती हैं । गर्म चीजें पित्तको बढ़ाती और कफ तथा बादीको नाश करती हैं ।

ऊपर जो हमने पाँच गुणों का सार लिखा है, उसे अच्छी तरह समझकर माथे में जमा लो । चिकित्सा में इससे बड़ी आसानी पड़ती है । पर इस बात का भी ध्यान रक्खो, कि ये साधारण नियम हैं ; इनके विपरीत भी कहीं-कहीं होता है ।

(२९१) मधुर—मधुर का अर्थ मीठा है । यह एक रस है । छहों रसों में मीठा रस उत्तम है । इसकी पैदायश पृथ्वी और जल

से है। पृथ्वीका गुण भारीपन और जलका चिकनापन है, इसलिए मधुर रस भी भारी और चिकना होता है। यह रस शीतल है। इससे वात और पित्त का नाश होता है।

(२८२) अम्ल—अम्ल का अर्थ खट्टा है। इसकी उत्पत्ति पृथ्वी और अग्नि से है। यह रस वात नाशक है, किन्तु पित्त और कफ को बढ़ानेवाला है। यह गरम है।

(२८३) क्षार—क्षार का अर्थ खारी है। इसकी पैदायश जल और अग्नि से है। यह रस कफ तथा पित्त को करने वाला और वात को नाश करनेवाला है।

(२८४) कटु—कटु का अर्थ चरपरा है। इसकी पैदायश आकाश और वायु से है। यह रस वात पित्त को बढ़ानेवाला और कफ को हरनेवाला है। यह गरम है।

(२८५) तिक्त—इसका अर्थ कड़वा है। इसकी पैदायश वायु और अग्नि से है। यह रस वातकारक और पित्त कफ नाशक है। यह शीतल है।

(२८६) कषाय—इसका अर्थ कसैला है। इसकी उत्पत्ति वायु और पृथ्वी से है। यह रस वायु को कुपित करनेवाला और कफ, रुधिर और पित्त को हरनेवाला है। यह शीतल है।

(२८७) वीर्य—वीर्य बहुधा द्रव्य के आश्रय रहता है और दो तरह का होता है—(१) शीतल (२) गरम।

(२८८) विपाक—जठराग्नि के संयोग से पचने पर, छहों रसों का जो परिणाम होता है, उसे "विपाक" कहते हैं। विपाक तीन तरह का होता है। मीठे और खारी रस का पाक मीठा होता है; खट्टे रस का पाक खट्टा होता है; कसैले, कड़वे और चरपरे रस का पाक बहुधा तीक्ष्ण या चरपरा होता है।

इन तीनों तरह के पाकों से तीन दोष उत्पन्न होते हैं। मधुर पाक से कफ, खट्टे से पित्त, और चरपरे से वायु उत्पन्न होती है।

(२९८) प्रभाव—द्रव्यकी शक्तिको "प्रभाव" कहते हैं। जो काम रस, गुण, वीर्य और विपाक से नहीं होते, वह शक्ति या प्रभाव से होते हैं। जैसे; खैर कोढ़ का नाश करता है। यह इसकी विलक्षण शक्ति है।

नोट—रस, गुण वीर्य आदि के सम्बन्ध में हम आगे विस्तार से लिखेंगे।

नं० १ चित्र।

फुफ्फुस और हृदय।
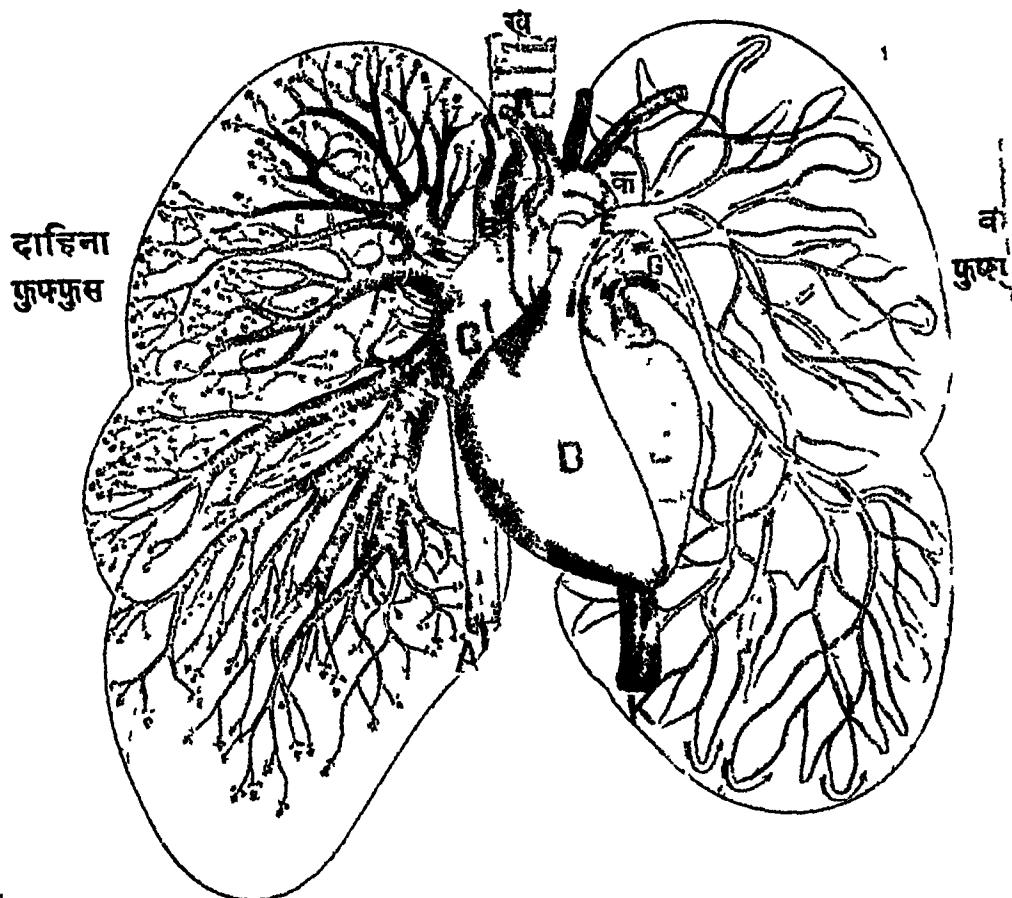
दोनों फेंफड़ों को देखिये। दाहिना फेंफड़ा बायें से बड़ा है। बीच में नीला और लाल (D और J) हृदय है। "ख" जहाँ लिखा है, वह श्वास नलिका है। इसके पीछे रबड़ के समान खाने की नली है, जो कण्ठ से मलाशय तक चली गई है। इस नली से खाना आमाशय में, फिर वहाँ से आँतों में जांता है। आँतों से मल मलाशय में और सार पदार्थ रस रसवाहिनी नाड़ियों में चला जाता है। "क" जहाँ लिखा है वह वृहत् धमनी है। इसमें होकर खून सारे शरीर में चक्कर लगाता है।

नं०१ चित्र ।

फुफ्फुस या फेंफड़ों का वर्णन ।

इस चित्रमें फेंफड़े दिखाये गये हैं। इनका स्थान छाती है; यानी ये छाती में रहते हैं। अँगरेज़ीमें इनको लंग्ज़ (Lungs) और अरबी में रिहा कहते हैं। ये गिन्तीमें दो होते हैं। एक को दाहिना फुफ्फुस और दूसरे को बायाँ कहते हैं। हमलोगोंके फेफड़ों का वज़न क़रीब-क़रीब दो पौण्ड या एक सेर का होता है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के फेंफड़ों का वज़न कुछ कम होता है। इनमें हवा भरी रहती है। यों तो यकृत, तिल्ली प्रभृति भी खून के साफ़ करने में मदद देते हैं; किन्तु फेफड़े, गुर्दे और चमड़ा—ये खून को साफ करनेमें मुख्य हैं।

इस चित्र में जहाँ "ख" अक्षर लिखा है, वह हवा की प्रधान नली है। इसे श्वास-नली कहते हैं। नाकके छेदों से फेंफड़ों तक हवा के जाने-आने की यही राह है। फेंफड़ों में हवा के पहुँचते ही उसे वहाँ अनेक नालियाँ मिल जाती हैं। इन्हीं नालियों के द्वारा हवा फेंफड़ों के सब भागों में पहुँच जाती है। फेंफड़ों में हवा की कोई १७।१८ करोड़ कोठरियाँ हैं। आप दाहिनी ओर के फेंफड़ेमें वृक्षकी शाखाओं की तरह फैली हुई चीजों को देखिये।

फेंफड़ों के कोने-कोने में हवा का भरा रहना ही अच्छा है। इसलिए जो लोग खूब औंडा साँस लेते हैं उनके फेंफड़ों में हवा भरी रहती है; हलके साँस लेनेसे उनमें हवा की कमी रहती है। फेंफड़ों में हवा भरी रहती है; इससे ये पानी से हलके होते हैं और पानीपर तैर सकते हैं। जब इनके किसी हिस्से में दोष हो जाता है, तब वह हिस्सा हवा न होनेसे पोला नहीं रहता। क्षय, तपेदिक़ प्रभृति रोगोंमें फेंफड़ों के जो भाग ठोस हो जाते हैं, वे जल पर तैर नहीं सकते।

हवा का फेंफड़ों में जाना और वहाँ से बाहर आना ही श्वास लेना है। जब मनुष्य साँस लेता है यानी नाक के छेदों द्वारा हवा भीतर जाती है, तब छाती बड़ी हो जाती है और जब मनुष्य साँस छोड़ता है यानी जब हवा भीतर से बाहर आती है तब छाती पहले जितनी ही हो जाती है। साँस के एक बार भीतर जाने और बाहर आने को एक साँस कहते हैं।

तन्दुरुस्त आदमी १ मिनिट में १५।२० साँस लेता है। बालक अधिक साँस लेता है। हालका पैदा हुआ बच्चा एक मिनिट में प्रायः ४५ साँस लेता है। पाँच साल का बालक प्रायः २५ साँस लेता है। कह आये हैं, कि स्वस्थ मनुष्य एक मिनट में १५।२० साँस लेता है; पर भागते हुए, स्त्री-संगम करते हुए, कसरत या और कोई मिहनत करते समय साँसों की संख्या मामूल से ज़ियादा हो जाती है। बीमारी की हालत में अथवा अफीम प्रभृति के ज़हर चढ़ने की दशा में, साँसों की संख्या कम हो जाती है; पर ज्वर की हालत में साँस जल्दी-जल्दी चलने लगता है।

जो हवा साँस द्वारा फेंफड़ोंमें जाती है, वही खून को साफ़ करती है। इसलिए मनुष्य को सदा साफ हवा में रहना चाहिये। फेंफड़े साफ हवा को खींचते हैं और उससे शरीर की जान—ख़ूनको साफ करते हैं तथा बाहर आनेवाले साँस द्वारा ज़हरीले पदार्थों को बाहर निकाल देते हैं। न्यूमोनिया या क्षय रोग अथवा थाइसिस में जब फेंफड़े ख़राब हो जाते हैं, तब बड़ी कठिनता होती है।

आप जो इस चित्रमें नीली और लाल दो तरह की नालियाँ देखते हैं; आपके मनमें सवाल उठता होगा, कि ये दो रङ्ग की नालियाँ कैसी हैं? सुनिये,—शरीर का खून नालियों में ही रहता है। ये नालियाँ दो तरह की होती हैं :—(१) धमनी, (२) शिरा। धमनियाँ शिराओं से मोटी होती हैं और इनमें साफ खून रहता है। शिरायें पतली होती हैं और इनमें मैला ख़ून रहता है। फेंफड़े के बायें

नं० २ चित्र।
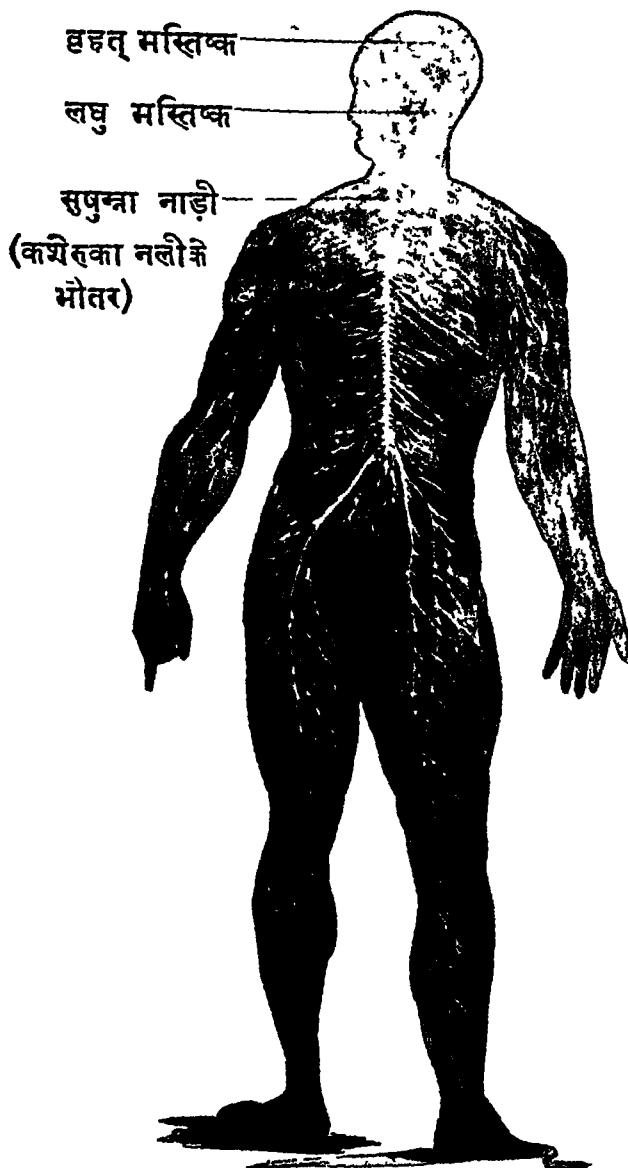
स्नायु या नाड़ीजाल दिखानेवाला चित्र।

हिस्से में जो नीली-नीली नालियाँ हैं वे शिरायें हैं; उनमें मैला खून रहता है। दूसरी जो लाल-लाल हैं, वे धमनियाँ हैं ; उनमें साफ़ खून रहता है।

नं०२ चित्र।

मस्तिष्क और वात नाड़ियों का वर्णन।

मनुष्य-शरीरमें मस्तिष्क सार और मुख्य अङ्ग है। यह कपाल में रहता है। यह आठ हड्डियोंसे बना एक कोठा है। इस कोठेके अन्दर जो चीज़ है वही मस्तिष्क है। कपाल की पेंदीमें एक बड़ा छेद होता है। इसी स्थानपर एक नली आ मिली है। इस नलीको Spinal Cord या कशेरुक नली कहते हैं। इस नलीके भीतर एक और नली रहती है, उसे सुषुम्ना नाड़ी कहते हैं। यह मस्तिष्कके नीचेके हिस्सेसे मिली हुई है।

मस्तिष्क अण्डेकीसी शकलका होता है। स्त्रियोंके मस्तिष्कसे पुरुषोंका मस्तिष्क कुछ अधिक वज़नी होता है। यह तोलमें कोई सवा सेरके क़रीब होता है। मस्तिष्क और सुषुम्नासे निकलकर अनेकों नाड़ियाँ सारे शरीरमें फैली हुई हैं।

मस्तिष्क दो होते हैं—(१) बड़ा और (२) छोटा। इनके काम भी अलग-अलग हैं।

भारतवर्षकी राजधानी दिल्ली है। दिल्लीसे तारोंकी मुख्य लाइन चलती है और उससे सारे भारतके नगरोंके तारोंका सम्बन्ध है। भारतके किसी भी नगरमें जो कोई बुरा भला काम होता है, उसकी खबर उन तारों द्वारा दिल्ली पहुँच जाती है और फिर दिल्लीसे जो आज्ञा जारी होती है, वह सब नगरोंमें पहुँच जाती है। जिस तरह दिल्ली सारे भारतको तार लाइनसे सम्बन्ध रखती है और वहींसे सब तरहका हुक्म होता है और वहीं सबकी शिकायत पहुँचती हैं ; उसी तरह मानव देहमें मस्तिष्क मुख्य स्थान है, जहांसे सारे शरीरको आज्ञायें

निकलती हैं और जहाँ सारे अङ्ग प्रत्यङ्गोंके दुःख-सुखकी खबरें पहुँचती हैं। मतलब यह है, कि शरीरमें जो नाड़ी-जाल है, वह तारोंके जालकी तरह है। अगर मौसममें भी ज़रासा फेरफार होता है, तो शरीरकी तारबरकी फौरन मस्तिष्कको खबर देती है।

सुषुम्ना नाड़ी इस शरीरकी मुख्य तारकी लाइन है, जो मस्तिष्क से चलती है। इससे फिर और-और तरफकी लाइनें निकली हैं। इसीमें होकर खबरें आया और जाया करती हैं। मस्तिष्कसेही इच्छा, विचार, बुद्धि, ज्ञान, अनुभव और संचालन क्रिया होती है। जब मस्तिष्क बिगड़ जाता है, तब कोई इन्द्रिय काम नहीं करती। मस्तिष्क बिना शरीरकी रक्षा नहीं है। जिस तरह अच्छा राजा प्रजाकी रक्षा करता है,उसी तरह मस्तिष्क शरीरकी रक्षा करता है। मानलो—आपके पाँवमें बिच्छू काटना चाहे। बिच्छूके पास आतेही वह खबर नाड़ीरूपी तारबरकी द्वारा मस्तिष्कमें पहुँचेगी। खबर पहुँचतेही वहाँसे हुक्म आवेगा, पैर हटा लो। खबर पातेही आप पैर हटा लेंगे और तकलीफसे बच जायेंगे। इसी तरह दुःख-सुख गरमी-सरदी सभी बातोंकी खबर मस्तिष्क रूपी राजधानीमें नाड़ी-जाल रूपी तारों द्वारा पहुँचती हैं और वहाँसे हर बातका यथोचित उत्तर आता है। इससे सिद्ध हुआ कि मस्तिष्क प्रधान अङ्ग है। उसमें बिगाड़ होनेसे शरीरकी खैर नहीं। इस मस्तिष्कमें ही आत्मा या मन रहता है। जब मनको ज़रा भी कष्टकी सम्भावना होती है, तब मस्तिष्क शीघ्रही उस दुखदायी खबरको शरीरके प्रत्येक अङ्गके पास पहुँचा देता है। पीछे सभी अङ्ग मिलकर दुःख निवारणकी कोशिशें करते हैं। बाज़-बाज़ मौकोंपर जब कोई भयानक शोकप्रद घटना होती है, तब मन ऐसे विचारोंमें डूब जाता है कि, वह सब वैद्युतिक शक्तिको खर्च कर डालता है। जब अपने पासकी शक्ति खर्च हो जाती है, तब अपने नीचे वालोंकी शक्तिको भी खींच कर खर्च कर देता है। जब कुछ नहीं रहता, दीवाला हो जाता है, सारा खज़ाना खाली हो जाता

नं० ४ चित्र।
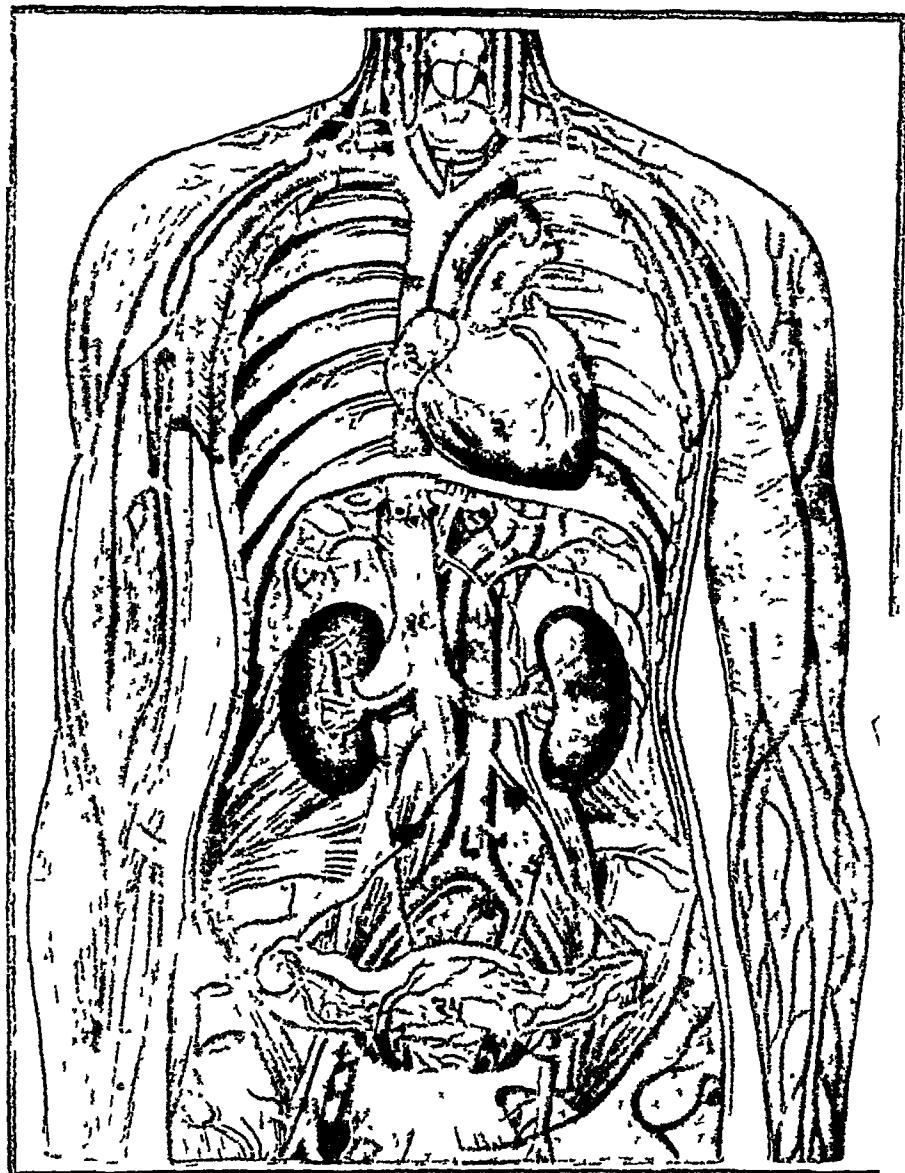
नं० २।२—हृदय या दिल।

नं० ६—खराब या मैले खून की शिरा।

नं० ५—साफ खून की बड़ी धमनी।

नं० २०—दोनों गुर्दे या वृक्क।

नं० २५—गर्भाशय।

है, तब अकसर मृत्यु हो जाती है। मस्तिष्कका इतना प्रभाव है कि यदि सिरमें कोई तकलीफ हुई कि भूख बन्द हो जायगी अथवा और कोई रोग हो जायगा। देखते हैं, हमें घण्टे भर पहले ऐसी भूख लग रही थी कि भूखके मारे घबराये जाते थे। हम खानेको जानेही वाले थे कि, हमारे उठते-उठते एक बड़ी भारी दुखदाई ख़बर आ गई। उसे सुनते ही हमारी भूख न जाने कहाँ चली गई। इस सब बातों से साफ़ जाहिर है कि, चित्त और मस्तिष्कका हृदय और फेंफड़ोंपर बड़ा प्रभाव है। चित्तपर बुरा प्रभाव होनेसे मनुष्यका दिल धड़कने लगता है और मनुष्य बेहोश हो जाता है। नाजुक मिज़ाजोंकी तो मृत्यु तक हो जाती है।

मिस्टर इलियट वारबर्टन महाशय लिखते हैं कि, एक हाजीको राहमें महामारी मिली। उन्होंने कहा—"तुम बड़ी दुष्टा हो जो कैरोके इतने मनुष्योंको हड़प गईं।" महामारीने कहा—"अरे भाई क्या बकते हो? हाँ, उस नगरके २० हजार आदमी मर गये, पर मेरे हाथोंसे तो कोई दो हज़ार ही मरे हैं। शेष सब तो मेरे साथी "भय" के मारे मरे है।"

हृदयका वर्णन।

जहाँ अँगरेज़ी के D और J अक्षर लिखे हैं, वह हृदय या दिल है। इसके भी दो भाग हैं। जहाँ D लिखा है, वह नीला है और जहाँ J लिखा है वह लाल है। हृदय दोनों फेंफड़ों के बीच में रहता है।

मनुष्य-शरीर में खून सदा चक्कर लगाया करता है। हृदयमें होकर खून आता और जाता है; इसीसे यह सिकुड़ता और फैलता है। हृदयका फड़कना आपको छाती पर हाथ लगाने से मालूम हो सकता है।

हृदय में कोठे होते हैं। उनमें किवाड़ होते हैं। जब एक कोठे में नालियों द्वारा खून आता है, तब वह खून से भरकर

सिकुड़ता है और खून को दूसरे कोठे में निकाल कर फिर फैलता है। पिछले कोठे का ख़ून पहले में नहीं जा सकता, क्योंकि उसके बाहर आते ही द्वार बन्द हो जाता है। तब वह ख़ून बड़ी धमनी में (बड़ी धमनी वह है जहाँ "क" लिखा है) चला जाता है। बड़ी धमनी में से अनेक शाखायें निकली हैं। उनमें होकर ख़ून सारे शरीर में फैल जाता है।

इस तरह ख़ून के आने और जाने के कारण हृदय सिकुड़ता और फैलता रहता है। हृदय का यह काम ज़िन्दगी भर चलता रहता है। इसलिए हृदयका कोई भी कोठा ख़ून से ख़ाली नहीं रहता। कहते हैं, हृदय एक मिनिटमें कोई ७२ बार ख़ूनको लेता है और उतनीही बार निकालता है। जब हृदय फैलता है उसमें ख़ून आता है और जब वह सिकुड़ता है ख़ून बाहर जाता है। हृदय के फैलने और सिकुड़ने से एक प्रकार का शब्द होता है, जो मनुष्य के बायें स्तनसे नीचे कान लगाकर सुनने से साफ सुनाई देता है।

बचपनमें हृदय जल्दी-जल्दी धड़कता है। ज्यों-ज्यों बालक बड़ा होता जाता है, धड़कन कम होती जाती है। मध्य अवस्था वाले पुरुषका हृदय एक मिनिट में प्रायः ७०।७५ बार धड़कता है। जन्मे हुए बालक का प्रायः १४०।१४४ बार धड़कता है। अनेक रोगों या मानसिक विकारों के कारण हृदय की धड़कन कम और ज़ियादा भी हो जाती है; खुशी की ख़बर से अथवा स्त्री-प्रसङ्ग की इच्छासे हृदय की धड़कन तेज़ हो जाती है; बुरी ख़बर सुननेसे धड़कन कम हो जाती है।

नाड़ी की चाल हृदयकी धड़कन पर ही निर्भर है। वैद्य लोग अँगूठेके मूलकी धमनियोंको, कलाईके ऊपर, अपनी अँगुलियोंसे दबा कर नाड़ी देखते हैं। इन धमनी नाड़ियोंका सम्बन्ध हृदयसे है। यह बात आप नं० ३ चित्रको देखनेसे सहजमें समझ जायेंगे।

आप चित्रके दाहिने हाथकी धमनी नाड़ियोंको देखिये। इन धमनियोंका सम्बन्ध प्रधान धमनीसे है। प्रधान धमनी और उसकी शाखा धमनियाँ खूनके कारण फैला और सुकड़ा करती हैं। इसीसे नाड़ीमें फड़कन होती है। इस फड़कनके देखनेको ही नाड़ी देखना कहते हैं। डाक्टरोंके मतानुसार नाड़ीसे विशेष कर दिल और धमनियोंके रोगही जाने जा सकते हैं।

नं० ३ चित्र।

नाड़ी फड़कने का कारण।

इस चित्रमें छातीकी जगह दोनों ओर बारह-बारह पसलियाँ हैं। हृदयके सम्बन्धमें पीछे पृष्ठ ङ और च में लिख आये हैं। जहाँ "क" और "क" लिखे हैं, ये दोनों वृक्क या गुर्दे हैं। इनमें मूत्र तैयार होता है। यहाँसे मूत्र दो नालियों द्वारा मूत्राशय या मूत्रकी थैलीमें जाता है। यह मूत्रकी थैली गेंदकी तरह गोल है और वहाँ "ख" लिखा है। इस मूत्रकी थैलीके पीछेही मलाशय यानी मलकी थैली है।

इस चित्रके (इस नं० ३ चित्र को इस पुस्तकके २१२ और २१३ पृष्ठोंके बीचमें देखिये) दाहिने हाथ या अपने बायें हाथके सामनेके हाथ की धमनी नाड़ियोंको देखिये। इन नाड़ियोंका सम्बन्ध हृदयके पासवाली वृहत् धमनी या प्रधान धमनी से है। खूनके आवागमनके कारण हृदय फैलता और सुकड़ता है। हृदयसे खून बड़ी धमनीमें जाता है। बड़ी धमनीसे और धमनियोंमें जाता है। खूनके कारणसे वह धमनियाँ फैलती और सुकड़ती हैं। उनमें तरङ्गसी उठती है; इससे नाड़ियोंमें फड़कन या स्पन्दन होता है। इस फड़कनको ही नाड़ी चलना कहते हैं। समझ लीजिये, इन नाड़ियोंके फड़कनेका कारण हृदय का फड़कना या स्पन्दन है।

ऐसा होता है, कि नाड़ीका फड़कना बन्द हो जाता है, नाड़ी कोहनी पर भी नहीं मिलती; किन्तु हृदय फड़कता रहता है। हैज़ेमें बहुधा ऐसा होता है कि, नाड़ी गतिहीन हो जाती है; हाथ पाँव शीतल हो जाते हैं। उस समय उपाय करनेसे नाड़ी फिर भी आ जाती है। रोगी बच जाता है। विषगर्भ तैलमें तारपीनका तेल मिलाकर मालिश करने तथा और भी कई उपाय करनेसे हम नाड़ी को चलानेमें कामयाब हुए हैं, रोगी बच गये हैं; किन्तु हृदय का फड़कना बन्द हो जानेपर, कोई उपाय काम नहीं देता।

सूचना।

नं० ४ और नं० ५ चित्रोंके सम्बन्धमें हम विस्तारपूर्व्वक नहीं लिख सके। फिर भी इनके देखनेमात्रसे बुद्धिमान बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। हम इनके सम्बन्धमें किसी अगले भागमें लिखेंगे।

चित्रोंके सम्बन्धमें जो कुछ हमने लिखा है, उसके लिखनेमें हमें हमारे एक मित्र, भूतपूर्व्व सिविल सर्जन निज़ाम हैदराबाद एवं डिमान्स्ट्रेटर आव् एनाटोमी कलकत्ता नेशनल कालेज, श्रीमान् डाक्टर कार्त्तिकचन्द दत्त एल० एम० एस० महोदयसे तथा अमेरिका के डाक्टर फुट (Foote) की CYCLOPEDIA OF POPULAR MEDICAL SOCIAL AND SEXUAL SCIENCE नाम्नी पुस्तकसे बहुत कुछ सहायता मिली है; अतएव हम अपने मित्र डाक्टर साहब मज़कूर के और उपरोक्त पुस्तकके लेखक डाक्टर फुट महोदय के अतीव आभारी हैं। लेखक—

नं० ५ चित्र।
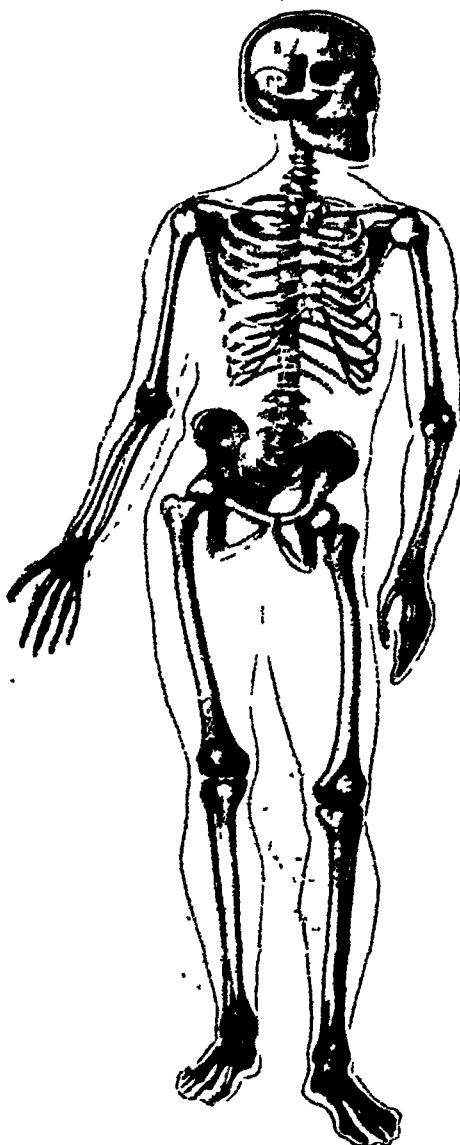
नरकंकाल या अस्थिपंजर।

शरीरका दारमदार इस अस्थिपंजर पर ही है। वैद्यक मत से शरीर में ३०० हड्डियाँ हैं; किन्तु डाक्टर कोई २४६ बताते है।

मनुष्य-शरीर का वर्णन।

शरीर के मसाले

मनुष्य-शरीर निम्नलिखित चीज़ोंके योगसे बना हुआ है:—

१ सात कला
२ सात आशय
३ सात धातु
४ सात धातु-मल
५ सात उपधातु
६ सात त्वचा
७ तीन दोष
८ नौ सौ स्नायु (नाड़ी)
९ दो सौ दस नाड़ी-सन्धि
१० दो सौ हड्डियाँ
११ एक सौ सात मर्मस्थान
१२ सात सौ शिरायें
१३ चौबीस रसवाहिनी धमनी-नाड़ियाँ
१४ पाँच सौ माँसपेशी (स्त्रियों के ५२० हैं)
१५ सोलह कण्डरा (बड़े स्नायु)
१६ दश छेद (स्त्री की देह में १२ छिद्र हैं)

सात कला*

१ मांसधरा—
२ रक्तधरा
३ मेदधरा
४ कफधरा
५ पुरीषधरा
६ पित्तधरा
७ रेतोधरा

पहली कला मांसको धारण करती है, इसलिये उसे "मांसधरा कला" कहते हैं।

दूसरी कला रक्तको धारण करती है,इसलिए उसे "रक्तधरा" कहते हैं।

तीसरी कला मेद को धारण करती है, इसलिए उसे "मेदधरा" कहते हैं।

चौथी कला यकृत और प्लीहा के बीच में रहती है, और वह इन्हीं दोनों की कला है ; इसलिये उसे "कफधरा" कहते हैं।

पाँचवीं कला आँतों को धारण करती है ; यानी आँतड़ियों के आधार से पेट के मल के विभाग करती है, इसलिए उसे "पुरीषधरा" कला कहते हैं।

छठी कला—अग्निको धारण करती है; यानी खाद्य पेय प्रभृति चार प्रकार के आमाशय से गिरे हुए पदार्थों को पक्वाशय में ले जाकर धारण करती है, इसलिए उसे 'पित्तधरा' कहते हैं।

सातवीं कला—शुक्र यानी वीर्यको धारण करती है,इसलिए उसे "शुक्रधरा कला" कहते हैं।

---

* स्नायुसे ढका हुआ, जरायुसे विस्तृत और कफ से विस्तृत जो होता है, उसे "कलाका भाग"कहते है। धात्वाशयके बीचमें जो धातुका भीगा हुआ भाग शरीर की गरमीसे पका हुआ होता है, उसे "कला" कहते हैं।

सात आशय

१ कफाशय
२ आमाशय
३ अग्न्याशय (पित्ताशय)
४ पवनाशय (वाताशय)
५ मलाशय (पक्वाशय)
६ मूत्राशय (वस्ति)
७ रक्ताशय

नोट—स्त्रियों के तीन आशय ज़ियादा हैं—(१) गर्भाशय, (२) दो स्तन्याशय।

वक्षस्थल यानी छाती में "कफाशय" है। उस के ज़रा नीचे "आमाशय" है। नाभि के ऊपर, बाईं तरफ़, "अग्न्याशय" है। अग्नि-आशय के ऊपर तिल या "क्लोम" है, यह प्यासका स्थान है। इस तिल के नीचे "पवनाशय" है। पवनाशय के नीचे "मलाशय" है और मलाशय के नीचे "मूत्राशय" है। जीवतुल्य रक्तका स्थान—रक्ताशय, उर यानी छाती में है; इसे प्लीहा या तिल्ली कहते है; यह हृदय के बायें भागमें है। स्त्रियों के दोनों स्तन्याशयों के स्थान सभी जानते है; इनमें दूध रहता है। गर्भाशय, पित्ताशय और पक्वाशय के बीच में है।

कफाशय—जिस स्थान पर 'कफ' रहता है, उसे "कफाशय" या कफ की थैली कहते हैं।

आमाशय—जिस स्थानपर 'आम' यानी कच्चा अन्न-रस रहता है, उसे "आमाशय" या कच्चे अन्न-रस की थैली कहते हैं। चरकमें लिखा है,—नाभि से स्तनों तक जो अन्तर या दूरी है, उसको ही विद्वान् "आमाशय" कहते हैं।

पाचकाशय—आमाशय के नीचे और पक्वाशयके ऊपर जो ग्रहणी नाम्नी कला है, उसेही "पाचकाशय" कहते हैं।

अग्न्याशय—इसको ही ग्रहणी-स्थान कहते हैं। अग्न्याशयमें "पाचक अग्नि" रहती है; यह पाचक अग्निही आहारको पचाती है। इस अग्निके ऊपर तिल यानी प्यास का स्थान है, यहींसे प्यास लगती है। कोई-कोई विद्वान् "तिल" न कहकर, अग्नि-स्थानके ऊपर जलका स्थान कहते हैं और ऐसा अर्थ लगाते है कि, नीचे अग्नि है, उसके ऊपर जल है, जलके ऊपर अन्न है, और अग्निके नीचे पवन है। यही पवन अग्नि को तेज़ करती है, अग्नि जलको गरम करती है, गरम जल अपने ऊपर के अन्नको पचाता या पकाता है। नीचे का चित्र देखिये :—
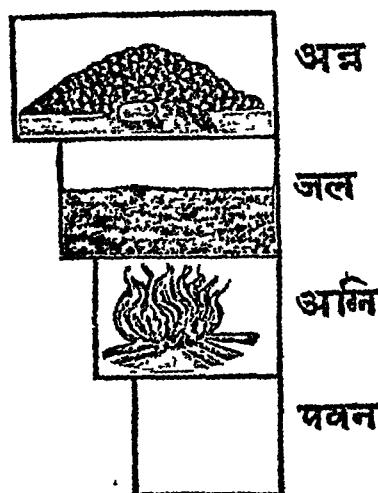
पवनाशय या वाताशय—पवनाशय पवनके रहनेके स्थान या हवाकी थैली को कहते हैं।

मलाशय—मलके रहनेके स्थान को "मलाशय" या "पक्वाशय" कहते हैं।

मूत्राशय—मूत्र या पेशाबके रहने के स्थान या पेशाब की थैली को "मूत्राशय" कहते हैं। इसे "बस्ति" भी कहते हैं।

सात धातु

रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र,—ये सात "धातु"

कहलाती हैं। ये सातों धातुएँ पित्तके तेजसे पका-पककर, क्रमसे एकसे एक, पैदा होती हैं। आहारसे रस, रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से शुक्र बनता है।

अन्नके पचने से रस बनता है और असार भाग जो रह जाता है, वही विष्ठा और मूत्र है।

रस पित्ताग्निसे पकता है। पकने से स्थूल भाग रस, सूक्ष्म भाग रक्त और मैलमें "कफ",—ये तीन तैयार होते हैं।

रक्त पकता है। पकने पर स्थूल भाग रक्त, सूक्ष्म भाग मांस और मैल में "पित्त"—ये तीन तैयार होते हैं।

मांस पकता है। पकने पर स्थूल भाग मांस, सूक्ष्म भाग मेद और मैल में "नाक कान का मैल",—ये तीन तैयार होते हैं।

मेद पकता है। पकने पर स्थूल भाग मेद, सूक्ष्म भाग अस्थि, और मैलमें "पसीना"—ये तीन तैयार होते हैं।

अस्थि पकती है। पकने पर स्थूल भाग अस्थि, सूक्ष्म भाग मज्जा और मैल में "केश रोम" प्रभृति—ये तीन तैयार होते हैं।

मज्जा पकती है। पकने पर स्थूल भाग मज्जा, सूक्ष्म भाग वीर्य्य और मैल में "नेत्रों का मैल, और मुखकी चिकनाई"—ये तीन तैयार होते हैं।

शुक्र पकता है; किन्तु जिस तरह हज़ार बार गलाने पर भी सोना मैल नहीं छोड़ता, उसी तरह वीर्य्य भी मैल नहीं छोड़ता। स्थूल भाग शुक्र और सूक्ष्म भाग "ओज" है।

इस तरह एक दूसरेसे ये सातों धातुएँ तैयार होती जाती हैं, और इनके मैल छँटते जाते हैं।

सात धातुओं के मैल

धातु	मैल
रस ...	... जीभ और नेत्रोंका जल प्रभृति।

धातु			मैल
रक्त	...	...	रंजक पित्त।
मांस	...	...	कानका मैल।
मेद	...	...	जीभ, दांत, बग़ल और लिङ्गका मैल।
अस्थि	...	...	नाखून, बाल, रोम प्रभृति।
मज्जा	...	...	आंखोंकी कीचड़, मुखकी चिकनाई।
शुक्र	...	...	मुहासे, डाढ़ी मूंछ।

नोट—उधर कफको रस धातुका मैल कह आये हैं, यहाँ जीभ और आँखों का मल लिख दिया है, इस से भ्रम होगा। जीभ का मैल कफ से सम्बन्ध रखता है; इससे रस धातु का मैल "कफ" ही समझो।

मेदका मैल उधर "पसीना" लिखा है, किन्तु यहाँ जीभ, दाँत और बग़ल तथा लिङ्गेन्द्रिय के मैल को मेद धातु का मैल लिखा है। इसका कारण यह है कि, शारङ्गधर आचार्य्य "पसीने" को उपधातुओं में मानते हैं; किन्तु अन्य आचार्य ऐसा नहीं करते।

कोई कोई विद्वान् शुक्र धातु का मैल ही नहीं मानते; मुहासे और मुख की चिकनाई को तथा नेत्र-मल को मज्जा धातु का मैल कहते हैं। इन्हीं दो तीन बातों में मतभेद है, सो इन नोटों में हमने खोल दिया है।

सात उपधातु

धातु				उपधातु
रस	...	...	...	दूध
रक्त	...	...	...	रज (मासिक खून)
मांस	...	...	...	वसा
मेद	...	...	...	पसीना
अस्थि	...	...	...	दाँत
मज्जा	...	...	...	बाल
शुक्र	...	...	...	ओज

इस तरह रस से दूध पैदा होता है और वह रस की उपधातु कहलाता है। स्त्रियोंका माहवारी खून, रक्त (खून) धातु से पैदा होता है और वह रक्तकी उपधातु कहलाता है। दूध और मासिक रक्त, ये

दोनों उपधातु तथा रोमराजि (बाल और रोएँ) ये तीनोंही औरतोंके समय पाकर पैदा होते हैं और समय आने पर, पहले दोनों, नाश भी हो जाते हैं। पचास सालसे अधिक उम्र होनेपर, मासिक धर्म नहीं होता, इसलिए गर्भ नहीं रहता ; गर्भ न रहनेसे स्तनोंमें दूध नहीं आता। इसी तरह शुद्ध मांससे वसा पैदा होती है और मांसकी उपधातु कहलाती है। स्वेद या पसीना मेद धातुकी उपधातु ; दाँत अस्थिकी उपधातु ; केश (बाल) मज्जाके उपधातु; और "ओज"§ शुक्र धातु का उपधातु है।

सात त्वचा

१ पहली त्वचा अवभासिनी है; यह सिध्मकुष्ट की जगह है।

२ दूसरी लोहिता है; यह तिलकालक या तिलकी जगह है।

३ तीसरी श्वेता है; यह चर्मदल कुष्टकी जगह है।

४ चौथी ताम्रा है; यह किलासकुष्ट की जगह है।

५ पाँचवीं वेदनी है; यह सब कोढ़ों की जगह है।

६ छठी रोहिणी है; यह गाँठ, गण्डमाला अपची प्रभृति की जगह है।

७ सातवीं स्थूला है; यह विद्रधि, अर्श, भगन्दर आदि की जगह है।

पहली त्वचामें सिध्मकुष्ट, परमकण्टक आदि रोग पैदा होते हैं; दूसरी में तिल, तीसरी में चर्मदल कोढ़; चौथीमें किलासकुष्ट (लाल कोढ़); पाँचवीं में कोढ़; छठीमें गांठ वग़ैरः और सातवींमें बवासीर विद्रधि प्रभृति रोग पैदा होते हैं।

पहली त्वचा जौके अठारहवें भागके बराबर मोटी है, दूसरी जौके सोलहवें, तीसरी जौके बारहवें, चौथी जौके आठवें, पाँचवीं जौके पाँचवें

§ ओज—सारे शरीर में रहता है। यह सोमात्मक, शीतल, चिकना और शरीर को बल-पुष्टि करनेवाला है। ओज के सम्बन्ध में धातुओं की क्षय-वृद्धि जहाँ लिखी है वहाँ कुछ अधिक लिखा है। असल में ओज सर्वप्रधान है, तेज है, सारका सार है।

भागके समान और सातवीं एक जौ-भर मोटी है। सातों चमड़ी मिलाकर दो जौ मोटी हैं। यह प्रमाण पुष्ट स्थानोंमें है ; ललाट और छोटी उँगली प्रभृतिमें नहीं है। इन चमड़ियोंके सम्बन्धमें ज्ञान रखनेसे, इन पर होने वाले कोढ़, गांठ, गंडमाला, विद्रधि, बवासीर वग़ैरः की चिकित्सा में सुभीता होता है।

तीन दोष

वात, पित्त, और कफ,—ये तीन दोष हैं। इनके सम्बन्धमें हम आगे विस्तार से लिखेंगे।

नौ सौ स्नायु

स्नायु एक प्रकार की नसे हैं। ये फैलनेवाली, गोल और अन्दर से पोली हैं। गिन्तीमें कुल नौ सौ हैं। इनमें से ६०० बड़ी हैं और हाथ पैर वग़ैर; में कमल की डण्डी के तन्तुओं की तरह फैल रही हैं। २३० मोटी और छेद वाली कोठोंमें हैं, ७० गर्दनमें हैं। ये भी पोली हैं। इन्हीं ९०० स्नायुओं से शरीर बँधा हुआ है।

दो सौ दस सन्धि

शरीर में हाथ, पैर, कन्धे, घोंटू, कोहनी प्रभृति जहाँ मिलते हैं, उन स्थानोंको "सन्धि या जोड़" कहते हैं। उन सन्धि या जोड़ोंमें कफके समान चिकना पदार्थ भरा हुआ है। सारे शरीरमें २१० सन्धि या जोड़ हैं।

दो सौ अस्थियाँ

शरीर में हड्डियाँ ही सार और आधार हैं। इनपर ही शरीररूपी ढाँचा ठहरा हुआ है। यह पाँच प्रकारकी होती हैं :—(१) कपाल, (२) रुचक (३) वलय, (४) तरुण (५) नलक।

एकसौ सात मर्म

देहमें मर्म प्रायः आत्माके आधारभूत हैं। इनमें चोट लगनेसे

प्राणी तत्काल मर जाता है। जीवका वास इनमें समझा जाता है। भावप्रकाशमें लिखा है,—शिरा, स्नायु, सन्धि, मांस और हड्डियाँ—ये सात जहाँ इकट्ठे होकर एक जगह मिलते हैं, उसी स्थान को "मर्म-स्थल" या "मर्मस्थान" कहते हैं। इन मर्मस्थानों में विशेष करके प्राण रहते हैं।

कुल मर्म १०७ हैं। मर्म पाँच प्रकार के हैं:—(१) मांस-मर्म ११ (२) शिरा-मर्म ४१ (३) स्नायु-मर्म २७ (४) अस्थि-मर्म ८ (५) सन्धि-मर्म २०।

दोनों पाँवोंमें २२, दोनों हाथोंमें २२ छाती और कोखमें १२, पीठमें १४, गर्दन और उसके ऊपर के हिस्से में ३७ कुल=१०७।

इनमें से १९ मर्म तत्काल प्राण हरते हैं; ३३ कालान्तरमें प्राण हरण करते हैं; ४४ विकलता उत्पन्न करते हैं; ८ पीड़ा करते हैं, और ३ विशल्य नाशक हैं।

तत्काल प्राणनाशक मर्म

शृङ्गाटक, अधिपति, शंख, कण्ठशिरा, गुदा, हृदय, वस्ति और नाभि—यदि इनमें चोट लग जाय, तो तत्काल प्राण नाश हो जायँ।

शृङ्गाटक—नाक, कान, आँख और जीभ—इन चारों इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाली शिराओं—नसों—का जो मस्तक में संयोग—मेल हुआ है, उसको "शृङ्गाटक" कहते हैं। उसमें चोट लगनेसे तत्काल मृत्यु होती है।

अधिपति—मस्तकके भीतर नसों की जहाँ सन्धि हुई है, उसके ऊपर रोमों का आर्त्तव है। यह भी एक मारक मर्म है।

शंख—कनपटियोंमें दो अस्थि-मर्म हैं, उन्हें "शंख" कहते हैं। ये भी मारक हैं।

कण्ठशिरा—गर्दनके ऊपर दोनों तरफ चार-चार नसे हैं। ये आठों शिरायें अथवा नसें मर्मस्थान हैं। इनमें चोट लगने से भी तत्काल मृत्यु होती है।

गुदा—वायु और विष्ठा को त्यागनेवाली स्थूल आंतों से गुदा बँधी हुई है। यह मांस-मर्म है। इसमें चोट लगने से भी तत्काल मौत होती है।

हृदय—दोनों स्तनों के बीचमें छाती है। वह सत्व, रज और तमका अधिष्ठान है। वहीं हृदय नामक शिरा-मर्म है। उसमें चोट लगने से तत्काल मृत्यु होती है।

वस्ति—पेट, क़मर, गुदा, पेड़ू और लिङ्ग इनके बीचमें वस्ति है। यह मूत्र की थैली है। इसका चमड़ा पतला है और इसमें दरवाज़ा है, जिसका मुँह नीचे की ओर है। वस्ति शिरा-मर्म है और चोट लगने से शीघ्र ही प्राण नाश करती है।

नाभि—इसे सभी जानते हैं। यह चार अँगुलका शिरा-मर्म है। यह पक्वाशय और आमाशय के बीचमें है। यह भी चोट लगने से तत्काल प्राण नाश करती है।

कालान्तर में प्राणनाशक मर्म

वक्षस्थलके मर्म, सीमन्त, तल, क्षिप्र, इन्द्रवस्ति, वृहती, पस-लियों की सन्धि, कटीकातरुण और नितम्ब—इन स्थानोंके मर्म कालान्तरमें प्राण हरण करते हैं।

वक्षस्थलके मर्मों में स्तनोंके ऊपर नीचे के चार मर्म, कन्धे की हड्डीके नीचे और पसलियोंके ऊपर के दो मर्म, छाती के दोनों ओर के दो मर्म शामिल हैं। इनमें से कोई कफसे, कोई रुधिर से और कोई वायु से भरे हुए हैं। इस कारण ये कालान्तरमें मारते हैं।

सीमन्त—सिरके सन्धि-मर्मको कहते हैं। ये उन्माद, भय, मूर्च्छा प्रभृति उत्पन्न करके मारते हैं।

तल—बिचली उँगली, हथेलियों, पाँवके तलवों के मर्मको कहते हैं। ये जल-मर्म कहलाते हैं। इनमें पीड़ा होने से कालान्तरमें प्राण निकलते हैं।

क्षिप्र—अँगूठा और उँगलियोंके मर्म हैं। ये आक्षेपक नामका वायु रोग पैदा करके कालान्तरमें मारते हैं।

इन्द्रवस्ति—दोनों बाज़ू और दोनों जाँघों में चार मांस-मर्म हैं। ये रुधिर क्षय होने से कालान्तरमें मारते हैं।

बृहती—स्तनोंकी जड़के दोनों ओरसे लेकर पीठके बाँसों पर्य्यन्त शिरा-मर्म हैं। रुधिरके बहुत निकलनेसे ये कालान्तरमें मारते हैं।

पार्श्व सन्धि—जाँघों की दोनों पसलियों की सन्धि में शिरा-मर्म हैं। ये कालान्तर में प्राण हरण करते हैं।

कटीकतरुण—त्रिक या रीढ़ के पास की तीन हड्डियों के पास अस्थिमर्म हैं। रुधिर के क्षय से पीलिया प्रभृति करके कालान्तर में प्राण नाश करते हैं।

नितम्ब—दोनों चूतड़, ये दोनों प्रसिद्ध अस्थिमर्म हैं। शरीर के नीचे का भाग सूखने से तथा दुर्बलता होने से कालान्तर में प्राण नाश करते हैं।

भयानक हानि करनेवाले अथवा तत्काल या कालान्तर में प्राण नाश करनेवाले मर्मों का हमने वर्णन कर दिया; शेष मर्म इतने भयानक नहीं। उन सबके लिखने से ग्रन्थ बढ़ने का भय है और पढ़नेवालों को आफ़त के समान भी देखेंगे। तत्काल प्राणनाशक मर्म अवश्य जानने चाहिएँ; शेष के जानने की जिन्हें ज़रूरत हो, वे भावप्रकाश प्रभृति ग्रन्थों में उन्हें देख लें।

सात सौ शिरायें।

शिरा एक प्रकार की नसें हैं। ये सन्धि के बन्धनों को बाँधनेवाली और वात आदि दोष और रस आदि धातुओं को बहानेवाली हैं।

चौबीस धमनियाँ।

धमनी नामकी २४ नाड़ियाँ हैं। ये नाभिस्थान से प्रकट हो कर

दश नीचे की ओर गई हैं; जो वात, मूत्र, मल, शुक्र, आर्त्तव आदि और अन्न, जल, रस इनको बहाती हैं। दश ऊपर को गई हैं; जो शब्द रूप, रस, गन्ध, श्वासोच्छ्वास, जँभाई, भूख, हँसना बोलना, रोना प्रभृति को बहाकर देह को धारण करती हैं। उनके सिवा तिरछी जानेवाली चार धमनियाँ और हैं। इन चारोंसे अनगिन्ती धमनियाँ पैदा हुई हैं। उन से यह शरीर जाल की तरह ढका हुआ है। उनके मुँह रोम-कूपों या शरीर के अनन्त छिद्रों से बँधे हुए हैं। उबटन, स्नान, तेल प्रभृति का वीर्य उन्हीं के द्वारा भीतर पहुँचता है। यही २४ रस-वाहिनी नाड़ी कहलाती हैं।

पाँच सौ मांसपेशियाँ।

मांसपेशियों से देह में बल होता है और उन्हीं के बल से शरीर सीधा खड़ा रहता है।

सोलह कण्डरा।

कण्डरा बड़ी स्नायुओं को कहते हैं। ये गिन्ती में सोलह हैं। इनसे ही हाथ पैर आदि अङ्गों के फैलाने और सुकेड़ने में सहायता मिलती है।

दश छिद्र।

नाक में दो, कानों में दो, लिङ्ग में एक, मुख में एक, गुदा में एक, तथा मस्तक में एक छिद्र है, जिसे ब्रह्मरंध्र कहते हैं। इस तरह दश छिद्र हैं। पुरुषों के नौ छेद खुले हुए हैं, मस्तक का छेद ढका हुआ है। स्त्रियों के गर्भ-मार्ग में एक छेद और दोनों स्तनों में दो छेद,—ये तीन ज़ियादा हैं।

प्लीहा।

हृदय के बायें भाग में प्लीहा या तिल्ली अथवा स्प्लीन (Spleen) है। यह रक्त-वाहिनी शिराओं की जड़ है और रक्त से पैदा हुई है।

फेंफड़े।

फेफड़ों को फुस्फुस भी कहते हैं। अँगरेज़ी में इन्हें "लङ्ग्ज़" (Lungs) और अरबी में "रिया" कहते हैं। ये रुधिर के भागों से प्रकट होकर हृदय-नाड़ी से लगे हुए हैं। इन्हीं से श्वास का काम होता है। श्वास से ही देह की चेष्टा होती है।

यकृत।

हृदय के दाहिने भाग में यकृत या कलेजा है। इसे ही लिवर (Liver) कहते हैं। यकृत रञ्जक पित्त और रुधिर का स्थान है।

तिल या क्लोम।

दाहिनी तरफ़, यकृत के पास, तिल या क्लोम नाम की एक जगह है। यह तिल खून के कीट से पैदा हुआ है। यह जल बहानेवाली नाड़ियों का मूल है। यहीं से प्यास लगती है।

वृक्क।

वृक्कों को कुक्षिगोलक भी कहते हैं। अँगरेज़ी में इन्हें "किडनी" (Kidney) और हिकमत में "गुर्दे" कहते हैं। ये दोनों मूत्रपिण्ड कमर के दोनों ओर रहते हैं। ये मूत्र को अलग करके मूत्राशय या वस्ति में पहुँचाते हैं।

वृषण।

वृषण आँड या फोतों को कहते हैं। ये मांस, कफ और मेद के सारांश से पैदा होते हैं, और वीर्य-वाहिनी नाड़ियों के आधार हैं, अतएव पुरुषार्थ-दाता हैं।

हृदय।

कमल की कली के समान, किसी क़दर खिला हुआ, नीचे को

तरफ़ मुँह किये हुए "हृदय" है। यह चेतन्यता का स्थान और ओज यानी सब धातुओं का सार है। यों तो सारा शरीर ही चेतना का स्थान है, पर हृदय या दिल अथवा "हार्ट" (Heart) विशेष करके चेतना का मुख्य स्थान है।

शिरा और धमनियों का काम।

नाभिस्थान में रहनेवाली शिरा और धमनी, सारे शरीर में व्याप्त होकर, रात-दिन, वायु के संयोग से, रसादि धातुओं को शरीर में ले जाकर शरीर का पोषण करती हैं। ये तरुणों को पुष्ट करती हैं और वृद्धों का पालन करती हैं।
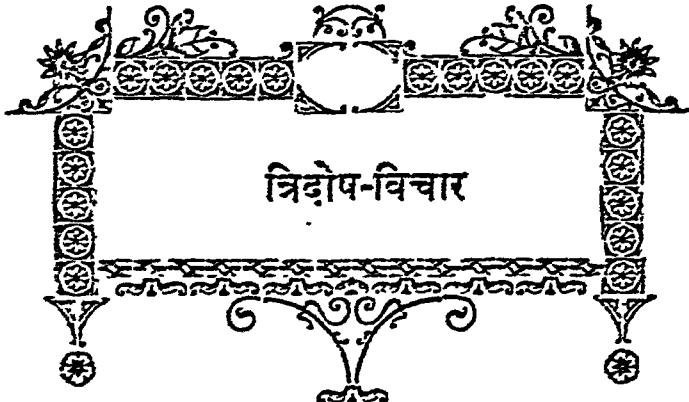
त्रिदोष-विचार

तीन दोष

वात, पित्त और कफ—इन तीनों को "दोष" कहते हैं और "धातु" भी कहते हैं। धातु और मल इन तीनों से दूषित होते हैं, इसलिए इनको "दोष" कहते हैं और ये देह को धारण करते हैं, इसलिए इनको "धातु" कहते हैं।

वायु

वायु अन्य दोषों और रस, रक्त, मांस, मेद आदि धातुओं को दूसरी जगह पहुँचानेवाला, जल्दी चलनेवाला, रजोगुणयुक्त, सूक्ष्म, हलका, रूखा और चञ्चल है। श्वास का लेना और छोड़ना, इसीसे होता है। वायु—धातु और इन्द्रियों की चतुराई से रक्षा करता है; हृदय, इन्द्रियों और चित्त को धारण करता है। शीतल है, नर्म और योगवाही है; यानी जिसके साथ मिलता है, उसीकेसे गुण प्रकाश करता है। सूरज के साथ मिलता है तो दाह पैदा करता है; और चन्द्रमा के साथ मिलता है तो शीतलता करता है; पित्त के साथ मिलकर पित्त के से काम करता है और कफके साथ मिल कर कफकेसे काम करता है।

सब दोषों में वायुही प्रधान है। बिना वायु के प्राणी क्षण-भर भी

जीवित नहीं रह सकते। देह-धारियों के लिए बाहरी और भीतरी दोनों वायुओं की ज़रूरत है। बाहरी वायु प्राणियों को जीवित और चैतन्य रखता है। भीतरी वायु शरीर के भीतर काम करता रहता है। कहीं रस को, कहीं रक्त को, कहीं वीर्य को, कहीं भोजन को पहुँचाता है। यही शरीर में सफ़ाई करता है और मल मूत्र को निकाल कर बाहर फेंकता है। इसके अनेक काम हैं। जितने दोष और धातु हैं सब लँगड़े हैं; वायु उन्हें जहाँ ले जाता है वहीं चले जाते हैं। जिस तरह वायु बादलों को इधरसे उधर और उधरसे इधर ले जाता और लाता है, उसी तरह शरीर के भीतर भी वायु करता है। कहा है:—

पित्त पंगु कफ:पंगु, पंगवो मलधातवः ।
वायुना यत्र नीयन्ते, तत्रगच्छन्ति मेघवत् ॥

पित्त लँगड़ा है, कफ लँगड़ा है और सब मल तथा धातु लँगड़े हैं। वायु इन्हें जहाँ ले जाता है वहीं ये बादलोंकी तरह चले जाते हैं। हारीत-संहिता में लिखा है:—

रक्षणीयं गजे पित्तं, श्लेष्मा वाजिषु सर्वदा ।
पवनोऽयं मनुष्याणां, प्रायो रक्षेत् सर्वदा ॥

वैद्य को सदा हाथी में पित्त की, घोड़े में कफ की और मनुष्यों में सदा "वायु" की रक्षा करनी चाहिये।

वायु के रहने के स्थान

कण्ठ, हृदय, कोठे की आग, मलाशय, और सारा शरीर—ये पाँच स्थान वायु के रहने के हैं। कण्ठ में उदानवायु, हृदय में प्राण वायु, कोठे की अग्नि के नीचे नाभि में समानवायु, मलाशयमें अपान-वायु और सारे शरीर में व्यानवायु रहता है।

पाँचों वायुओं के काम

उदानवायु—यह गलेमें घूमती है, इसीकी शक्तिसे यह प्राणी बोलता और गीत आदि गाता है। जब यह वायु कुपित होती है, तब कण्ठ के रोग करती है।

प्राणवायु—यह वायु प्राणों को धारण करती है और सदैव मुँह में चलती है, यह भोजनके अन्नको भीतर प्रवेश करती है और प्राणों की रक्षक है। यह कुपित होकर हिचकी, श्वास आदि रोग पैदा करती है।

समानवायु—यह वायु आमाशय और पक्वाशय में विचरती और जठराग्नि से मिलकर अन्न को पचाती और अन्न से उत्पन्न हुए मल-मूत्र आदि को अलग-अलग करती है। यह कुपित होकर मन्दाग्नि अतिसार, वायुगोला प्रभृति रोगों को पैदा करती है।

अपानवायु—यह वायु पक्वाशय में रहती है। मल, मूत्र, शुक्र, गर्भ, और आर्तव इनको निकाल कर बाहर फेंकती है। यह वायु कुपित होकर मूत्राशय और गुदा के रोग करती है एवं शुक्रदोष, प्रमेह, तथा व्यान और अपान के कोप से होने वाले रोग पैदा करती है।

व्यानवायु—यह वायु सारे शरीर में विचरती है। यह रस, पसीना और खून को बहाती है। जाना, नीचे को डालना, ऊपर को फेंकना, आँख मीचना और आँख खोलना—ये क्रियाएँ इसी के अधीन हैं। यह जब कुपित होती है, सब शरीर के रोगों को प्रकट करती है।

जब ये पाँचों वायु एक साथ कुपित हो जाती हैं; तब निस्सन्देह शरीर का नाश कर देती हैं, यानी प्राणी को मार डालती हैं।

वायु-कोप के लक्षण

अङ्ग-भेद, अनिवार्य्य तृषा, मर्दनकीसी पीड़ा, कम्प, सूई चुभाने

की सी पीड़ा, रस्सी से बाँधने की सी पीड़ा, मल की कठोरता, लाल रङ्ग हो जाना, कसैला स्वाद, साँस न आना, शरीर सूखना, शूल, शरीर का सो जाना, शरीरका सिकुड़ना, शरीर का रह जाना प्रभृति लक्षण चरकके सूत्रस्थानमें वायु-कोपके लिखे हैं। मामूली तौर पर वायुका कोप होनेसे शरीरमें थकानसी मालूम होने लगती है, दिशा पेशाब कम होता है, आँखों में नशा सा जान पड़ता है, नींद नहीं आती, पेट फूल जाता है, जोड़ों में दर्द होता है, पीठका बाँसा दुखने लगता है, सिर में दर्द होता है; कमर, छाती और कनपटी में वेदना होती है ।

वायु-कोप के कारण

चरक में लिखा है—रूखे, हलके और शीतल पदार्थों के सेवन, ज़ियादा मिहनत, ज़ियादा वमन होना, ज़ियादा जुलाब होना, आस्थापन का अतियोग; मल मूत्र, छींक, जँभाई आदि वेगों का रोकना, उपवास, चोट लगना, अति स्त्री-सम्भोग करना, घबराहट, चिन्ता-फ़िक्र की अधिकता, खून का निकलना, रातमें जागना, शरीर को बेक़ायदे टेढ़ा-तिर्छा करना—ये सब कारण वायु-कोप के हैं ।

हारीत में लिखा है—कसैले और शीतल पदार्थों का सेवन, बहुत खाना, बहुत चलना, अधिक बोलना, अतिभय करना; रूखी, कड़वी, और चरपरी चीज़ों को ज़ियादा सेवन करना ; ऊँट, घोड़ा, हाथी, रथ, पालकी प्रभृतिकी अधिक सवारी करना; शीतल दिनमें, बादलों से घिरे दिनमें और दोपहरके बाद स्नान करना; मसूर, मटर, मोंठ, चौला, ज्वार, जौ मोटे चाँवल, काला अन्न, शीतल अन्न, कांगनी, लाल अन्न, गुड़ियानी का पकाया भात, बथुआ, प्याज़, गाजर प्रभृति अन्न और शाकों का अधिक खाना—ये सब यदि अधिकता से सेवन किये जायँ, तो वायु को कुपित करते हैं । मनुष्य को वायु के कोप

से सदा बचना परमावश्यक है; अतः इन सब कारणों से बचना चाहिए; यानी इनको अधिकता से भूल कर भी न करना चाहिए। विशेष कर वातप्रकृति वालोंको रूखे, कड़वे, कसैले, चरपरे पदार्थों, बासी भोजन, शीतल भात, व्रत-उपवास, अति स्त्रीप्रसङ्ग, अति तैरना आदि से बचना भला है। मौसम बरसात, और जब किसी भी मौसम में बादल हो रहे हों, वायु का कोप होता है; क्योंकि ये वायु-कोप के समय हैं। इसलिए ऐसे समय में कम नहाना, गर्म कपड़े पहनना और गर्म खाना अच्छा है।

वायु की शान्तिके उपाय

वैद्य को मीठे, खट्टे, खारी, चिकने और गर्म द्रव्यों द्वारा वायु-रोग की चिकित्सा करनी चाहिए। पसीना दिलाना, तेल की मालिश कराना, कम हवा आती हो ऐसे स्थान में सोना, भारी भोजन करना, ग़ोता मार के नहाना, सिरमें तेल लगाना, गुनगुना जल, गेहूँ, मूँग घी, नवीन उर्द, लहसन, मुनक्का, मीठा अनार, पके आम, आँवले, कैथ, गोमूत्र, हरड़, पका ताड़फल, मिश्री, चीनी, गाय का दूध, सेंधा नोन प्रभृति वायु-कोप को शान्त करनेवाले हैं।

वायु-क्षय के लक्षण

मन्द चेष्टा, शरीर में शिथिलता, उदासी थोड़ा बोलना, थोड़ी प्रसन्नता, स्मरण-शक्ति का कम हो जाना,—ये लक्षण उस समय होते हैं, जब मनुष्य के शरीर में वायु कम हो जाता है। यह सुश्रुत की बात है। चरक के सूत्रस्थान में लिखा है—वायु के क्षीण होने से कुपित पित्त यदि कफकी चाल को रोक दे; तो तन्द्रा, भारीपन और ज्वर होता है। एक जगह लिखा है:—

प्रलापो गुरुता तन्द्रा, निद्रा स्याच्च मरुत्क्षये।
ष्ठीवनं पित्तकफयोर्नखादीनां च पातनम्॥

वायु के क्षीण होने पर प्रलाप, भारीपन, तन्द्रा, निद्रा, थूक में कफ और पित्त का आना और नाखून गिरना ये लक्षण होते हैं।

वायु की वृद्धिके लक्षण

जिस तरह वायुकी कमी होती है; उसी तरह वृद्धि भी होती है। चमड़े की कठोरता, दुबलापन, शरीर का फड़कना, गर्मी की इच्छा, नींद का न आना, कमज़ोरी, मलका सूख जाना और मल का कम होना,—ये लक्षण वायु-वृद्धि के हैं।

वायुका समय

वृद्धावस्था में वायुका ज़ोर होता है; इसलिए इस अवस्था में प्रायः वायु का कोप होता है। जो सावधान रहते हैं, वायु कोपकारी आहार-विहारों से बचते हैं और वायु-शमनकारी आहार विहारों का सेवन करते हैं, वे सुखी रहते हैं।

दिन का अन्त और रात का अन्त; यानी दिन के २ बजे बाद और रात के २ बजे बाद वायु का समय होता है। इसी तरह भोजन पच चुकने के बाद भी वायु का समय होता है।

बरसात वायुकोप का प्रधान समय है। हेमन्त और शिशिर ऋतु में भी वायु का कोप होता है और साथ ही शरीर में रूखापन होता है।

हारीत ने लिखा है,—कातिक, अगहन, माघ, आषाढ़ तथा हेमन्त-ऋतु और छहों ऋतुओं की सन्धि* के समय वायु सविष यानी ज़हरीला होता है।

पित्त का स्वरूप

पित्त एक तरह का पतला द्रव्य है। यह गरम है। आम से मिले हुए पित्तका रङ्ग नीला और आम से अलग पित्तका रङ्ग पीला होता

* एक ऋतु का अन्त हो और दूसरी का आरम्भ हो; उसीको "ऋतु-सन्धि" कहते हैं।

है। यह दस्तावर, चरपरा, हलका, चिकना और तीक्ष्ण होता है। पाक के समय इसका स्वाद खट्टा हो जाता है।

पित्त के पाँच प्रकार

वायु की तरह पित्त भी नाम, स्थान और क्रियाओं के भेद से पाँच तरह का होता है। (१) पाचक, (२) रञ्जक, (३) साधक, (४) आलोचक, (५) भ्राजक।

पित्त के रहने के स्थान

अग्न्याशय, यकृत, प्लीहा, हृदय, दोनों नेत्र, सम्पूर्ण देह, और त्वचा (चमड़ा) में पित्त निवास करता है। अग्न्याशय में पाचक पित्त, यकृत और तिल्ली में रञ्जक पित्त, हृदय में साधक पित्त, दोनों नेत्रों में आलोचक पित्त, सारे शरीर और चमड़े में भ्राजक पित्त रहता है।

पाँचों पित्तों के काम

पाचक पित्त—यह आमाशय और पक्वाशय में रहकर, छै प्रकार के आहारों को पचाता और शेषाग्नि के बल को बढ़ाता है तथा रस, मूत्र, मल प्रभृति को रोज़ अलग-अलग करता है। मुख्यता से वहीं स्थिति हुआ अर्थात् आमाशय और पक्वाशय में रह कर ही अपनी शक्ति से शरीर के शेष यकृत, त्वचा, नेत्र आदि स्थानों और समस्त देह का पोषण करता है। इसी पित्त को "जठराग्नि" अथवा "पाचक अग्नि" कहते हैं। यह अग्नि काँचके पात्रमें दीपकके समान है। यही अनेक प्रकार के व्यञ्जनों को पचाती है। बड़े शरीरवाले जीवों में यह अग्नि जौके प्रमाण, छोटे शरीर वालोंमें तिल के प्रमाण और छोटे-छोटे कीट पतङ्गों में बाल के बराबर होती है।

रञ्जक पित्त—इसका काम रस का रक्त यानी खून बनाना है।

साधकपित्त—बुद्धि, धृति यानी मेधा और स्मरण-शक्तिको बढ़ाता

है। सुश्रुत में लिखा है, इसकी साधक नाम अग्नि संज्ञा है। यह वाञ्छित मनोरथ का साधन करनेवाला है।

आलोचक पित्त—इसका काम रूप ग्रहण करना है। इसी के कारण से प्राणियों को दीखता है।

भ्राजक पित्त—यह पित्त कान्ति करता है और लेप, तेल की मालिश और स्नान आदि को पचाता यानी सुखाता है।

पित्त क्षयके लक्षण

जिस तरह वायुकी घटती-बढ़ती होती है, उसी तरह पित्त की भी घटती-बढ़ती होती है। जब पित्त कम हो जाता है, तब अग्निमन्द, शरीर की गरमी कम और शरीर की रौनक मारी जाती है।

पित्तवृद्धिके लक्षण

जब पित्त बढ़ जाता है, तब शरीर पीला हो जाता है ; सन्ताप होता है ; शीतल चीज़ोंकी इच्छा होती है यानी सर्दी की चाहना होती है; नींद कम आती है, बेहोशी होती है, बलकी हानि होती है, इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती हैं, पेशाब ज़र्द होता है, और आँखें पीली हो जाती हैं।

पित्तकोपके लक्षण

आग से जलेके समान जलनसी हो, ऐसा मालूम हो मानो धक-धक आग जल रही है, धुआँसा निकलता मालूम हो, खट्टी डकारें आवें, अन्तर्दाह हो, गरमी बहुत लगे, अत्यन्त पसीने आवें, शरीरमें बदबू आवे, अंग और अवयव फटें, चमड़ा जले, लाल-लाल चकत्ते हों, लाल-लाल फोड़े हों, बग़लमें कखलाई हो, मुँहमें कड़वापन, अधिक प्यास, आँखोंके सामने अँधेरा, हरे या हल्दी के रङ्ग का चमड़ा हो जाना, मल मूत्र और नेत्र हरे या पीले होजायँ, दस्तका पतला होना, आनतान बकना इत्यादि लक्षण पित्तके कुपित होनेसे होते हैं।

पित्तकोपके कारण

सुश्रुत में लिखा है—क्रोध, शोक, भय, परिश्रम, उपवास, जले हुए पदार्थ, मैथुन, दौड़ना, चरपरे, खट्टे और नमकीन पदार्थ, गरम, हलके और दाह करनेवाले पदार्थ, तिल, तेल, कुलथी, सरसों, अलसी, हरी तरकारी, गोह मछली, बकरी और भेड़ का मांस, खट्टा दही, खट्टी छाछ, दही का तोड़, कांजी, हर तरह की शराब, खट्टे फल और धूप, आदि से पित्त का कोप होता है।

हारीतसंहिता में लिखा है—बहुत गर्म तथा रूखे चरपरे और खट्टे पदार्थों का सेवन, दाह में क्रोध, तथा मदिरा का सेवन, गरमी में क्रोध या पसीनोंमें सम्भोग करना—ये पित्त-प्रकोपके कारण हैं। कुलथी, अरहर का यूष, मूली, सहँजना, कचूर, सरसों, राई का शाक खाना; वर्षाऋतु में रातके समय जागना, युद्ध करना; परिश्रम करना,—इन कारणों से शरद् ऋतुमें पित्त कुपित होता है।

पित्तकोप का समय।

गर्मी का समय, शरद्ऋतु, मध्याह्नकाल, आधीरात और भोजन पचते समय पित्त विशेषकर कुपित होता है। जवानीमें पित्तका ज़ोर रहता है।

पित्तकी शान्तिके उपाय।

वैद्यको पित्तको मधुर, कड़वे, कसैले और शीतल द्रव्यों, पित्त-नाशक स्नेह (घी तेल), जुलाब, प्रलेपन, अभ्यंग और अवगाहनसे, मात्रा और काल का विचार करके, चिकित्सा करनी चाहिये। पित्तकी जितनी चिकित्सा हैं उनमें विरेचन यानी जुलाब सर्वोपरि माना जाता है; क्योंकि विरेचन-औषधि आमाशयमें घुसकर विकारकर्त्ता पित्त के मूलको पूर्णरूपसे छेदन कर देती है। (चरक)

उपरोक्त चिकित्सा-विधिके सिवा; नीचे लिखे आहार-विहार

पित्तकी शान्तिमें अच्छे हैं—मुनक्का, केला, आँवला, अनार, परवल, छुहारा, ककड़ी, खीरा, करेला, कुम्हड़ा, ताड़के फल, पुराने चाँवल, गेहूँ, मिस्री, चीनी, घी, दूध, मक्खन, अरहर, जौ, चना, मूँग, धानकी खील, मसूर तथा कुटकी, निशोथ, पित्तपापड़ा, त्रिफला, शतावरी, चन्दन एवं सुन्दर बाग़, केले और कमलके पत्तों की सेज, सफ़ेद चन्दनका लेप, मित्र-मिलन, मीठी बातें, मनोहर गाना, नाच, शीतल मन्द पवन, फव्वारे, चाँदनी, छिड़काव् प्रभृति शीतल आहार-विहार पित्त-विकारवालोंके लिए पथ्य हैं।

कफका स्वरूप।

सफेद, भारी, चिकना, चिलमिलासा, शीतल, तमोगुण-युक्त, और स्वादु (मधुर) है ; विदग्ध होनेसे खारी हो जाता है। कफभी नाम, स्थान और कर्म-भेदोंसे पाँच प्रकार का होता है।

कफके पाँच प्रकार।

कफ पाँच तरह का होता है :—(१) क्लेदन, (२) अवलम्बन, (३) रसन, (४) स्नेहन, (५) श्लेषण।

कफके रहनके स्थान।

आमाशय, हृदय, कण्ठ, शिर, और सन्धि (शरीरके जोड़)—इनमें पाँचों प्रकारके कफ रहते हैं। आमाशयमें क्लेदन, हृदयमें अवलम्बन, कण्ठमें रसन, शिरमें स्नेहन, और सन्धियोंमें श्लेषण कफ रहता है।

कफ के काम।

क्लेदन कफ—अन्नको गीला करता है, और अपनी शक्तिसे कफ के दूसरे स्थानों को भी जल-कर्म द्वारा सहायता देता है। मतलब यह है—क्लेदन कफ अन्न को भिगोता है, इसलिये इकट्ठा हुआ अन्न अलग-अलग हो जाता है। कफ हृदय आदि अन्य स्थानोंमें जाकर,

उन-उन स्थानोंमें हृदय का अवलम्बन करना, त्रिक-संधारण, रस ग्रहण करना, सम्पूर्ण इन्द्रियोंका तृप्त करना और सन्धियोंको जोड़ना इत्यादि में जलकर्मोंसे सहायता करता है।

अवलम्बन कफ—रसयुक्त वीर्यसे हृदयके भाग का अवलम्बन, और त्रिक * नामक हड्डी को संधारण करता है।

रसन-कफ—रसना और रसन-कफ—ये दोनों सौम्यगुण-युक्त हैं। दोनों पास रहते हैं। इस कारण रसना—जीभ और रसन † कफ—ये दोनों रसको जानते हैं।

स्नेहन कफ—यह चिकनाई देकर सारी इन्द्रियोंको तृप्त करता है।

श्लेषण कफ—सब सन्धियों यानी जोड़ों को अच्छी तरह जोड़ता है।

कफ कोपके लक्षण।

विना खाये ही पेट भरासा जान पड़े, ऊँघ और नींद अधिक आवे, देह भारी रहे, आलस्य मालूम हो, मुँहका स्वाद मीठा रहे, मुँहमें से पानी गिरे, वारम्बार कफ थूके, डकार आवें, पाखाना अधिक हो, गला कफसे लिहसासा मालूम हो, मन्दाग्नि हो, शरीर सफेद हो, मलमूत्र और नेत्र सफेद रङ्गके हों, जाड़ासा लगे तथा दस्त गाढ़ा हो और ढेर हो—ये लक्षण कफ-कोप के हैं।

कफक्षयके लक्षण।

शरीर में कफ की कमी होने पर शरीरमें रूखापन हो, भीतर जलन हो, सिर सूना हो, शरीर की सन्धियाँ ढीली हो जायँ, प्यास लगे, शरीर दुर्बल हो, नींद न आवे—ऐसे लक्षण होते हैं।

कफवृद्धिके लक्षण।

शरीरमें कफ बढ़ने पर मल, मूत्र, नेत्र और सारे शरीर का

* त्रिकहड्डी—मस्तक और दोनों भुजाओंकी सन्धि को "त्रिक" कहते हैं।

† रसनकफ—कण्ठमें रहता है।

सफेद होना, जाड़ा लगना, भारीपन, अवसाद, तन्द्रा, निद्रा, सन्धियों का ढीलापन प्रभृति लक्षण होते हैं।

कफके कोपका समय।

कफ शीतल पदार्थोंसे शीतकालमें—ख़ासकर वसन्तमें, दिनके पहले भाग और रातके पहले भाग यानी सवेरे और रातके आरम्भमें, तथा भोजन करते ही कुपित होता है। बालकपन भी कफ का समय है यानी बचपनमें कफका ज़ोर रहता है।

कफकोपके कारण।

दिनमें सोना, बिना मिहनत किये हर समय बैठे रहना, आलस्य करना; मीठा, खट्टा और नमकीन रस अधिक सेवन करना, शीतल, चिकने, भारी और अभिष्यन्दी* पदार्थोंका सेवन, चाँवल, उड़द, गेहूँ, तिल, मिट्टीके पदार्थ, दही, दूध, तिल और चाँवलोंकी खिचड़ी, खीर, ईखके पदार्थ, जलजीवों का मांस, चरबी, कमलकी डण्डी, कसेरू, सिंघाड़े, अमरूद आदि मीठे फल, ककड़ी प्रभृति लताओं से पैदा होनेवाले फल खाना, एक भोजन बिना पचे दूसरा भोजन करना, इत्यादि कफ-कोपके कारण हैं। (सुश्रुत)

हारीतसंहितामें लिखा है—रातको जागना, दिनमें अधिक सोना, शीतल जलका सेवन, शीतल देशका निवास, दूध, नई व्याई गायका दूध, ईख, तिल, गाजर, कन्दोंके साग, मछलियों का सदा खाना, दही खाना, उड़द खाना, कफकारी और भारी पदार्थोंका सेवन, घी तेल आदि चिकने पदार्थोंका सेवन—वसन्त ऋतुमें, दुष्ट कफको कुपित करता है। दिनके अन्तमें, प्रभात समय, रातके अन्तमें, खाये हुए अन्नके [illegible]नेके पहले, कफ का कोप होता है। अगर ऐसे समयमें कफका कोप [illegible], तो उसे कष्टसाध्य समझो। शीतल देश में, शीतल समय में, रातके अन्त

* जो पदार्थ अपने गाढ़ेपन और भारीपनके कारण रसकी बहानेवाली नाड़ियोंको रोकदे।

और भोजन के जीर्ण न होनेमें कफ का कोप होता है, यह बुद्धिमानोंने कहा है।

कफ की शान्तिके उपाय

चरकमें लिखा है—"वैद्यको चरपरे, कसैले, तीक्ष्ण, गरम, और रूखे पदार्थों से कफ की चिकित्सा करनी चाहिये। कफनाशक पसीना, वमन, शिरोविरेचन (सिर का जुलाब) कसरत, मिहनत प्रभृति क्रिया द्वारा, काल और मात्रा का विचार करके, कफ का इलाज करना चाहिये। कफनाशक जितनी चिकित्सा हैं, उनमें "वमन" यानी क़य कराना सबसे अच्छा समझा गया है ; क्योंकि वमनकारक औषधि पहले ही आमाशयमें घुसकर, विकार करनेवाले कफकी जड़ को खींच लाती है। जब कफकी जड़ ही नष्ट हो जायगी, तब कफके विकार भी शान्त हो जायँगे।" और स्थानोंमें लिखा है—अधिक परिश्रम, गरम दूध, स्त्री-प्रसङ्ग, गरम कपड़े पहनना, गरम पदार्थों का अधिक खाना, हाथी घोड़ेकी सवारी, कम जल पीना, आँखोंमें अंजन लगाना, नस्य सूँघना, वमन करना, शरीरमें तेल और उबटन लगाना, ज़ियादा देर तक दाँतुन और कुल्ले करना, जल मिलाकर शहद पीना, गरम जल पीना, गरम घरमें रहना, त्रिफलेका सेवन करना; साँठी चाँवल, चना, मूँग, लहसुन, प्याज़, बैंगन, नीम, निशोथ और कुटकी प्रभृति आहार-विहार कफके कुपित होने पर पथ्य हैं।

दोष और धातुओंसे लाभ और उनकी क्षय-वृद्धि ।

शरीर के मूल ।

वात, पित्त और कफ—ये तीन दोष ; रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र—ये सात धातु और ग्यारहवाँ मल, ये सब शरीर के मूल हैं ।

दोषों से लाभ ।

वात, पित्त और कफ,—ये तीनों, पाँच प्रकारोंमें विभक्त होकर, शरीर का धारण करना, भोजन पचाना, सन्धियों को जोड़ना प्रभृति कर्म करते हैं । दोषोंके सम्बन्धमें हम पीछे विस्तार-पूर्व्वक लिख आये हैं, वहींसे जानकारी हासिल करनी चाहिये ।

धातुओं से लाभ ।

रस तृप्ति और रुधिर की पुष्टि करता है। रुधिर वर्णको श्रेष्ठ करता और मांस की पुष्टि करता तथा जिलाता है। मांस शरीर को पुष्ट करता और मेदका पोषण करता है । मेद यानी चरबी चिकनाहट करती पसीना लाती, दृढ़ता करती और हड्डियों का पोषण करती है। हड्डियों देह को धारण करतीं और मज्जा की पुष्टि करती हैं। मज्जा प्रसन्नता, चिकनाहट, बल, और वीर्य्य पैदा करती तथा वीर्य्य की पुष्टि और अस्थियों का पूरण करती है । वीर्य्य—शुक्र धीरता करता, स्खलित

होता, आनन्द देता, शरीर में बल करता और सन्तान पैदा करनेके लिये मैथुन में हर्ष उत्पन्न करता है ।

मल-मूत्रादि से लाभ ।

मल—रुकावट करता, अपानवायु और पक्काशय की अग्नि को धारण करता है । मूत्र—वस्ती यानी पेशाबकी थैली को भरता और गीली करता है तथा पसीने लाता और चमड़ेको गीला तथा नर्म करता है। स्त्रियों का आर्त्तव—खूनके जैसा होता है और गर्भ रखता है । दूध—कुचों को मोटी करता और सन्तान को जीवन-रक्षा करता है। इन सबकी अच्छी तरह रक्षा करनी चाहिये । ठीक-ठीक रक्षा न करनेसे, ये सब क्षीणता अथवा वृद्धिको प्राप्त होते हैं; अर्थात् घट-बढ़ जाते हैं । उस वक्त मनुष्य को अनेक उपद्रव कष्ट देते हैं ।

दोष और धातुओंके क्षय होनेके कारण ।

अत्यन्त संशोधन—वमन विरेचन आदि करने, मूत्र मल आदि वेगों को रोकने, संयोग-विरुद्ध भोजन करने, मन को सन्ताप होने, सख़्त मिहनत या बहुत ही कसरत-कुश्ती करने, बहुत लंघन और अति मैथुन करने प्रभृति कारणोंसे वातादिक दोष और रसरक्त आदि धातुओं तथा मल-समूह और ओज-धातु का क्षय होता है ।

वायु क्षयके लक्षण

वायु के क्षय होनेसे चेष्टा मन्द हो जाती है, शरीर ढीलासा हो जाता है, चित्त उदास रहता है, कामकी जी नहीं चाहता, बहुत बोलना और बहुत हँसना अच्छा नहीं लगता । प्राणी थोड़ा बोलता है, थोड़ा हर्ष करता है, मूढ़-संज्ञा हो जाती है, कोई बात याद नहीं रहती ।

पितक्षयके लक्षण

पित्तका क्षय होने पर स्वल्प गरमी और मन्दाग्नि होती है और कान्ति घट जाती है ।

कफक्षयके लक्षण।

कफका क्षय होनेपर रूखापन, अन्तर्दाह, आमाशय तथा दूसरे आशयों और शिरमें सूनापन, जोड़ोंमें ढीलापन, प्यास, निर्बलता, और निद्रा-नाश यानी नींद न आना,—ये लक्षण होते हैं।

रसक्षयके लक्षण

रसका क्षय होनेपर हृदयमें पीड़ा, कम्प, शून्यता और प्यास ये लक्षण होते हैं। चरकमें लिखा है,—हृदय बिलोया सा हो जाता है, ज़ोर की आवाज़ अच्छी नहीं लगती, कलेजा धक-धक करता है, और सूना सा मालूम होता है, ज़रा भी मिहनत करनेसे आँखोंके आगे अँधेरा आजाता है।

रुधिरक्षयके लक्षण

रुधिर का क्षय होनेपर चमड़ा खरदरासा होजाता है, खटाई खाने को मन चलता है, ठण्ड की इच्छा होती है, नसोंमें ढीलापन होता है।

मांसक्षयके लक्षण

मांसका क्षय होनेपर कमर, गाल, होठ, लिङ्ग, जांघ, छाती, कांख, पिण्डली, पेट और गलेमें खुश्की, रूखापन और दर्द होता है; अङ्ग-प्रत्यङ्ग में थकान और धमनी नाड़ियोंमें शिथिलता होती है।

मेदक्षयके लक्षण

मेद का क्षय होने पर तिल्ली का बढ़ना, जोड़ोंमें सूनापन और रूखापन होता है। चरकमें लिखा है—सन्धियोंका फटना, दोनों नेत्रों में ग्लानि, थकान और पेट की कृशता होती है। वाग्भट्टने,—कमर का सोना, तिल्ली का बढ़ना और अङ्गोंकी कृशता लिखी है।

अस्थिक्षयके लक्षण

हड्डियों का क्षय होने पर हड्डियोंमें दर्द, नाखून और दाँतों का टूटना और रूखापन होता है। वाग्भट्टने लिखा है—हड्डियोंमें चबके चलते हैं, दाँत, बाल और नाखून आदि गिरते हैं। चरकने लिखाहै—बिना अवस्थाके केश, लोम, नाखून, मूँछ, हड्डी और दाँत गिरते हैं; भ्रम और जोड़ोंमें ढीलापन होता है।

मज्जाक्षयके लक्षण

मज्जा का क्षय होने पर वीर्यकी कमी, जोड़ों में दर्द और हाड़ों में पीड़ा तथा सूनापन होता है। चरकमें लिखा है—हड्डियाँ गिरने लगती हैं और दुर्बल तथा हलकी हो जाती हैं। मज्जा क्षयवालेको सदा वायुका रोग बना रहता है। वाग्भट्टने भ्रम और अँधेरे का होना अधिक लिखा है।

शुक्रक्षयके लक्षण

शुक्र यानी वीर्य के क्षय होनेसे लिङ्ग और फोतोंमें दर्दसा, स्त्री-प्रसङ्ग की सामर्थ्य का न होना, कभी देरसे वीर्य निकलना, सुर्खी-माइल थोड़े वीर्य का निकलना—ये लक्षण होते हैं। चरकमें लिखा है—शुक्र क्षीण होनेसे कमज़ोरी, मुँह सूखना, पीलियासा, अवसाद, ग्लानि, नपुंसकता और मैथुन के अन्तमें वीर्य का न निकलना,—ये लक्षण होते हैं।

विष्ठा या मलक्षयके लक्षण

मलकी क्षीणता होनेसे हृदय और पसवाड़ों में दर्द होता है; आवाज़ करता हुआ वायु ऊपर को जाता है या कोखोंमें घूमता है। चरकमें लिखा है—वायु आँतों को पीड़ित करता है, रोगी रूखा हो जाता है, वायु कोखको ऊँची करके तिरछेपनसे ऊपर-नीचे घूमता है।

मूत्रक्षयके लक्षण

मूत्र-क्षय होने पर वस्तिस्थान यानी पेड़ू या पेशाबकी थैलीमें दर्द या जलन होती है और पेशाब थोड़ा होता है। चरकने लिखा है—मूत्रकृच्छ्र यानी पेशाब का जलकर थोड़ा-थोड़ा उतरना, मूत्र का रङ्ग ख़राब होना, प्यास का लगना, मुँह सूखना—ये लक्षण होते है तथा मलमार्ग मल-हीन होनेके कारण सूने हलके, और सूखे से मालूम होते हैं।

स्वेदक्षयके लक्षण

स्वेद की क्षीणता यानी पसीनों की कमी होनेपर, रोमों की जड़ कड़ी हो जाती है, चमड़ेमें खुश्की आजाती है, छूनेसे मालूम नहीं होता कि कोई छूता है और पसीने नहीं आते।

आर्त्तवक्षयके लक्षण

स्त्रियों का आर्त्तव (मासिक खून) क्षीण होनेसे, समय पर रजोदर्शन नहीं होता, अथवा देर-अबेर से होता है ; खून कम गिरता है और योनिमें पीड़ा होती है।

दुग्धक्षयके लक्षण

दूध के क्षय होनेसे स्तन मुर्झा जाते हैं और उनमें दूध नहीं आता।

गर्भक्षणिके लक्षण

गर्भके क्षीण होनेपर गर्भ नहीं फिरता, या कम फिरता है और कूख ऊँची नहीं होती।

ओज

सुश्रुतमें लिखा है—रस, रक्त, मांस, मेद अस्थि मज्जा और शुक्र,—

ये सात धातु हैं—इन सातों के सार यानी तेज को "ओज" कहते हैं, उसे ही शास्त्रके सिद्धान्त से "बल" कहते हैं। "ओज" सोमात्मक चिकना, सफ़ेद, शीतल, स्थिर और सर यानी फैलनेवाला, रसादि धातुओं से अलग, कोमल, प्रशस्त और प्राणों का उत्तम आधार है। चरकमें लिखा है—हृदय में जो किसी क़दर पीले रङ्ग का शुद्ध रुधिर—खून दिखता है, उसीको "ओज" कहते हैं। उसके नाश होनेसे शरीर का भी नाश हो जाता है।

सुश्रुतमें लिखा है—ओज रूपी बल से ही मांस का सञ्चय और स्थिरता होती है। उसीसे सब चेष्टाओंमें स्वच्छन्दता, स्वर, वर्ण, प्रसन्नता तथा बाहरी और भीतरी इन्द्रियोंमें और मनमें अपने-अपने काम की उत्कण्ठा होती है; यानी ओज-बलकी शक्तिसे ही आँख देखनेका, कान सुनने का, जीभ चखने का, गुदा मल त्याग करने का काम करती हैं; इसी तरह शेष और इन्द्रियाँ भी अपने-अपने काम करती हैं। शरीर के प्रत्येक अवयव में यह "ओज" व्याप्त है। इसके व्याप्त न होने से, मनुष्योंके अङ्ग-प्रत्यङ्ग जर्जरीभूत हो जाते हैं।

ओजक्षयके कारण

चोट लगने से, क्षीणता से, क्रोध से, शोक से, ध्यान से, परिश्रम और क्षुधासे ओजका क्षय होता है। क्षीण हुआ ओज मनुष्यों की धातु प्रभृति को नष्ट करता है।

ओजक्षयके लक्षण

चरक में लिखा है—ओजका क्षय होनेसे प्राणी सदैव भयभीत रहता है, शरीर कमज़ोर होजाता है, हर समय चिन्ता बनी रहती है, सारी इन्द्रियाँ व्यथित हो जाती हैं; शरीर कान्तिहीन, रूखा और क्षीण हो जाता है।

सुश्रुत में लिखा है—ओज की विकृति के तीन रूप होते हैं :—
(१) पतन, (२) बिगड़ जाना, (३) क्षय होजाना।

जब ओज का पतन होता है तब जोड़ोंमें विश्लेष, अङ्गोंका थक जाना, दोषों का च्यवन और क्रियाओं का अवरोध,—ये लक्षण होते हैं। जब ओज बिगड़ जाता है,—तब शरीरका रुकना, भारी होना, वायु की सूजन, वर्ण यानी रङ्ग का बदल जाना, ग्लानि, तन्द्रा और निद्रा,—ये लक्षण होते हैं। जब ओज का क्षय होता है,—तब मूर्च्छा, मांसक्षय, मोह, प्रलाप और मृत्यु,—ये लक्षण होते हैं।

वायु की वृद्धिके लक्षण

चमड़ेमें सख़्ती, दुबलापन, कालापन, अङ्गोंका फड़कना, गरम आहार-विहारकी इच्छा, निद्रा का नाश, बलकी कमी और मल का कड़ापन—ये लक्षण वायु-वृद्धिके हैं।

पित्त की वृद्धि के लक्षण

प्रत्येक चीज़ का पीला दिखाई देना, सन्ताप, शीतल आहार-विहार की इच्छा, थोड़ी नींद, मूर्च्छा, बलकी हानि, हड्डियों की कमज़ोरी; मल, मूत्र और आँखों का पीला होना—ये लक्षण पित्त-वृद्धिके हैं,

कफवृद्धि के लक्षण

सब चीज़ों का सफेद दीखना, शीतलता, स्थिरता, भारीपन; आलस्य, आँखोंका झिपना, नींद आना—ये लक्षण कफ-वृद्धि के हैं।

रसवृद्धि के लक्षण

रस की वृद्धि होनेसे जी मिचलाता है और मुँह से ढेर पानी गिरता और राल बहती है।

रक्त वृद्धि के लक्षण

रक्त यानी ख़ून की वृद्धि होनेसे शरीर और आँखोंमें सुर्ख़ी छा जाती है और ख़ून से नसें भर जाती हैं।

मांस वृद्धि के लक्षण

मांस की वृद्धि होने से कमर, कन्धे, गाल, होठ, लिङ्ग, जानु, भुजा और जाँघ—ये अङ्ग मोटे हो जाते हैं और शरीर भारी हो जाता है।

मेद वृद्धि के लक्षण

मेद या चरबी की वृद्धि से शरीर चिकना हो जाता है, पेट और पसवाड़े बढ़ जाते हैं, श्वास और खाँसी के रोग हो जाते हैं, शरीर से बदबू निकलती है।

अस्थि वृद्धि के लक्षण

अस्थि यां हड्डियोंके बढ़ने से अधिक हाड़ और दाँत पैदा होते हैं।

मज्जा वृद्धि के लक्षण

मज्जा के बढ़ने से सारे शरीर और आँखोंमें भारीपन होता है।

शुक्र वृद्धि के लक्षण

शुक्र या वीर्य के बढ़ने से वीर्य्य की पथरी हो जाती है तथा मैथुनके बाद अधिक वीर्य्य गिरता है।

विष्ठा वृद्धि के लक्षण

विष्ठा या मलके बढ़नेसे पेटमें अफारा, भारीपन होता है और नलोंमें शूल चलता है।

मूत्र वृद्धि के लक्षण

पेशाव के बढ़ने से बार-बार पेशाव होता है, पेड़ू में दर्द और अफारा होता है।

पसीनों की वृद्धि के लक्षण

पसीनों के बढ़ने से चमड़े में बदबू आती है और खुजली होती है।

आर्त्तव की वृद्धि के लक्षण

स्त्रियों के मासिक खून के बढ़ने से शरीर टूटता है, खून ज़ियादा गिरता है और कमज़ोरी होती है।

दुग्ध की वृद्धि के लक्षण

दूधके बढ़ने से कुचायें मोटी हो जाती हैं, दूध अपने-आप टपकता है और तनाव का सा दर्द होता है।

गर्भ की वृद्धि के लक्षण

गर्भके ज़ियादा बढ़ने से पेट बहुत बढ़ जाता है और शरीर पर सूजन चढ़ आती है।

धातुओं की क्षय-वृद्धि जानने का उपाय।

रस कितना घटा है, वीर्य्य कितना बढ़ा है, वायुकी कितनी वृद्धि हुई है, पित्त कितना क्षीण हुआ है, इन सवालों के हल करनेका यानी धात्वादिकों की घटती-बढ़ती का ठीक परिमाण जाननेका कोई सहज उपाय नहीं है। इनकी समता जानने का आरोग्यता के सिवा और कोई उपाय नहीं है; अर्थात् जबकि मनुष्य स्वस्थ हो, शास्त्रानुसार स्वस्थता—आरोग्यताके लक्षण मिलते हों; तब हमें समझ लेना चाहिये कि वातादि दोष, धातु और मल समान हैं; कोई घटा-बढ़ा नहीं है। और जब कि मनुष्य रोगी हो, तब बुद्धिको तकलीफ़ देकर, अनुमानसे पता लगाना चाहिये कि, क्या घटा और क्या बढ़ा है। सुश्रुत में कहा है—

दोषादीनां त्वं समतामनुमानेन लक्षयेत्।
अप्रसन्नेन्द्रियं वीक्ष्य, पुरुषं कुशलोभिषक्॥

अप्रसन्न इन्द्रियोंवाले पुरुषों को देखकर, चतुर वैद्य को, अनुमानसे, दोषों, धातुओं और मल-समूहको समानता का पता लगाना चाहिये। सीधे शब्दों में इस तरह समझिये,—चतुर वैद्यको रोगी को देखकर अनुमान से वातादि दोषों, रस रक्तादि धातुओं और मलों की घटती-वढ़ती का पता लगाना चाहिये। जौनसा दोष या धातु या मल घटा हुआ दीखे, वैद्य उसके वढ़ाने का उपाय करे और जो वढ़ा हुआ दीखे, उसके घटाने की चेष्टा करे। जव तक घटे-वढ़े दोषादि समान न हो जायँ, तव तक उपाय करता रहे। जव दोषादि समान हो जायँगे, तव मनुष्य स्वस्थ हो जायगा।

जव मनुष्य स्वस्थ यानी नीरोग होता है, तव वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष; रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, और शुक्र ये सातों धातु और मल मूत्र आदि समान होते हैं; जठराग्नि भी सम होती है; विषम तीक्ष्ण या मन्द नहीं होती। हाज़मे की शिकायत नहीं रहती, भोजन पच जाता है, पाखाना-पेशाव ठीक होता है। दस्तक़ब्ज या पतले दस्त वगैरः की शिकायत नहीं रहती। पेशाव जलकर या थोड़ा-थोड़ा अथवा वहुत ज़ियादा नहीं होता। शरीर में आलस्य या अति चञ्चलता नहीं होती। आत्मा, इन्द्रियाँ और मन,—ये सव प्रसन्न रहते हैं।

धात्वादिकों के घटाने-वढ़ाने के लिये इशारे।

(१) अगर आप किसी दोष को घटा हुआ देखें, तो जिसको घटा हुआ देखें, उसी के वढ़ानेवाले आहार-विहार आदि रोगी को वतावें।

(२) अगर आप रस रक्त आदि किसी धातु को घटा हुआ देखें,

तो जिसको घटा हुआ देखें, उसी के बढ़ाने के उपाय रोगी को बतावें।

(४) स्वेद या पसीनों की क्षीणता देखें, तो आप तेल उबटन लगवावें और स्वेद-कर्म की व्यवस्था करें। आर्त्तव की क्षीणता में शोधन करें और गरम पदार्थों को काम में लावें। अगर छातियों में दूध कम हो गया हो, तो कफ बढ़ानेवाले पदार्थ सेवन करावें। अगर गर्भ-क्षीण हो, तो आप चिकने और स्वादु भोजन बतावें और हो सके तो गर्भाशय में दूध की वस्ति का प्रयोग करें यानी दूध की पिचकारी लगावें।

(५) दोषों और धातुओं तथा मलों की वृद्धि देखें, तो जिसकी वृद्धि देखें, जिसको बढ़ा हुआ देखें उसे आप यथाविधि शोधन कर के इस तरकीब से घटावें कि, जितना बढ़ा हो उतना घट जाय; ऐसा न हो कि, बहुत ही घट कर उल्टा क्षय हो जाय। बढ़े हुए को घटाना मुनासिब है; क्योंकि पहली-पहली धातु बहुत अधिक बढ़ जाने से अगली-अगली को बढ़ाती है। जैसे रस बहुत बढ़ जाता है, तो रक्त को बढ़ाता है। रक्त बहुत बढ़ जाता है, तो मांस को बढ़ाता है। मांस बहुत बढ़ जाता है तो मेद को बढ़ाता है। इसी तरह मेद अस्थि को और अस्थि मज्जा को और मज्जा वीर्य को बढ़ाती है।

प्रकृति-विचार

वीर्य, रुधिर, गर्भिणी का किया हुआ भोजन, उसकी चेष्टा और गर्भाशयके भीतर जो दोष अधिक हो उस दोषके अनुसार समस्त मनुष्यों की प्रकृतियाँ होती हैं। मनुष्योंकी प्रकृतियाँ सात प्रकार की होती हैं।

सात प्रकारकी प्रकृतियाँ

(१) वात-प्रकृति।

(२) पित्त-प्रकृति।

(३) कफ-प्रकृति।

(४) वातपित्त-प्रकृति।

(५) वातकफ-प्रकृति।

(६) पित्तकफ-प्रकृति।

(७) वातपित्तकफ-प्रकृति।

वात प्रकृति

वात प्रकृतिवाला मनुष्य जागनेवाला, थोड़े बालोंवाला, फटे हुए हाथ पाँववाला, दुर्बल, जल्दी चलनेवाला, अधिक बोलनेवाला, रूखे शरीर वाला, सुपनेमें आकाशमें चलने वाला होता है अर्थात् जिसकी प्रकृति वात की होती है, उसमें उपरोक्त चिह्न होते हैं। (भावप्रकाश)।

वाग्भट्टने लिखा है—वात प्रकृति वाला पुरुष दुष्ट स्वभाव होता है, उसके बाल धूसर रङ्गके होते हैं, शरीर फटा हुआ होता है; उसे शीत अच्छा नहीं लगता, उसकी धृति, स्मृति, बुद्धि और चेष्टा चञ्चल होती हैं तथा मैत्री, दृष्टि और चालमें भी चञ्चलता होती है। वह बहुत बोलनेवाला होता है। इस प्रकृतिवालेमें पित्त कम होता है। वह कमज़ोर होता है, उम्र कम होती है, नींद कम आती है, हकला कर बोलता है, नास्तिक होता है, अधिक खानेवाला और विलासी होता है; गाने, हँसने, शिकार खेलने और झगड़ा करनेमें उसकी रुचि अधिक होती है। मीठे, खट्टे, चरपरे और गरम पदार्थ उसके अनुकूल होते हैं। उसका शरीर दुर्बल और लम्बा होता है। उसके पानी वग़ैर: पीते समय आवाज़ होती है। वह मज़बूत, जितेन्द्रिय, उत्तम, स्त्रियोंका प्यारा और अधिक सन्तानवाला नहीं होता। उसकी आँखें रूखी, किसी क़दर धूमली, गोल और असुन्दर अथवा मुर्देकी सी होती हैं, जो सो जानेपर भी खुली रहती हैं। स्वप्नमें वह पहाड़, वृक्ष और आकाशमें चलता है। वह भाग्यहीन और दूसरेको देखकर जलने वाला और चोर होता है। इस प्रकृतिवालेका स्वर और रूप कुत्ता, गीदड़, ऊँट, गिर्ज़, चूहा, कव्वा और उल्लू के समान होता है।

चरक में लिखा है—वायुके रूक्ष गुण के कारण इस प्रकृतिवाले का शरीर रूखा और दुर्बल, स्वर रूखा और क्षीण तथा जर्ज्जर होता है। इसे नींद नहीं आती। वायुके लघुत्व-गुणके कारण इसकी चाल, चेष्टा, आहार और व्यवहार हलके और चपल होते हैं। वायु के चलत्व गुणके कारण शरीरके जोड़, हड्डी, भौं, ठोड़ी, होठ, जीभ, मस्तक, कन्धे और हाथ पैर मज़बूत नहीं होते। वायुके बहुत्वसे यह बहुत बोलनेवाला होता है, इसके शरीर पर नस ही नस दिखाई देती हैं। वायुके शीघ्रत्वके कारण इसे क्षोभ, उद्योग और विकार तथा त्रास, रोग और वैराग्य जल्दी होता है। ज़रासी देरमें ज्ञानवान और ज़रासी देरमें ज्ञानको भूलकर मूर्ख हो जाता है। वायुके शीतल

होनेके कारण सर्दीको बर्दाश्त नहीं कर सकता। शीत, कफ, स्तम्भ जल्दी ही होते हैं। वायुके कठोर गुणके कारण इसके बाल, मूछें, रोएँ, नाखून, दाँत और मुँह तथा हाथ पैर सारे अङ्ग कड़े होते हैं। सब अङ्ग फटे से होते हैं। चलते समय जोड़ोंसे आवाज़ निकलती है। इस प्रकृतिवाला बलहीन, कम-उम्र, कम औलादवाला और दरिद्री होता है।

हारीत-संहितामें लिखा है—जिसका रङ्ग काला हो, शरीर बहुत दुबला हो, चपल हो, बाल थोड़े हों, बलवान और समर्थ हो, दाँत बहुत ही छोटे-छोटे हों, बहुत बोलनेवाला हो, चलने-फिरनेमें समर्थ हो, बहुत कूदनेवाला हो, लोभी हो, सत्वगुण-रहित हो, खट्टे रसको पसन्द करता हो, पसीनों और मालिशसे जिसे सुख होता हो,—वह वात प्रकृतिवाला होता है।

पित्त प्रकृति

जिसके बाल बेसमय सफेद होगये हों, शरीर का रङ्ग गोरा हो, स्वभाव क्रोधी हो, पसीने ज़ियादा आते हों, खूब चतुर हो, बहुत खाता हो, आँखें लाल रहती हों, स्वप्नमें आग, बिजली सूर्य प्रभृति पदार्थोंको देखता हो—ऐसे लक्षणवाला मनुष्य पित्त-प्रकृति होता है। (भावप्रकाश)

जिसको भूख-प्यास बहुत लगती हो, जिसका अङ्ग गोरा और गर्म हो, हाथ पाँव मुँह का रङ्ग लाल हो, बाल पीले और रोएँ थोड़े हों, शूर और अत्यन्त मानी हो, फूल और चन्दनादिके लेपको चाहता हो, पवित्र और अच्छे चालचलन वाला हो, अपने अधीन रहनेवालों पर दया करता हो; वैभव, साहस और बुद्धिबल-युक्त हो, डरे हुए दुश्मनको भी रक्षा करनेवाला हो, स्मरण-शक्ति पूरी हो, स्त्री-गमन न करता हो, अल्प वीर्य और कामदेव वाला, पानी की चलती हुई लहरके समान कान्तिवाला; मीठे, कड़वे, कसैले और

शीतल अन्नमें रुचि रखनेवाला, धर्मसे द्वेष रखनेवाला, बहुत पसीने वाला, शरीरमें बदबू आती हो, अधिक क्रोधी, अधिक ईर्षावाला, अधिक खाने वाला, अधिक मल त्यागनेवाला, स्वप्नमें कनेर ढाक प्रभृतिके फूल, जलती हुई दिशा, उल्कापात, बिजली, सूर्य और अग्नि को देखनेवाला मनुष्य पित्त-प्रकृति होता है। इसकी आँखों की की पुतलियाँ पीली होती हैं। इसे सर्दी पसन्द होती है। सूर्यकी चमक, शराब, और क्रोध से इसकी आँखें लाल हो जाती हैं। इस प्रकृति-वाला पुरुष विद्वान्, मध्यम आयुवाला, बलवान और क्लेशसे डरने-वाला होता है। पित्त प्रकृतिवालोंका स्वभाव बाघ, रीछ, बन्दर, बिलाव और भेड़िया—इन जानवरोंसे मिलता है।

चरकमें लिखा है—पित्त प्रकृतिवालोंको गरमी बर्दाश्त नहीं होती। इनका शरीर कोमल और साफ़ होता है। शरीरमें झांईं, तिल और खुजलीकी अधिकता होती है। डाढ़ी, मूँछ, रोम और बाल प्रायः नर्म, छोटे और भूरे होते हैं; इनकी छाती, बग़ल मुँह, और मस्तक तथा सारे शरीर में सड़ी-सड़ी दुर्गन्ध आती है। ऐसे पुरुष मध्यबली, मध्यायु और ज्ञानवान तथा धनवान होते हैं।

हारीतसंहितामें लिखा है,--जिसका रङ्ग गोरा हो या पीला रङ्ग सफेदी से मिला हो, नाज़ुक हो, प्रीति रखनेवाला हो, शीतल पदार्थों पर जिसका मन चलता हो, जिसके नेत्र पीले-पीले से हों, स्वभाव तेज़ हो, मगर तेज़ी थोड़ी देर रहती हो, शरीर पर बाल थोड़े हों, चञ्चलता अच्छी लगती हो, कड़वे रसको खानेवाला हो, अपनी तारीफ़ चाहनेवाला हो, इत्यादि लक्षण जिसमें हों उसे पित्त-प्रकृतिवाला समझो।

कफप्रकृतिके लक्षण

कफ का स्वरूप चन्द्रमाके समान है, इसलिये कफ-प्रकृतिवाला मनुष्य सौम्य होता है। इसकी सन्धि, हड्डी और मांस आपसमें मिले

हुए, चिकने और गूढ़ होते हैं। यह भूख प्यास दुःख और क्लेश से घबराता नहीं तथा बुद्धिमान, सतोगुणी, और वचन पालनेवाला होता है। इसके शरीरका रङ्ग प्रियंगू, दूब, मूँज, डाभ, गोलोचन, कमल और सोनेके समान होता है। इसकी भुजाएँ लम्बी, छाती चौड़ी और पुष्ट तथा कपाल बड़ा होता है। बाल घने और काले होते हैं, अङ्ग कोमल, शरीर समान और सुन्दर होता है। इसमें ओज यानी सामर्थ्य अधिक होती है। यह शृङ्गार रसमें मग्न रहता है। इसके पुत्र और नौकर बहुत होते हैं। यह धर्मात्मा, कठोर वचन न बोलनेवाला, चुपचाप शत्रुके साथ बहुत दिनों तक बैर रखनेवाला होता है। यह मदोन्मत्त हाथीके समान होता है। इसकी आवाज़ बादल, समुद्र, मृदङ्ग और शङ्ख के समान होती है। इसकी याददाश्त अच्छी होती है। यह नम्र और उद्योगी होता है तथा बाल्यावस्थामें बहुत कम रोनेवाला और चपलताहीन होता है। कड़वे कसैले तीखा गरम रूखे और अल्प भोजन करनेवाला होता है, तिसपर भी बलवान होता है। आँखोंके कोनोंमें ललाई होती हैं। आँखें चिकनी बड़ी, लम्बी, और स्पष्ट होती हैं। इसके पलक अधिक और सफ़ेद तथा काले-काले होते हैं। इसको क्रोध और क्षुधा कम होती है। यह बुद्धिमान, काम करने में देर करने वाला, मनोहर बोलनेवाला, क्षमावान, निद्रालु, लोभहीन और पराया ऐहसान माननेवाला होता है। इसका हृदय गम्भीर और छाती चौड़ी होती है, स्वभाव सरल होता है। यह विद्वान्, लजीला, गुरुभक्त और प्रेम को स्थिर रखनेवाला होता है। यह स्वप्न में कमल, चकवा-चकई पक्षियों की पंक्तियुक्त जलाशयों को देखता है। कफ प्रकृतिवाला विष्णु, इन्द्र, रुद्र, वरुण, गरुड़, अग्नि, हंस, हाथी, सिंह घोड़ा, गाय और बैल के से स्वभाववाला होता है।

चरक में लिखा है—कफ प्रकृतिवालों का शरीर चिकना, देखने में सुखदाई, नाजुक और साफ होता है। इसके वीर्य बहुत होता है

और यह अधिक मैथुन करता है। इसकी सन्तान बहुत होती हैं। इस का शरीर परिपुष्ट होता है, किन्तु आहार और चेष्टा मन्द होते हैं इत्यादि। यह मनुष्य बलवान, धनवान, विद्वान्, ओजवाला और आयुवाला होता है।

हारीत संहिता में लिखा है—जिसका रङ्ग सुन्दर चिकना और श्याम हो, नेत्र सफ़ेद हों, बाल सुन्दर हों, रोम और नख लम्बे हों, गम्भीर बोलनेवाला हो, ऊँघना सोना और पढ़ना-लिखना जिसे अच्छे लगते हों, कड़वा और चरपरा रस खानेवाला हो, शरीरमें मोटा हो, चिकने रसको चाहता हो, गाना-बजाना पसन्द करनेवाला हो, सहनशील, कसरती और भोगी हो—ऐसा मनुष्य कफ प्रकृतिवाला होता है।

अन्यान्य प्रकृतियोंके लक्षण

जिसमें वात और पित्त-प्रकृति दोनोंके लक्षण हों, वह वात-पित्त प्रकृति और जिसमें वात और कफके लक्षण हों वह वात-कफप्रकृति; इसी तरह जिसमें पित्त और कफके लक्षण हों वह पित्त-कफ-प्रकृति होता है। इसी तरह जिसमें तीनों दोषोंके यानी तीनों प्रकृतियों के लक्षण हों, वह त्रिदोषज-प्रकृति होता है।

बहुत से आचार्य्य कहते हैं, मनुष्योंकी प्रकृति पवन, अग्नि, जल पृथ्वी और आकाश—इन पञ्च महाभूतों से बनी है। पवन वायु है, अग्नि पित्त है, जल कफ है। इस हिसाब से पवन, जल, अग्नि इन तीन प्रकृतियों का बयान ऊपर कर दिया गया है। पृथ्वी और आकाश-प्रकृति मनुष्यों के लक्षण सुनिये—

जिनका स्वभाव स्थिर है, जिनका शरीर मज़बूत है, जो क्षमा-शील हैं, उनको "पृथ्वी-प्रकृति" कहते हैं।

जो शुद्ध हैं और जो बहुत दिन जीते हैं, वे "आकाश-प्रकृति" हैं।

चरक और हारीत में समप्रकृति चौथी लिखी है—जिसमें कई

तरह के मिले हुए रङ्ग हों, जो खूबसूरत हो, धीर गम्भीर हो, स्त्रीको चाहनेवाला हो, बोझ को सह सकनेवाला और भोगी हो; जिसमें ये सब लक्षण मिलते हों, उसे समप्रकृतिवाला कहते हैं।

शुद्ध वात प्रकृति, शुद्ध पित्त प्रकृति, शुद्ध कफ प्रकृतिवाले आदमी बहुत ही कम मिलते हैं। मिले-जुले लक्षणोंवाले लोग बहुत देखने में आते हैं। लक्षणों के मिलाने से प्रकृति का ज्ञान हो जाता है। जैसे; किसी में कुछ वात के और कुछ पित्तके लक्षण मिलें, उसे "वातपित्त प्रकृति" समझ लो।

एक वैद्यराज ने अपने रचे हुए ग्रन्थ में लिखा है कि, शरीर का रङ्ग प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से पूर्व्वाचार्य्यों के लिखनेके अनुसार नहीं मिलता। उनकी यह बात ठीक है। चमड़े की रङ्गत पृथ्वी पर निर्भर है। यूरोपवाले, काश्मीरवाले, शीतदेशों के रहनेवाले गोरे होते हैं। मदरासी और ऐबीसीनियावाले सभी काले होते हैं। चीनी और जापानी पीले होते हैं। जहाँ सभी गोरे और सभी काले होते हैं, वहाँ प्रकृति-परीक्षा के समय शरीर के रङ्ग का विचार करना ही वृथा है। जहाँ सब-मेल आदमी पैदा होते हैं, वहीं रङ्ग पर ध्यान देना चाहिये।

प्रकृति की परीक्षा करना सहज काम नहीं है, इसी से आजकल हम तो किसी बड़े से बड़े वैद्य को रोगी की प्रकृति की जाँच करते नहीं देखते। इतनी फुरसत ही नहीं,जो इतनी पूछ-ताछ करें। हम ने ऊपर तीन-तीन ग्रन्थों से प्रकृति-लक्षण उद्धृत करके लिखे हैं। किन्तु पूरे लक्षण हमने वाग्भटसे ही लिखे हैं। चरक और हारीतके हमने वेही लक्षण लिखे हैं, जिनपर हमें अपने पाठकोंका ध्यान दिलाना है अथवा जहाँ कुछ मत-भेद है या जो कम-ज़ियादा हैं। इन लक्षणों को हृदयस्थ कर लेने और बराबर पहचानने का अभ्यास करने से प्रकृति-परीक्षा आ जायगी। चिकित्सा में इसकी बड़ी ज़रूरत है। चरक में लिखा है :—

तथाबलवतिबलवद्व्याधिपरिगते स्वल्प
बलमौषधमपरीक्षकप्रयुक्तमसाधकं भवति
तस्मादातुरं परीक्षेत,प्रकृतितश्च विकृतितश्च
सारतश्च संहननतश्च सात्म्यतश्च सत्त्वतश्चाहार
शक्तिश्च व्यायाम शक्तितश्चे वयस्तश्चेति

जिस तरह हलके रोगवाले को अति बलवान दवा देना अच्छा नहीं, उसी तरह बलवान रोगवाले को कमज़ोर दवा देना अनिष्ट-कारक है; इसलिये रोगी की प्रकृति, विकृति, सार, शरीर, सात्म्य, सत्त्व, आहार-शक्ति, परिश्रम-शक्ति, और अवस्था की परीक्षा करनी उचित है।

एक शङ्का रह गई है; वह यह कि वात, पित्त और कफ प्रकृति के कारण हैं। ऐसी दशा में इनमें से जो दोष प्रकृत रूपसे अधिक हों, वह अपने द्वारा होनेवाले रोगों को उत्पन्न क्यों नहीं करते ?

इसका जवाब या समाधान यह है, कि जिस तरह विषसे पैदा हुआ कीड़ा विष से पीड़ित नहीं होता, उसी तरह प्रकृतिगत दोष उसी प्रकृतिवाले मनुष्यों को पीड़ित नहीं करते। इसका मतलब यह है कि, जिस तरह विष से कीड़ा मरता नहीं, परन्तु उसे दाह आदि पीड़ा किसी क़दर होती है ; उसी तरह उस-उस प्रकृतिवाले मनुष्यों को उस-उस प्रकृति के कारण-रूप दोषों से, ज्वर वगैरः ज़ोरदार बीमारी नहीं सतातीं; किन्तु हाथ पैर फूटना, बहुत पसीने आना, बहुत नींद आना प्रभृति हलकी-हलकी तकलीफें होती रहती हैं। प्रकृतिगत दोष का न कोप होता है, न शान्ति होती है और न वह बदलता है। वह तो मृत्युकाल तक प्रकृतिके स्वभावके अनुसारही बना रहता है।

—

बल-विचार

चिकित्सा बल और देशके प्रमाणकी अपेक्षा करती है। अगर चिकित्सक बलको परीक्षा किये बिना, दुर्बल रोगीको अति बलवान यानी बहुत तेज़ दवा दे दे, तो रोगी मर जाय। क्योंकि कमज़ोर रोगी बहुत तेज, ज़ोरदार, बहुत गर्म या बहुत ठण्डी दवाओं तथा अग्नि-कर्म और क्षार-कर्मको नहीं सह सकता। बहुत तेज़ दवा कमज़ोर रोगीको मार डालती है। इसीलिये वैद्यको, दुर्बल रोगी हो तो मुलायम और हलकी दवा देनी चाहिये; ऐसी दवा न देनी चाहिये, जिससे दुःख हो। अगर तेज़ दवा ही देनेकी ज़रूरत हो, तो थोड़ी-थोड़ी देनी चाहिये, जिससे कोई उपद्रव न हो।

जिस तरह दुर्बलको बलवान दवा देना अच्छा नही है; उसी तरह बलवान रोगीको कमज़ोर दवा देना भी ठीक नहीं है। इससे अनिष्टही होता है, रोग बढ़ जाता है। इसलिये रोगीकी बल-परीक्षा करनी ज़रूरी है। बिना बलकी परीक्षा किये कैसे जान सकते हैं कि रोगी बलवान है या निर्बल, ज़ोरदार दवा सह सकेगा या कमज़ोर दवा, अग्निकर्म या क्षार-कर्म अथवा अस्त्र-चिकित्सा यानी चीरफाड़को बर्दाश्त कर सकेगा या नहीं।

सुश्रुतमें लिखा है—बल, ओज और दुर्बलताकी परीक्षा करनी चाहिये; यानी यह देखना चाहिये कि यह दुर्बलता रोगीके स्वभावसे है या किसी रोगसे हो गई है अथवा बुढ़ापेसे हो गई है, अथवा

चिन्ता और फिक्रसे हुई है। क्योंकि बलवानको ही दवा और आहार आदि पचते और लाभ पहुँचाते हैं, इसलिए सब आधारोंमें बलही प्रधान है। बहुतसे दुबले बलवान होते हैं और बहुतसे मोटे निर्बल होते हैं। इसलिए वैद्यको, चित्त स्थिर करके, मिहनतके साथ बलकी परीक्षा करनी चाहिये।

चरकमें लिखा है, चिकित्सक रोगीका शरीर देखकर धोखा न खावे। रोगीको हृष्ट-पुष्ट समझकर बलवान न समझ ले, दुबला पतला देखकर दुर्बल न समझ ले; अनेक मोटे निकम्मे और दुबले बलवान देखनेमें आते हैं। चींटी दुबली पतली और छोटी होती है, मगर अपने शरीरसे दूना बोझा ढो ले जाती है। इससे साबित होता है कि असल चीज़ सार है; इसलिए सारकी परीक्षा करनी चाहिये।

सार परीक्षा

बल-परीक्षा करनेके लिए चरकमें आठ प्रकारके सारोंकी व्याख्या की है। उन सारोंकी परीक्षा करनेसे बलकी यथार्थ परीक्षा होती है। आठ प्रकारके सार ये हैं :—

(१) त्वचा (चमड़ा), (२) रुधिर (खून), (३) मांस, (४) मेद (५) अस्थि (हड्डी), (६) मज्जा (७) शुक्र (वीर्य), (८) सत्व।

त्वकसार

पुरुषका चमड़ा चिकना, पतला, नर्म, प्रसन्न, सूक्ष्म, नाजुक, रोमाञ्च और कान्तियुक्त होता है। त्वकसार एक गुण होनेके कारण यह प्राणी सुखी, सौभाग्यशाली, ऐश्वर्य्यवान, भोगी, बुद्धिमान, विद्वान्, निरोग, मज़बूत और दीर्घायु यानी बड़ी उम्रवाला होता है।

रक्तसार

पुरुषके कान, नेत्र, मुँह, जीभ, नाक, होठ, हाथ पैरके नाखून,

ललाट, और लिङ्ग—ये लाल, शोभायुक्त और दीप्तिवान होते हैं। ऐसा पुरुष सुखी और उन्नतिशील होता है, तथा मेधावी (चतुर, समझदार, विद्वान्), मनस्वी (दाना, पण्डित) सुकुमार (नाजुक), मध्य बलवाला, और तकलीफ बर्दाश्त करनेकी सामर्थ्यवाला होता है।

मांससार

पुरुषकी कनपटी, ललाट, गर्दनका पिछला हिस्सा, नेत्र, गाल, ठोड़ी, गर्दन, कन्धे, बग़ल, छाती, हाथ, पैर, और शरीरके जोड़—ये सब मांसल और मज़बूत होते हैं। यह पुरुष क्षमावान्, धीरजवान् निर्लोभी, धनी, विद्वान्, सुखी, नम्र, निरोगी, बली और दीर्घायु होता है।

मेदसार

पुरुषके वर्ण(रंग), आवाज़, नेत्र, बाल, रोम, नाख़ून, दाँत, होठ, मल और मूत्र ये विशेष करके चिकनाहट लिए हुए होते हैं। यह पुरुष धनी, ऐश्वर्य्यशाली, सुख-भोगी, दाता, सरल स्वभाव और सुशील होता है।

अस्थिसार

पुरुषकी एड़ी, टखने, घोटूँ, कलाई, हँसली, मस्तक, सारे जोड़, नाख़ून, दाँत,—ये सब स्थूल होते हैं। यह पुरुष महा उद्योगी, तरह-तरहके काम करनेवाला, क्लेश सहनेवाला, मज़बूत शरीरवाला और आयुवाला होता है।

मज्जासार

पुरुषका शरीर पतला, और बलवान् होता है। इसका स्वर और वर्ण ये चिकने होते हैं। इसकी सारी सन्धियाँ स्थूल, लम्बी और गोल होती हैं। यह दीर्घायु होता है।

शुक्रसार

पुरुष ज्ञानी, धनी और पुत्रवान होते हैं ; सम्मान-योग्य, सौम्य, सुन्दर और खूबसूरत होते हैं। नेत्रोंमें दूधसा भरा हुआ दीखता है और उनके अन्दरसे प्रसन्नता की आभा झलकती है, समान और सुडौल शरीर तथा दन्त-पंक्ति पर्वत-शिखर की पंक्तिके समान होती है ; वर्ण, और स्वर प्रसन्न और स्निग्ध होते हैं; चेहरेपर दीप्ति होती है ; चूतड़ भरे हुए होते हैं ; ऐसे पुरुष स्त्रियोंके प्यारे, कमनीय और बलवान होते हैं।

सत्वसार

पुरुष ऐश्वर्य्य-सम्पन्न, आरोग्य, सम्मान-योग्य, सन्तानवाले, स्मरण-शक्ति-सम्पन्न, भक्ति रखनेवाले, कृतज्ञ यानी पराया ऐहसान मानने वाले, विद्वान्, पवित्र,उत्साही, चतुर, धीर, समय पर पराक्रमके साथ युद्ध करनेवाले, विषाद-रहित यानी प्रसन्न-चित ; गम्भीर-बुद्धि और कल्याण चाहने वाले होते हैं।

सकलसार

युक्त पुरुष अति बलवान, अति गौरव-युक्त, कष्ट सहनेवाला, सभी कामोंको आप कर डालनेकी आशा करनेवाला, कल्याणकारी विषयोंमें मन लगानेवाला, मज़बूत शरीरवाला और स्थिर गतिवाला, होता है। इसका स्वर स्निग्ध—चिकना, गम्भीर, बड़ा और गूँजने-वाला होता है। यह पुरुष सुखी, ऐश्वर्य्यवान्, धनका भोगनेवाला और सम्मानका पात्र होता है। सकलसार वालेको बुढ़ापा देरसे आता है और रोग भी जल्दी-जल्दी नहीं होते ; अगर होते भी हैं तो थोड़े होते हैं। इसकी सन्तान इसीके समान गुणवाली होती है।

जो इन लक्षणोंके विपरीत लक्षणवाला होता है, उसे "असार" कहते हैं। जिसमें मध्य लक्षण हों उसे "मध्यसार" कहते हैं। इस तरह पुरुषोंके बलका प्रमाण जाननेके लिए आठ सार कहे हैं।

शरीरका सुघाट

या गठन देखकर भी बल जाना जा सकता है। जिसकी हड्डियाँ समान हों, जोड़ सब सुबद्ध हों, माँस और खून भरा हुआ हो, उसे सुसंहत शरीरवाला कहते हैं। ऐसा पुरुष बलवान होता है। इसके विपरीत लक्षणवाला दुर्बल और बीचके लक्षणवाला मध्यबली होता है।

सत्व-विचार

बहुतसे मनुष्य डील-डौल और गठन वग़ैरः से बलवान दीखते हैं, मगर वह कष्ट ज़रा भी नहीं सह सकते। ज़रासी चीर-फाड़ करने, मामूली फोड़ेमें नश्तर लगाते समय हाय तोबा करके ज़मीन-आस्मानको एक कर देते हैं। इसका क्या कारण है? ऐसे लोगों का शरीर तो मज़बूत दीखता है, मगर इनका मन कमज़ोर होता है। जिनका शरीर दुबला पतला होता है, किन्तु मन बलवान होता है; वह बड़े-बड़े कष्टोंको सह लेते हैं और उफ़ नहीं करते। इसलिये रोगीके सत्व या मनकी भी वैद्यको परीक्षा करनी चाहिये।

चरकमें लिखा है—सत्व "मन" को कहते हैं। आत्माके साथ मन का संयोग होनेसे "मन" शरीरका पालन-पोषण करता है। सत्व या मन बलभेदके कारणसे तीन प्रकार का होता है:—(१) उत्तम, (२) मध्यम (३) अधम।

प्रवर-सत्ववाला प्राणी निज और आगन्तु कारणोंसे हुई घोर पीड़ाओंमें भी नहीं घबराता, क्योंकि उसमें सत्व गुण होता है। सुश्रुत में लिखा है,— सत्ववान मनुष्य, जिसमें सतोगुणकी अधिकता होती है, अपने मनको कड़ा करके सब सह लेता है।

मध्यम-सत्ववाला (रजोगुण प्रधान मनुष्य) दूसरोंको देखा-देखी, या दूसरोंके साहस दिलाने या सहायता करने से पीड़ा को सह लेता है।

अधम-सत्व या हीन-सत्ववाला (तमोगुण प्रधान मनुष्य) न तो आप धीरज धरता है और न दूसरोंकी सहायतासे धैर्य्य धरता है। ऐसा मनुष्य किसी तरह भी दुःखको चुपचाप नहीं सहता। ऐसे आदमीका डील-डौल देखनेका ही होता है। भय, शोक, अभि-मान, लोभ और मोह ऐसे मनुष्यके साथी होते हैं। हीन-सत्व मनुष्य युद्धकी बात सुनने मात्रसे, किसीके शरीरसे खून गिरते देखकर, अथवा सिंह, व्याघ्र वनमानुष प्रभृतिको देखकर बेहोश हो जाते हैं; अथवा उनके चेहरेका रङ्ग उतर जाता है।

सात्म्य विचार

चिकित्सामें जिस तरह और परीक्षाओंकी ज़रूरत है, उसी तरह सात्म्य-परीक्षा की भी ज़रूरत है। सात्म्य-परीक्षासे हमें रोगीका बलाबल, उसकी प्रकृति तथा और भी अनेक बातें मालूम हो सकती हैं।

सुश्रुतमें लिखा है—देश, काल, ऋतु, रोग, मिहनत, जल, दिनमें सोना, और रस प्रभृति जो रोगीकी प्रकृतिके विरुद्ध न हों, रोगीको नुक़सान पहुँचाने वाले न हों, रोगीके मिज़ाजके मुआफिक़ हों—उन्हें "सात्म्य" कहते हैं। जिन पदार्थोंके सेवनसे रोगीको सुख हो, वही उसके लिए सात्म्य या मुआफ़िक़ हैं।

चरकमें लिखा है, जिसके निरन्तर सेवन करनेसे उपकार मालूम हो, उसको 'सात्म्य' कहते हैं।

जिन प्राणियोंको घी, दूध, तेल, माँस, रस और छहों प्रकारके रस सात्म्य यानी सुखकारी होते हैं, वे लोग बलवान्, कष्ट सहनेवाले और दीर्घायु होते हैं।

जो लोग सदा रूखे पदार्थ सेवन करते हैं, जिन्हें एकही रस सात्म्य या मुआफ़िक़ होता है, वह प्रायः अल्पबली—कमज़ोर और तकलीफको न सह सकनेवाले और अल्पायु होते हैं।

जिन लोगोंको अलग-अलग रस सात्म्य न हों, यानी जिन्हें अलग-अलग रसोंके सेवन करनेसे सुख न होता हो, कुछ तकलीफ होती हो, किन्तु मिले हुए रस सात्म्य यानी मुआफ़िक़ हों, वह मध्यबली होते हैं।

देह विचार

देह की परीक्षा में वैद्य को यह देखना चाहिये कि शरीर मोटा है या दुबला, यथा-योग्य है या विक्षत। जो वैद्य इन बातोंका विचार नहीं करते, वे धोखा खाते हैं। मोटे और दुबले दोनों ही सदा रोग-ग्रस्त रहते हैं, किन्तु दुबलेसे तो कहीं-कहीं पार पड़ जाते हैं, मगर मोटे के इलाज में बड़ी हैरानी होती है; विशूचिका जैसे रोगोंमें तो सफलता कोसों दूर भागती है। दुबले में बल, पुरुषार्थ और कष्ट सहने की क्षमता नहीं होती, उसी तरह मोटे देखने के ही मोटे होते हैं। मोटे के प्राय; सभी रोग बलवान होते हैं। चरकमें लिखा है—आठ तरह के पुरुष बुरे समझे जाते हैं (१) बहुत लम्बा, (२) बहुत ठिंगना (३) बहुत बाल वाला (४) बिल्कुल केशरहित (५) बहुत काला (६) बहुत ही गोरा (७) बहुत मोटा (८) बहुत दुबला।

मोटा आदमी

सुश्रुतमें लिखाहै—शरीर का मोटापन और दुबलापन "रस" के कारण से होता है। जो लोग कफकारक और क्षार-रहित पदार्थ सेवन करते हैं, एक भोजन के बिना पचे दूसरा भोजन कर लेते हैं, दिन-रात सोकर या बैठकर गुज़ारते हैं, मिहनत नहीं करते ; और दिनमें सोया करते हैं—ऐसे लोग मोटे हो जाते हैं।

बहुत ही मोटापन अति तर्पण, भारी, मीठे, शीतल और चिकने पदार्थों के सेवन, मिहनत न करने, स्त्री-प्रसंग न करने, दिनमें सोने, चिन्ता न करने और पैतृक स्वभाव प्रभृति कारणोंसे होता है।

आयुर्वेद के मत से बहुत मोटा और बहुत दुबला बुरा समझा जाता है। बहुत मोटे आदमी की आयु थोड़ी होती है, उसे बे-समय में बुढ़ापा घेर लेता है, शरीर के छोटे-छोटे छेद रुक जाते हैं, स्त्री-सङ्गमें तकलीफ़ होती है; कमज़ोरी, बदबू, पसीने बहुत भूख और प्यास—ये लक्षण होते हैं। मेद सहसा बढ़कर वात पित्त और कफके अनेक रोग पैदा करके प्राण नाश करती है। मेद और मांसके बहुत बढ़नेसे चूतड़, पेट और स्तन ये हलर-हलर हिलते हैं।

मेदस्वी या मोटे आदमी की ख़ाली मेद ही बढ़ती है और धातुयें नहीं बढ़तीं; इसीसे मोटा आदमी जल्दी मर जाता है। शरीरकी शिथिलता, सुकुमारता, भारीपन आदिसे मोटेको बुढ़ापा घेर लेता है और रोमछिद्र रुक जाते हैं। वीर्यकी कमी और चरबी द्वारा मार्ग ढक जानेसे स्त्री-सङ्ग में अत्यन्त कष्ट होता है। धातुओंकी समानता न होनेसे कमज़ोरी; मेदेके दोष और स्वभाव से बदबू; कफके संसर्ग से स्थूलता और परिश्रम न सह सकने के कारण पसीने बहुत आते हैं। अग्नि की तीक्ष्णता और कोठों की वायु की अधिकता से भूख और प्यास बहुत लगती है। मेद यानी चरबीसे राहोंके बन्द होजाने के कारण, वायु ज़ियादातर कोठेमें ही घूमता है और अग्नि को तेज़ करके आहार को सुखा देता है। इसीसे मेदस्वी या मोटे को जल्दी खाना पच जाता है और वह बारम्बार खाना चाहता है। अगर खाना मिलनेमें ज़रा भी देर होती है, तो घोर रोगोंमें फँस जाता है। मोटे आदमी के पेटमें आग और हवा उसी तरह ऊधम मचाते हैं; जैसे दावानल वनमें ऊधम मचाकर वनको भस्म कर देता है।

क्योंकि खाये हुए भोजन-पान का रस, बिना पके ही, अत्यन्त मीठा होकर शरीरमें चरबी या मेद पैदा करता है। उस मेद या चरबी के कारण से ही मनुष्य मोटा या स्थूल हो जाता है।

स्थूल-शरीर या मोटे आदमी को क्षुद्र श्वास, प्यास, क्षुधा, निद्रा, शरीर में बदबू, कण्ठ से घर-घर शब्द निकलना, अङ्गों में थकान

आना प्रभृति उपाधियाँ घेर लेती हैं। मेद की कोमलता के कारण मोटा आदमी सब कामों में अशक्त रहता है। कफ और मेद से शुक्र-मार्ग रुक जाते हैं, इसलिये मोटा आदमी बहुतही थोड़ा मैथुन कर सकता है। कफ और मेद से दूसरे रास्ते भी ढक जाते हैं; इसलिये अस्थि, मज्जा और शुक्र ये धातु भी नहीं बढ़ने पाते; इसीलिए मोटे आदमी में बल नहीं होता।

बहुत मोटा आदमी प्रमेह, पिड़िका, ज्वर, भगन्दर, विद्रधि, अथवा किसी वायु-रोगमें गिरफ़्तार होकर यमसदनका राही होता है। मोटे आदमी के स्रोत या धातु बहने के रास्ते मेदसे ढके रहते हैं; इस कारण से मोटे आदमी के प्रायः सभी रोग बलवान हो जाते हैं।

प्रत्येक मनुष्य को ऐसा उपाय करते रहना चाहिये, जिससे शरीर बीच की अवस्था का बना रहे; बहुत मोटा या दुर्बल न हो जाय। वैद्य को चाहिये कि मोटे शरीर को कर्षण * चिकित्सा द्वारा दुर्बल करे और दुर्बल शरीर को बृंहण* चिकित्सा द्वारा मोटा करे। चरक में लिखा है, वैद्य लङ्घन और बृंहण से चिकित्सा करे।

मोटे आदमियोंकी मुटाई नाश करने के लिये शिलाजीत, गूगल, गोमूत्र, त्रिफला, लोहचूर्ण यानी भस्मसार, रसौत, शहद, जौ, मूँग, कोदों, कूटू प्रभृति रूखे और दुबले करनेवाले पदार्थ यथा-विधि सेवन कराने चाहियें। मोटे से दुबले करनेवाले जितने उपाय हैं, उनमें कसरत या मिहनत सर्व्वश्रेष्ठ है। चरक में लिखा है—वात-नाशक, कफमेद-हारक अन्नपान, रूखे उबटन, गिलोय, और भद्रमोथे का काढ़ा, त्रिफलेका काढ़ा, छाछ, वायविडङ्ग, सोंठ, जवाखार, मधु, जौ, आमलों का चूर्ण प्रभृति मुटाई नाश करने में हितकारी हैं।

---

* स्नान, उबटन, नींद, घी, दूध, चीनी प्रभृति बृंहण करनेवाले हैं। कड़वा, कसैला चरपरे रस का सेवन, अति स्त्री-प्रसङ्ग, माठा और मधु,—कर्षण करनेवाले हैं।

जिसे मुटाई नाश करनी हो वह जागरण, स्त्रीप्रसङ्ग, चिन्ता और परिश्रम, आरंभ करे और धीरे-धीरे बढावे ।

दुबला आदमी

चरक में लिखा है—रूखा अन्नपान, लङ्घन, अल्प भोजन, अति परिश्रम या अति संशोधन (जुलाब वगैर:), शोक, मलमूत्र आदि का रोकना, जागना, रूखे पदार्थों का उबटन, स्नानका अभ्यास न होना, बुढ़ापा, क्रोध, सदा रोग का बना रहना—ये सब कारण कृशता या दुबलेपन के हैं ।

मिहनत, बहुत ही पेट भर भोजन, भूख, प्यास, ज़ियादा दवा पीना, अत्यंत गरमी-सरदी, अत्यंत मैथुन—इनको दुबला आदमी बर्दाश्त नहीं कर सकता । दुबले आदमी को तिल्ली, श्वास, खाँसी, क्षय, गोला, बवासीर और उदररोग घेर लेते हैं । दुबलेको संग्रहणी का रोग भी होता है ।

सुश्रुत में लिखा है—जो मनुष्य बादी बढ़ानेवाले आहारों का अधिक सेवन करता है, बहुत ज़ियादा मिहनत या कसरत करता है, अत्यन्त मैथुन करता है, पढ़ने-लिखने में ज़ियादा परिश्रम करता है, बहुत डरता या शोच-फ़िक्र करता है, बहुत ही ध्यान करता या रातको जागता है, भूखा रहता है या थोड़ा खाता है अथवा कसैले पदार्थ अधिक खाता है—उसका रस-धातु कम होने के कारण से धातुओं को तृप्त नहीं करता, यानी उनके बढ़ने में सहायता नहीं देता ; इससे शरीर अत्यन्त दुबला या कृश हो जाता है ।

बहुत दुबला मनुष्य भूख, प्यास, सरदी गरमी, हवा और बरसात इनको बर्दाश्त नहीं कर सकता तथा बोझा भी नहीं उठा सकता । ऐसा आदमी सभी कामों में निकम्मा और वात रोगोंसे पीड़ित रहता है । दुर्बल मनुष्य श्वास, खाँसी, राजयक्ष्मा, प्लीहा, उदररोग (वातोदर प्रभृति), जठराग्नि की निर्बलता (विषमाग्नि या मन्दाग्नि),

गुल्म, रक्तपित्त —इनमें से किसी न किसी रोग में गिरफ़्तार होकर मर जाता है। दुर्बलता के कारण दुर्बलके भी प्रायः सभी रोग बलवान हो जाते हैं।

नींद, हर्ष, बढ़िया पलँग, सन्तोष, शान्ति, बेफ़िक्री, स्त्रीसे विरक्ति यानी अलग रहना, मिहनत न करना, प्यारों से मिलना, नया अन्न, नयी शराब, दही, घी, दूध, ईख, शालि चाँवल, उड़द, गेहूँ, गुड़ के पदार्थ, सदैव तेल लगाना, चिकने उबटन, स्नान, चन्दन लगाना, फूलमाला पहनना, सफ़ेद कपड़े पहनना, यथासमय देह का शोधन, रसायन और वृष्य योगों का सेवन—ये सब अत्यन्त दुबले को भी परम पुष्ट करते हैं। सबसे बड़ी बात "बेफ़िक्री" है। बेफ़िक्री से मनुष्य खूब मोटा होता है। कहा है:—

अचिन्तनाच्च कार्य्याणां ध्रुवं सन्तर्पणेनच ।

स्वप्नप्रसंगाच्चनरो वराहइव पुष्यति ॥

किसी बात का फ़िक्र न करने, सदैव सन्तर्पण करने और सोने से आदमी सूअर की तरह मोटा हो जाता है।

जो मनुष्य रसको बढ़ानेवाले और रस को कम करनेवाले दोनों तरह के पदार्थ सेवन करता है, अथवा यों समझिये कि, न मोटे करनेवाले और न पतले करनेवाले साधारण आहार-विहारों का सेवन करता है अथवा बढ़िया-बढ़िया माल खाता और मिहनत (कसरत) करता है, उसका शरीर न मोटा होता है और न दुबला होता है; मध्य-शरीर बना रहता है। मध्य-शरीरवाला मनुष्य भूख-प्यास सर्दी-गरमी, धूप-हवा वर्षा आदि सबको सह सकता है और सभी काम कर सकता है तथा मज़बूत रहता है। मनुष्य को सदा ऐसी ही कोशिश करनी चाहिये, जिस से शरीर न तो बहुत मोटा हो और न दुबला हो। बहुत मोटा और बहुत दुबला दोनों तरह के मनुष्य खराब होते हैं। कहा है:—

अत्यन्त गर्हितावेतौ, सदा स्थूलकृशौ नरौ ।
श्रेष्ठो मध्यशरीरस्तु, कृशः स्थूलात्तु पूजितः ॥

बहुत मोटा और बहुत दुबला दोनों तरह के आदमी निन्दित हैं। मध्यशरीर वाला मनुष्य श्रेष्ठ है। बहुत मोटे आदमी से तो दुबला ही अच्छा होता है।

चरक में लिखा है:—

स्थौल्य कार्श्ये वरं कार्श्यं, समोपकरणौ हितौ ।
यद्युभौ व्याधिरागच्छेत्, स्थूलमेवाति पीडयेत् ॥

मोटापन और दुबलापन इन दोनोंमें दुबलापन अच्छा है। दोनों के उपकरण समान होने पर भी, अगर दोनों को रोग होता है, तो मोटे को ज़ियादा तकलीफ़ होती है। अरुणदत्त नामक विद्वान् ने लिखा है कि विशूचिका प्रभृति स्वेदसाध्य रोग यदि दुबले आदमी के हों तो साध्य हैं; अगर मोटे को हों तो असाध्य हैं; क्योंकि मोटे को स्वेदन करना मना है। इसी से अगर मोटे आदमी के स्वेदसाध्य रोग हैज़ा वगैरः हों, तो इलाज में बड़ी कठिनाई होती है।

अग्निविचार

सुश्रुतमें लिखा है, पाचक नामकी जठराग्नि चार तरह की होती हैं। एक इनमेंसे निर्दोष और तीन सदोष या विकारवाली होती हैं। जैसे ;—

(१) सम (२) विषम (३) तीक्ष्ण (४) मन्द।

समाग्नि—वात, पित्त और कफकी समानतासे होती है। विषमाग्नि वायु से, तीक्ष्णाग्नि पित्त से, और मन्दाग्नि कफ से होती है। हारीत-संहिता में लिखा है—वात, पित्त और कफ के समान होने से समाग्नि होती है ; वात, पित्त और कफ के विषम (असमान) होने से विषमाग्नि होती है ; पित्त की अधिकता से तीक्ष्णाग्नि होती है और वात कफ की अधिकता से मन्दाग्नि होती है।

समाग्नि

यह अग्नि स्वभावानुसार समय पर खाये हुए भोजन को पचा देती है। यह सब धातुओंको बढ़ाती है और दोष-रहित है। समाग्निवाला सदा प्रसन्न, हृष्ट-पुष्ट और सचेष्ट रहता है। इसके शरीरमें धातु, बल और इन्द्रियां समान रहती हैं। इस अग्नि की सदा रक्षा करनी चाहिये; जिससे यह मन्द, विषम, अथवा तीक्ष्ण न हो जाय।

विषमाग्नि

यह अग्नि कभी तो भोजनको पचा देती है और कभी नहीं पचाती है। वात से विषम होकर हैज़ा यानी विशूचिका, वातादि

रोग, ग्रहणी, अतिसार, प्लीहा, गुल्म, शूल, अफारा, और उदावर्त्त पैदा करती है। यह हारीत की बात है। धन्वन्तरि जी कहते हैं, जो जठराग्नि कभी तो अन्न को पचा दे, और कभी पेट में दर्द, उदावर्त्त, अतिसार, पेटका भारीपन, आँतोंमें गुड़गुड़ाहट, प्रवाहिका आदि पैदा करे और फिर अन्नको पचा दे, उसे "विषमाग्नि" कहते हैं।

इस अग्नि का चिकने, खट्टे, तथा नमकवाले आहारों और औषधियों से प्रतिकार करना चाहिये। भोजन पर भोजन, असमय के भोजन, भारी पदार्थों के भोजन, विषम भोजन, और मलमूत्र आदि वेगों के रोकने से बचना चाहिये। अग्नि-दीपक हलके आहार करने चाहिएँ।

तीक्ष्णाग्नि

सुश्रुत में लिखा है—जो अधिक खाये-पीये को शीघ्र पचा दे, वह जठराग्नि तीक्ष्ण कहलाती है। और जब यह अग्नि बहुत ही बढ़ जाती है, तब बारम्बार खाये हुए भोजन को चट से पचा देती है और खाने की इच्छा बनी ही रहती है। पच जाने के अन्त में गले, तालू और होठ सूखते हैं; दाह और सन्ताप होता है—इस अवस्था को "भस्मक" रोग कहते हैं।

हारीत कहते हैं—जब प्रकृतिसे अधिक खा लेनेपर भी तृप्ति नहीं होती, नेत्र सदा पीले बने रहते हैं, दाह होता है और बल घट जाता है; तब तीक्ष्ण अग्नि कहते हैं। जब वात और कफ क्षीण हो जाते हैं और पित्त तीक्ष्ण हो जाता है, भोजन की इच्छा बनी ही रहती है,खाया हुआ पच जाता है; तब "भस्माग्नि" या "भस्मक" कहते हैं।

भस्मक रोग से पीलिया, पित्तज अतिसार, राजयक्ष्मा, हलीमक, भ्रम, ग्लानि, यकृत रोग, प्रमेह, शूल, मूर्च्छा, रक्तपित्त, अम्लपित्त, मूत्रकृच्छ्र—ये उपद्रव होते हैं। शरीर क्षीण हो जाता है। अन्नमें

मन लगा रहता है। भस्मक-रोगी यदि काठ और पत्थर भी खा जाय, तो वह भी पच जाते हैं।

तीक्ष्णाग्निवालों को मीठे, चिकने, शीतल आहार-पान देने चाहियें अथवा जुलाब देकर प्रतिकार करना चाहिये। भस्माग्नि या अत्याग्नि का भैंस के दूध, दही और घी प्रभृति से प्रतिकार करना चाहिये।

मन्दाग्नि

इस अग्निवाले को थोड़ासा खाया-पीया भी यथार्थ रूपसे नहीं पचता। धन्वन्तरिजी कहते हैं, जो अग्नि बहुत थोड़ेसे खाने को भी बड़ी देर में पचाती है और पचाने से पहले पेट में भारीपन, सिर में भारीपन, श्वास, खांसी, राल बहना, ओकी, शरीर में थकान आदि उपद्रवों को पैदा करती है, उसे "मन्दाग्नि" कहते हैं। हारीत कहते हैं, मन्दाग्निवाले के कफ अधिक होता है और गुल्मोदर रोग पैदा करता है।
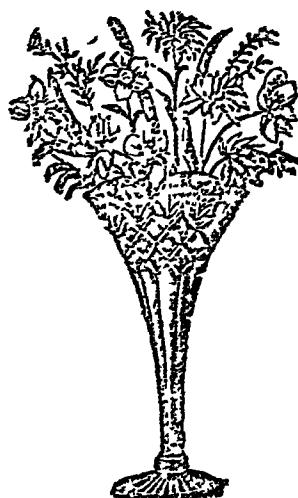
अवस्था-विचार।

अवस्था तीन प्रकार की होती हैं:—

(१) बाल अवस्था (२) मध्यावस्था (३) वृद्धावस्था।

सोलह वर्ष से नीचे बालावस्था, सोलह से सत्तर वर्ष तक मध्यावस्था, और सत्तर सालसे ऊपरकी अवस्थाको वृद्धावस्था कहते हैं।

बालक तीन प्रकार के होते हैं:— (१) दूध पीनेवाले, (२) दूध और अन्न दोनों खानेवाले, (३) अन्न खानेवाले। एक वर्ष के बालक दूध पीनेवाले, दो वर्ष के बालक दूध और अन्न दोनों खानेवाले; और दो साल से ऊपर के अन्न खानेवाले होते हैं।

मध्यावस्था के भी चार भेद हैं:—(१) बढ़ाव की अवस्था, (२) यौवनावस्था, (३) परिपूर्णता की अवस्था, (४) घटाव की अवस्था।

बीस वर्ष तक बढ़ाव की अवस्था होती है; यानी बीस वर्ष तक मनुष्य बढ़ता है। तीस वर्ष तक यौवनावस्था यानी जवानी रहती है। चालीस वर्ष तक सब धातु-उपधातुओं, सब इन्द्रियों और बल की पूर्णता होती है। इसके बाद, इकतालीसवें वर्ष से सत्तर वर्ष तक, कुछ न कुछ घटता-रहता है। कोई-कोई कहते हैं, बीस से साठ बरस तक शरीर की वृद्धि होती है; तीस से साठ वर्ष तक जवानी रहती है और चालीस से साठ वर्ष तक सब धातुओं, इन्द्रियों

और बल-वीर्य्य की सम्पूर्णता होती है। इसके बाद घटाव आरम्भ होता है। सत्तर वर्ष के बाद सब धातुओं, इन्द्रियों, बल-वीर्य और उत्साह में कमी होने लगती है; शरीर में सलवटें और झुर्रियाँ पड़ने लगती हैं। सारे बाल सफेद—सफेद ही नहीं, पीले हो जाते हैं और उड़ जाते हैं। श्वास और खाँसी प्रभृति रोग घेर लेते हैं। इन रोगों के मारे मनुष्य बिल्कुल असमर्थ हो जाता है। ऐसी हालत हो जाती है, जैसे मेह से पुराने मकान की हो जाती है। ऐसी अवस्था होने पर मनुष्य को "वृद्ध" कहते हैं। इस अवस्था में बादी का बहुत ही ज़ोर हो जाता है।

चरक में लिखा है—स्थूल-भेद से अवस्था तीन होती हैं :—(१) बाल्य, (२) मध्यम (३) वृद्ध। बाल्यकालमें सभी धातुएँ कच्ची रहती हैं; मूँछ दाढ़ी आदि नहीं निकलती हैं। इस अवस्थावाले का बल, क्लेश सहने-योग्य नहीं होता और अधूरा रहता है। बाल्यावस्था में कफ प्रधान होता है; यानी इस उम्र में कफ का ज़ोर रहता है। सोलह वर्ष तक बाल्यावस्था रहती है। तीस वर्ष तक सब धातुएँ बढ़ती हैं और चित्त चञ्चल या डाँवाडोल रहता है। इस मध्यमावस्था में बल, वीर्य्य, पुरुषार्थ, पराक्रम, स्मरण, वचन, विज्ञान आदि और सब धातुएँ उत्तम रहती हैं। साठ वर्ष तक मध्यमावस्था कहलाती है—इसके बाद मनुष्य की धातु, इन्द्रियें, बल, पौरुष, पराक्रम, ग्रहण, स्मरण, वचन, और विज्ञान, ये घटने लगते हैं; धातुएँ ख़राब हो जाती हैं। इस अवस्था में वायु बढ़ जाती है। इस तरह इकसठ से सौ वर्ष तक वृद्धावस्था कहलाती है। अनेक लोग सौ वर्ष से भी अधिक जीते हुए देखनेमें आते हैं।

कौनसी अवस्था किस दोषका समय है?

बाल्यावस्था—कफ का समय है।

मध्यावस्था—पित्त का समय है।

वृद्धावस्था—वायुका समय है।

बाल्यादि दश पदार्थोंका ह्रास

शारङ्गधर महोदय ने लिखा है—जन्म होने के दस वर्ष बाद बालकपन नहीं रहता ; बीस वर्ष के बाद शरीर का बढ़ना बन्द हो जाता है ; तीस वर्ष के बाद शरीर मोटा नहीं होता अथवा रौनक़ मारी जाती है। चालीस साल बाद स्मरण रखने यानी याद रखने की सामर्थ्य नहीं रहती। पचास साल बाद शरीर ढीलासा हो जाता है। साठ साल बाद नज़र कम हो जाती है। सत्तर साल बाद वीर्य्य नहीं रहता। अस्सी वर्ष के बाद पराक्रम नहीं रहता। नव्वे वर्ष के बाद अक़्ल मारी जाती है। सौ वर्ष के बाद कर्मेन्द्रियाँ बेकाम हो जाती हैं। एक सौ बीस वर्ष बाद प्राणी चोले को छोड़ देता है। इस तरह हर दस साल में एक-एक चीज़ घटती जाती है।

बाल्यावस्था में कफ का सञ्चय होता है ; जवानी में पित्त बढ़ा हुआ रहता है और बुढ़ापे में वायु बढ़ा हुआ रहता है। वैद्य को इस बात का विचार करके दवा तजवीज़ करनी चाहिये। बालक और वृद्धको अग्नि-कर्म (दागना वगैरः),क्षार-कर्म, विरेचन—जुलाब और स्वेदादि (पसीने निकालना प्रभृति) से बचाना चाहिये ; अर्थात् बूढ़े और बालक को जुलाब वगैरः न देना चाहिये। यदि ऐसीही ज़रूरत हो; जुलाब देने, दागने वगैरः बिना काम होता न दीखे, तो बहुत ही आहिस्ता-आहिस्ता, क़दम-क़दम पर सोच-समझकर जुलाब वगैरः हलके देने चाहियें। अवस्था-विचार से ये तो वैद्य का एक काम हुआ।

दूसरा काम अवस्था के विचार से मात्रा तजवीज करना है। अवस्था के बढ़ने पर उत्तरोत्तर दवा की मात्रा जवानी तक बढ़ती

है। इसी तरह बुढ़ापे में पहले की अपेक्षा यथाक्रम मात्रा घटा-घटा कर दी जाती है। मान लो, एक मास के बालक को एक रत्ती दवा, दो मास के को दो रत्ती, तीन मास के को ती... वर्ष के बालक को एक माशे, दो वर्ष के को दो माशे, इसी तरह सोलह वर्ष तक माशे-माशे बढ़ा कर १६×१=१६ माशे तक ले जावें। सोलह वर्ष के बाद बढ़ाने की ज़रूरत नहीं। सोलह वर्ष से सत्तर वर्ष तक सोलह माशे का ही प्रमाण रहेगा। सत्तर वर्ष के बाद जैसे बालक की मात्रा बढ़ाई थी, घटाते चले जाओ। बालक और बूढ़े की चिकित्सा समान है। कल्क, चूर्ण, और काढ़े की मात्रा बूढ़े को बालक से चौगुना देनी चाहिये।

नोट—हमने ऊपर जो १ रत्ती, २ रत्ती या १६ माशे की मात्रा लिखी है, यह सब दवाओं की मात्रा न समझ लेना। कितनी ही दवाएँ १, २ चाँवल जवानोंको दी जाती हैं। बालकों को तो वही बाजरे बराबर दी जाती हैं। हमने एक रत्ती, दो रत्ती की मात्रा लिख कर दवा की मात्रा तजवीज करने का रास्ता समझाया है। हाँ, अनेक दवाएँ इसी परिमाण में बालकों और जवानों तथा बूढ़ों को दी जा सकती हैं।

हाँ, अवस्था का विचार करते समय सुश्रुत-चरक के लेखानुसार आप साठ वर्षके मनुष्यको जवान समझकर चिकित्सा न कीजियेगा, यदि ऐसा कीजियेगा तो धोखा खाइयेगा। आजकल पचास सालके बाद वृद्धावस्था का आरम्भ हो जाता है। अच्छा हो, यदि आप अवस्था के लक्षण देख कर आयु का परिमाण ग्रहण करें। यही सफलता की कुञ्जी है।

बालक और वृद्धकी चिकित्साके सम्बन्धमें कुछ उपयोगी नियम।

१ बालक की आँखोंमें काजल प्रभृति लगाना, उबटन लगाना,

खोढ़ी करना, तेल लगाना, स्नान कराना, वमन कराना, निरूहण वस्तिका प्रयोग करना (गुदामें पिचकारी लगाना) प्रभृति कर्म— बालक के हक़में जन्मसे ही हितकारी हैं; अर्थात् बालक के पैदा होते ही, यदि उपरोक्त काम किये जायँ, तो बालक सदा सुखी और आरोग्य रहेगा।

२ वैद्यको चाहिए कि, पाँच वर्षकी उम्र होनेके बाद बालकको कवल या गण्डूष आदि धारण करावे यानी मुखमें कुछ दवा डालकर कुल्ले करावे; आठ वर्षके बाद बालकको सूँघने या नाकमें चढ़ाने की दवा देवे; सोलह वर्षकी अवस्था हो जानेके बाद जुलाब देवे और बीस वर्ष की उम्र के बाद स्त्री-सम्भोग की सलाह दे।

३ दूध पीते बालकको दवाकी मात्रा खूब कम देनी चाहिए। ऐसी दवा देनी उचित है जो मौताद में थोड़ी हो खूब लाभदायक हो। अच्छा हो, यदि बालकके बजाय माता या दूध पिलानेवाली धाय को दवा दी जाय।

४ बालक और वृद्धको वमन विरेचन न कराना चाहिये। यदि सख़्त ज़रूरत हो, तो हल्की दवा देनी चाहिए।

५ छोटे बालकों को पहले महीनेमें मा के दूध, सहत, चीनी या गायके घी में दवा देनी चाहिये।
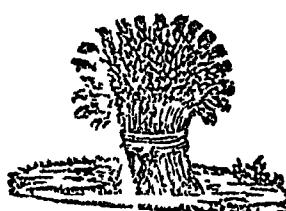
देश-विचार।

चिकित्सकको चिकित्सा-कर्म्म करते समय देशकी परीक्षा करनी पड़ती है। रोगीका जन्म किस देशमें हुआ है; रोगी किस देशमें बड़ा हुआ है; रोग किस देशमें हुआ है; उस देश या इस देश की आब-हवा कैसी है; इस देशमें किस दोषका कोप रहता है; यह देश कफ प्रधान है या वात प्रधान अथवा पित्त प्रधान; इस देशके प्राणियोंके आहार-विहार कैसे हैं; अथवा बल, सत्व, सात्म्य, दोष प्रभृति कैसे हैं इत्यादि बातोंके जाननेकी वैद्यको ज़रूरत होती है और इनके जाननेके लिये ही देश-परीक्षा की जाती है।

देश तीन तरहके होते हैं;—

(१) आनूप, (२) जांगल, (३) साधारण

आनूप देश।

जहाँ बहुतसे तालाब, झरने, झील प्रभृति जलाशय हों; जहाँ ऊँचे नीचे नदी नाले हों; बहुतही वर्षा होती हो; कोमल शीतल पवन चलती हो, अनेक पर्वत और बड़े-बड़े वृक्ष हों; कोमल सुन्दर स्वरूप वाले पुरुष जहाँ अधिक हों और जहाँ कफ और वात के रोग अधिकतासे होते हों, उसे "आनूपदेश" कहते हैं। वाग्भटने लिखा है, आनूपदेश कफ-प्रधान देश है। इस देशके जीव, औषधियाँ अन्नजल प्रभृति सभी कफ-प्रधान होते हैं।

हारीत-संहितामें लिखा है—जहाँकी पृथ्वी हरी-हरी घाससे

शोभायमान हो, चाँवलोंके खेतोंसे पृथ्वी रमणीक हो रही हो, जहाँ भारी और मधुर रसवाली ईख बारहों महीने होती हो, अनेक तरह के चाँवल और गेहूँ पैदा होते हों,मधुर रसके खानेसे वात और कफ का कोप होता हो, उसे "आनूप देश" कहते हैं । इन लक्षणोंवाला देश "बंगाल प्रान्त" है । बंगालमें जलाशय बहुत हैं, वर्षा भी बहुत होती है, चाँवल भी बहुत पैदा होते हैं, वृक्ष भी बहुत हैं ; जहाँ देखो हरियाली ही हरियाली है । ईख बारहों मास होती है ।

जांगल देश ।

सुश्रुतमें लिखा है,—जो आकाशकी तरह ऊँचाई-निचाई रहित हो यानी एकसा हो,जहाँ दूर-दूर पर और कहीं-कहीं पास-पास काँटेदार वृक्ष हों, वर्षा थोड़ी होती हो, जलाशय कम हों, गरम और तेज़ हवा चलती हो, कहीं-कहीं छोटे-छोटे पहाड़ हों, गठीले और पतले शरीरवाले पुरुष अधिक हों, जहाँ वात और पित्तके रोग अधिकतासे होते हों, "उसे जांगल देश" कहते हैं । हारीतमें लिखा है— जहाँ काँटोंदार वृक्ष हों, मृत-तृष्णा हो, यानी जल तो न हो मगर हिरनोंको जल मालूम हो, जहाँ पत्र-हीन वृक्ष हों, जहाँ की ज़मीन रेतीली हो और सूरजकी किरणोंसे तप रही हो, जहाँ कुओंका जल घटता जाय, जहाँ चाँवल और ईख पैदा न होते हों, जहाँ रक्त और पित्त जल्दी कुपित होते हों—उस देशको "जांगल देश" कहते हैं । वाग्भटने जांगल देशके जीव जन्तु और अन्न आदिको वायु-प्रधान कहा है । ऐसा देश राजपूताना प्रान्तमें "मारवाड़" है । मारवाड़की ज़मीन रेतीली है, वर्षा वहाँ कम होती है, जलाशय कम हैं, चाँवल और ईख की खेती वहाँ नहीं होती, वहाँ गरम हवा चलती है और काँटेदार वृक्ष भी वहाँ बहुत होते हैं ।

साधारण देश ।

जिस देशमें आनूप और जांगल दोनोंके लक्षण अधिकतासे हों,

जहाँ न बहुत रूखापन हो और न चिकनापन हो, जहाँ न बहुत जाड़ा हो न बहुत गरमी हो, साधारण जल हो, न बहुत वर्षा होती हो न मारवाड़की तरह सूखा ही रहता हो, हरियाली हो मगर बंगाल की तरह न हो, ऐसे देशको "साधारण देश" कहते हैं। ऐसा देश "युक्तप्रान्त" मालूम होता है, क्योंकि वहाँ बङ्गदेश की तरह थोड़ी बहुत हरियाली है और कहीं-कहीं मारवाड़की तरह सूखे मैदान भी हैं। वहाँ वर्षा बङ्गालसे कम और मारवाड़से अधिक होती है। चाँवल और ईखकी खेती होती है। मारवाड़में पैदा होनेवाले बाजरा, टेंटी, ग्वारकी फली प्रभृति पदार्थ भी पैदा होते हैं; गरमीमें गरम हवा या लूएँ भी चलती हैं, कुए बावड़ी और तालाब नदियों की कमी नहीं हैं, मगर बंगालकी तरह अधिकता भी नहीं हैं। साधारण देश वाग्भट के मतसे समदोष-युक्त होता है। इसके जीव-जन्तु और औषधियाँ भी समदोष-युक्त होती हैं।

ऋतु-विचार।

छै ऋतुएँ

एक वर्ष में बारह महीने होते हैं। बारह महीनोंमें, दो-दो महीनोंकी, छै ऋतुएँ होती हैं। जैसे;—

१ शिशिर = माघ, फागुन

२ वसन्त = चैत्र, वैशाख

३ ग्रीष्म = ज्येष्ठ, आषाढ़

४ वर्षा = श्रावण, भाद्रपद

५ शरद् = आश्विन, कार्त्तिक

६ हेमन्त = मार्गशिर, पौष

दक्षिणायन और उत्तरायण।

चन्द्रमा और सूर्य को काल-विभाजक मानकर, वर्ष को दो भागोंमें बाँटते हैं :—(१) दक्षिणायन (२) उत्तरायण। इन छै ऋतुओं में से वर्षा, शरद् और हेमन्त का दक्षिणायन; और शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म का उत्तरायण होता है।

वर्षा, शरद, हेमन्त = दक्षिणायन

शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म = उत्तरायण

प्राणियोंके बलके घटने-बढ़नेके कारण।

दक्षिणायन की तीन ऋतुओंमें चन्द्रमा बलवान होता है और

उत्तरायणकी तीन ऋतुओंमें सूर्य्य बलवान होता है। चन्द्रमा के समय में खट्टे, नमकीन और मीठे रस क्रमसे बलवान होते हैं तथा उत्तरोत्तर प्राणियों का बल बढ़ता है। सूर्य्यके बलिष्ट होने पर कड़वा, कसैला और चरपरा ये रस क्रमसे बलवान होते हैं और उत्तरोत्तर प्राणियोंका बल घटता जाता है। चन्द्रमा पृथ्वीको तर करता है, सूर्य्य सुखाता है और वायु प्रजा का पालन करता है।

दोषोंके सञ्चय कोप प्रभृति के अनुसार ऋतु-विभाग।

दोषों के सञ्चय, कोप और शान्तिके कारण से, विद्वान् वैद्योंने छह ऋतुओंका विभाग इस तरह किया है :—

१ ग्रीष्म=वैशाख, ज्येष्ठ
२ प्रावृट्=आषाढ़, श्रावण
३ वर्षा=भाद्रपद, आश्विन
४ शरद्=कार्तिक, मार्गशीर्ष
५ हेमन्त=पौष, माघ
६ वसन्त=फागुन, चैत

दोषों का सञ्चय, कोप और शान्ति।

वात—ग्रीष्म ऋतुमें सञ्चय होता है, प्रावृट ऋतुमें कोप करता और शरद् ऋतुमें शान्त हो जाता है।

पित्त—वर्षा ऋतु में सञ्चय होता है, शरद् ऋतु में कुपित होता है और वसन्त ऋतुमें शान्त हो जाता है।

कफ—हेमन्तमें सञ्चय होता, वसन्तमें कुपित होता, और प्रावृट् ऋतुमें शान्त हो जाता है। यह माधवनिदान-कर्त्ताने लिखा है।

सुश्रुतमें लिखा है, पित्त कोप-जनित यानी पित्तके कुपित होनेसे होनेवाले रोगोंकी शान्ति हेमन्त ऋतुमें स्वयं हो जाती है; कफके

रोगोंकी शान्ति स्वयं ग्रीष्म ऋतुमें हो जाती है, और वादीके रोगोंकी शान्ति स्वयं शरद् ऋतुमें हो जाती है।

बङ्गसेन महोदयने लिखा है—वर्षा ऋतु में वायु कुपित होता है, शरद् ऋतुमें पित्त कुपित होता है और वसन्तमें कफ कुपित होता है—और फिर हेमन्तमें वायु कुपित होता है, रूखता बढ़ती है तथा शिशिरमें वायु कुपित होता है, और ग्रीष्ममें पित्त कुपित होता है। नीचे औरभी अच्छी तरह समझिये :—

वायु—वर्षा, हेमन्त और शिशिरमें कुपित होता है।

पित्त—शरद् और ग्रीष्म ऋतुमें कुपित होता है।

कफ—वसन्त ऋतुमें कुपित होता है।

दिन रातमें ऋतु विभाग।

दिनका पहला पहर···वसन्त···कफ-कोपका समय है।
„ दूसरा „ ···ग्रीष्म
„ तीसरा „ ···प्रावृट्···वायु-कोप का समय है।
„ चौथा „ ···वर्षा
आधी रात ···शरद्···पित्त-कोप का समय है।
पिछली रात ···हेमन्त

नक्शा।

	वात	पित्त	कफ
संचय	ग्रीष्म दिन का दूसरा पहर वैशाख—ज्येष्ठ	वर्षा दिन का चौथा पहर भादों—क्वार	हेमन्त पिछली रात पौष—माघ
कोप	प्रावृट् दिन का तीसरा पहर आषाढ़—श्रावण	शरद् आधीरात कातिक—अगहन	वसन्त दिन का पहला पहर फाल्गुन—चैत्र
शान्ति	शरद् आधी रात कार्त्तिक—अगहन	वसन्त दिन का पहला पहर फाल्गुन—चैत्र	प्रावृट् दिन का तीसरा पहर आषाढ़—श्रावण

बंगसेन के मतसे दिन रातमें दोषों का समय ।

दिन का प्रथम भाग···कफ का समय ।
" " मध्य " ···पित्त का समय ।
" " अन्तिम " ...वायु का समय ।
रात का प्रथम " ···कफ का समय ।
" " मध्य " ···पित्त का समय ।
" " अन्तिम " ...वायु का समय ।

अथवा

यों समझिये कि सवेरे ६ बजेसे १० बजे तक वसन्त ऋतु सदा रहती है, इसलिये वह कफकी कुपित होनेका समय है । दिनके दस बजे से २ बजे तक सदा गरमी की सी ऋतु रहती है, इसलिये वह पित्त के कुपित होने का समय है । दिनके २ बजे से सन्ध्या के ६ बजे तक वर्षाकाल सा मालूम होता है, इस लिये वह वायुके कुपित होने का समय है । इसी तरह रात के तीनों भागों को कफ, पित्त और वायु का समय समझ लीजिये । हमारी समझमें यह विभाग सीधा और बहुत काम का है ।

ऋतुओंमें मनुष्योंकी अग्नि और बलाबल ।

वर्षा और ग्रीष्म ऋतुमें मनुष्य आदिकोंमें दुर्बलता होती है ; शरद् और वसन्तमें मनुष्यों को देहमें मध्यम बल होता है; हेमन्त और शिशिर ऋतुमें पूर्ण बल रहता है ।

शीतकाल यानी जाड़ेमें शीतल वायु के संस्पर्शसे शरीरके भीतर रुक कर बलिष्ट प्राणियों की अग्नि बलवान होती है ; इससे शीत-कालमें मनुष्य की अग्नि गुरु मात्रा और गुरु द्रव्यको पचा सकती है । मतलब यह है, कि जाड़ेमें अग्नि तेज़ रहती है, इसलिये इस मौसममें अधिक और देरमें पचनेवाली भारी चीज़ भी आसानीसे पच

जाती है। यदि जाड़ेमें बलवान अग्निको यथेष्ट आहार या ईंधन नहीं मिलता है, तो वह प्राणीकी देहके रसको सुखाती है। रसके सूख जानेसे शरीर रूखा हो जाता है, तब शरीर का वायु कुपित हो जाता है। इसलिये जाड़ेमें मनुष्यों को चिकने, खट्टे और नमकीन रस, शराब, मांस और मधु प्रभृति विधिपूर्वक सेवन करने चाहियें।

वसन्तमें हेमन्तकालका सञ्चित कफ सूर्य की गरमी से इधर-उधर चलकर शरीर की अग्नि को नष्ट कर देता है; इसी से इस ऋतु में अनेक प्रकार के रोग होते हैं।

ग्रीष्म ऋतुमें सूर्य्यकी तेज़ी और भयानक गरमीके कारण मनुष्यों की देह दुर्बल और जठराग्नि कमज़ोर हो जाती है।

वर्षाकालमें, गरमीके मौसम की कमज़ोर हुई अग्नि, बरसात की ख़राब हवा वग़ैर: से औरभी दुर्बल हो जाती है। बरसातमें पानी बरसता है, ज़मीनसे भाफ़ निकलती है और जल का पाक खट्टा होता है, इससे अग्नि-बल के कम होनेसे त्रिदोष कुपित होता है।

शरद् ऋतुमें, बरसात की सर्दी खानेके पीछे, सूर्य्य की गरमी से सञ्चित हुआ पित्त कुपित होता है।

ऋतुओंमें पथ्यापथ्य।

हेमन्त

हेमन्त ऋतुमें वादी नाश करनेवाले सुगन्धित तेलोंकी मालिश कराना, उबटन लगाना, सिरमें तेल डालना, गरम जलसे नहाना, गरम मकानमें रहना, ढकी सवारीमें सैर करना, कसरत-कुश्ती करना, रेशमी और ऊनी तथा रूई के वस्त्रों को पहनना-ओढ़ना और बिछाना; अगर चन्दन का लेप करना, रातको ऊँचे-ऊँचे और पुष्ट स्तनों वाली स्त्रियों, जिनके अगर का लेप होरहा है, जो कामदेवके मनको भी मथने वाली हैं, उनके साथ सुन्दर गुदगुदे पलँग पर सोना और सदोन्मत्त होकर इच्छानुसार मैथुन करना, ये सब पथ्य हैं।

इस शीत ऋतुमें, ऊपर कह आये हैं, शीतल हवाके लगने से मनुष्य की गरमी बाहर नहीं निकलती, इसलिये बलवान मनुष्यों की "पाचक अग्नि" अत्यन्त प्रबल होकर बहुत से भोजन और भारी पदार्थों को भी पचाने की सामर्थ्य रखती है; इस कारण इस मौसम में शराब पीने वाले शराब पीवें, मधु पान करें, दूध पीवें, गरम जल पीवें, चाँवलों का भात खायँ, तथा अन्यान्य चिकने और पुष्टिकारक पदार्थ खायँ, हुक्का-तम्बाकू पीवें, अच्छी-अच्छी रसालाओंका सेवन करें, मांस खाने वाले उत्तम प्रकार के मांस खायँ। इस मौसम में बर्फ, सत्तू, अत्यन्त थोड़ा भोजन, बहुत हवा, और कड़वे, कसैले, चरपरे रूखे और बादी करने वाले आहार-विहार से बचें। हेमन्त और शिशिर में कोई बड़ा भेद नहीं; इसलिये हेमन्त में लिखे हुए आहार-विहार ही शिशिर में पथ्य और अपथ्य समझने चाहिएँ। शिशिर ऋतुमें रूखापन और सरदी,—हवा और बादलोंके कारण से अधिक हो जाती है; इसलिये इस ऋतुमें कड़वे, कसैले, चरपरे, हलके और शीतल आहार-विहारोंसे और भी अधिक बचना चाहिये। गरम घरमें रहना, गरम जलसे नहाना और गरम जल पीना, इन बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। गरम जल पीने वालेकी आयु नहीं घटती, इस बातको याद रखना चाहिये।

वसन्त।

वसन्त ऋतु में हेमन्त का जमा हुआ कफ सूरज की गरमी से चलायमान होकर कुपित होता और अनेक रोग पैदा करता है, इस-लिये इस मौसम में क़य करना, जुलाब लेना, लङ्घन करना, प्रधमन करना, कसरत करना, कुल्ले करना, कवल मुख में रखना, उबटन लगाना, मिहनत करना, हाथी घोड़े की सवारी करना; चन्दन, केसर, अगर और कपूर का लेपन करना, अञ्जन लगाना; अदरख, मूली, पोई, पेठा, पक्का खीरा, कचनार, चौलाई, ज़मीकन्द, करेला, परवल, बैंगन और अन्यान्य कड़वे साग खाना; जौ साँठी और शाली चाँवल,

कोदों तथा लवा प्रभृति का मांस खाना एवं त्रिकुटा, त्रिफला, पीपलामूल, असगन्ध अडूसे और भाँगका सेवन,—ये सब पथ्य यानी हितकारी हैं। जिस स्त्रीने चन्दन और अगर से अपने शरीर को सुवासित कर रक्खा है, जिसने साफ़-सफेद कपड़े पहन रक्खे हैं, जिसकी छातियाँ कड़ी और ऊँची-ऊँची हैं, जिसकी दोनों जाँघें पुष्ट हैं, जिसने अनेक प्रकारके ज़ेवर पहन रखे हैं, जो रूप और यौवन के नशे से मतवाली होरही है, ऐसी स्त्री को बाग़-बग़ीचोंमें लेजाकर उसके साथ आनन्द करना यह भी हितकारी है।

ग्रीष्म।

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य अपनी तेज़ी से जगत् के सार यानी तरी को सोख लेता है, इसलिये इस ऋतु में पतले और शीतल द्रव्य तथा चिकने अन्न-पानका सेवन करना अच्छा है। इस मौसम में शर्करोदक, चीनी मिला हुआ पतला सत्तू, हिरन प्रभृति जङ्गली जानवरों का मांस, घी और दूधमें मिले शाली चाँवल इनको खानेवाला गरमी से दुःखित नहीं होता। शराब का इस मौसम में न पीना ही अच्छा है; यदि पीये बिना न रहा जाय तो थोड़ी और अधिक पानी मिलाकर पीनी चाहिये। दिनमें शीतल घरमें रहना, रातको चन्द्रमा की चाँदनी में छत पर सोना, चन्दन कपूर आदिका लेप करना, ख़स की टट्टियाँ लगवा कर ख़स के या कपड़े के पंखे की हवा आती हो ऐसे स्थानमें दोपहरी काटना, रात को चन्दन के जल से भीगे पंखे की हवा सेवन करना, शीतल जल पीना, शीतल सुगन्धिवाले फूलों को सूँघना और उनकी माला पहनना, हीरा मोती प्रभृति सुन्दर रत्नों का पहनना, दोपहर के समय नीले, लाल या सफेद कमल के पत्तों की सेज पर सोना, स्त्रियों या मित्रों के साथ जल-विहार करना, कपूर के गहने पहनना, चमेली के फूलों की माला पहनना, मनहरण करनेवाली प्रौढ़ा स्त्रियों के साथ सुन्दर छायादार बाग़में घूमना, फ़व्वारों की बहार देखना, मलमल प्रभृति महीन और बारीक वस्त्रों

का पहनना, तथा पुराने जौ, गेहूँ, बढ़िया सफ़ेद चाँवल, खूब सफ़ेद चीनी, मूँग, शिखरन, मिश्री मिला हुआ दूध, गाय या भैंस का मक्खन, घी, खटाई, केलेकी गहर, दाख, कटहल, और आम—ये सब आहार और विहार गरमी के मौसम में मनुष्यके लिए रोगों से बचानेवाले, सुख देनेवाले और परम पथ्य हैं। इस ऋतु में सन्ध्या-समय बहुतही थोड़ी एक या दो रत्ती भाँग को सौंफ, कासनी, गुलाब के फल, इलायची, खीरे ककड़ी के बीज, गोलमिर्च प्रभृति के साथ घोट कर पीने से हैज़े का भय नहीं रहता और खाया-पीया चट पच जाता है; मगर अधिक भाँग पीना हानिकारक है।

इस मौसम में कसरत-कुश्ती, अधिक मिहनत, सूरजकी धूप, राह चलना; कड़वे, खट्टे, चरपरे और नमकीन पदार्थों का सेवन, स्त्री-प्रसङ्ग, गरम और रूखे पदार्थ, चिन्ता-फिक्र प्रभृति तथा गरम और दाह करनेवाले एवं गरमी बढ़ानेवाले आहार-विहारोंसे बचना चाहिये।

वर्षाकाल।

इस मौसम में अग्निबलके चीण होनेसे त्रिदोष कुपित होते हैं; इसलिये वर्षाकालमें त्रिदोष-नाशक विधियों का अनुष्ठान करना चाहिये। जिस दिन ज़ोर से हवा चल रही हो, पानी बरस रहा हो, सर्दी का ज़ोर हो, उस दिन अत्यन्त खट्टे, नमकीन और हलवा प्रभृति चिकने पदार्थ खाने चाहिएँ। ऐसा करने से वर्षाकाल की वायु शान्त रहती है। वर्षा का जल, गरम करके शीतल किया जल, कूए या तालाबका पानी पीना चाहिये। जंगली जानवरों का मांस, थोड़ी शराब, अरिष्ट, शहद मिले भोजनके पदार्थ, पुराना शहद, पुराने गेहूँ, काला नोन, खुशबूदार महीन कपड़े, सुगन्धिवाले फूलों की माला, बौछार न आती हो ऐसा घर, सूखे कपड़े और जूते पहन कर फिरना,—ये सब आहार-विहार मनुष्यके लिये सुखकारी और हितकारी हैं।

इस मौसम में परिश्रम, धूप, तालाबका जल, नदी का जल, कुहरा, ओस, दिनमें सोना, मैथुन, शीतल पवन, शीतल और रूखे पदार्थ, कसरत, पानी में नंगे पैरों फिरना, गीले वस्त्र पहनना, वर्षा में भीगना,—ये सब मनुष्यको दुःखदायी या अपथ्य हैं; अतः इनसे बचना परमावश्यक है।

शरद्।

इस मौसम में पित्त का कोप होता है; इसलिये इस मौसममें मीठे, हलके, शीतल, किसी क़दर कड़वे, पित्त नाशक पदार्थ, भूख लगने पर परिमाण के साथ, सेवन करने चाहिएँ। लवा, सफेद तीतर, हिरन, मेढ़ा, बारहसिंगा, और खरगोश का मांस, शाली चाँवल, जौ, गेहूँ, घृत-पान, नदी का जल, शहद, दूध, आँवले, परवल, चीनी, ईख, कपूर, सरोवर का जल, शीतल जल, हंसोदक, चन्दन, चांदनी, महीन वस्त्र, सुगन्धित फूलों की माला, मोतियोंका हार, गीत सुनना, नाच देखना—ये सब आहार-विहार शरद् ऋतु में पथ्य हैं। इस मौसममें वर्षाकाल के सञ्चित पित्त को जुलाब देकर निकालना ज़रूरी और लाभदायक है। फस्त खुलवाना भी अच्छा है।

इस मौसम में चरबी, तेल, ओस, जलके और अनूपदेश के जानवरों का मांस, चार, दही, दिनमें सोना, पूरब की हवा, तेज़ हवा, अत्यन्त भोजन, धूप, काँजी, मदिरा, कूए का जल, उड़द, तिल, चरपरे और रूखे पदार्थ, इन सब आहार-विहारों से परहेज़ करना चाहिये।

किस मौसममें किस दिशा की हवा अच्छी होती है?

१ शिशिर अर्थात् माघ फागुनमें पूरबकी हवा अच्छी है।

२ हेमन्त यानी अगहन पौष में आग्नेय दिशा की हवा अच्छी है।

३ वसन्त यानी चैत वैशाखमें दक्खन की हवा अच्छी है ।

४ ग्रीष्म यानी जेठ आषाढ़में नैऋत की हवा अच्छी है ।

५ शरद् यानी क्वार कातिक में वायव्य की हवा अच्छी है ।

६ वर्षा यानी सावन भादोंमें पच्छिमकी हवा अच्छी है ।

नोट—शिशिर और वसन्त यानी माघ फागुन और चैत, वैशाख में उत्तर की हवा भी अच्छी होती है ।

ज़हरीली हवा का समय ।

अगहन, पौष, कातिक, माघ और आषाढ़ में तथा मौसमोंके मेल के समय हवा विषैली यानी ज़हरीली होती है ।

जब किसी नगर, गाँव या देश की हवा ज़हरीली हो जाती है ; तब गायों को तिलक रोग, मनुष्यों को राज-रोग, हाथियों को पावक रोग और घोड़ों को वेद्य रोग होता है ।

वैद्यको सदा हाथियों के पित्त को, घोड़ों के कफ को और मनुष्योंके वायु की रक्षा करनी चाहिये ।

ऋतु विपर्य्यय ।

जब प्रत्येक ऋतु ठीक होती है ; यानी गरमी में गरमी, सर्दीमें सर्दी और वर्षाकालमें वर्षा ठीक होती है; तब अन्न, शाक प्रभृति औषधियाँ और जल ठीक रहते हैं। ऐसे अन्न-जलके सेवन करनेसे मनुष्यों की आयु, उनका बल-पराक्रम प्रभृति ठीक रहते हैं । किन्तु यदि हेमन्त ऋतुमें सरदी नहीं पड़ती, ग्रीष्ममें गरमीमें नहीं पड़ती, वर्षामें पानी नहीं बरसता; तब अन्न जल आदि बिगड़ जाते हैं । प्राणी उन्हींको खाते पीते हैं, इससे उनको अनेक रोग होते हैं अथवा महामारी (प्लेग), हैज़ा प्रभृति से मृत्युकारक समय उपस्थित हो जाता है। यह बात धन्वन्तरि भगवान ने सुश्रुत से कही है। आजकल ऋतुएँ ठीक नहीं होतीं, इसीसे इस देशमें प्लेग, हैज़ा प्रभृति प्राणनाशक रोग ऊधम मचाये रहते हैं ।

ऋतु-सन्धि।

दो-दो ऋतुओं के आदि के और अन्त के सात-दिनों को "ऋतु-सन्धि" कहते हैं। जैसे; ग्रीष्म ऋतु के ख़तम होनेमें सात दिन बाक़ी रहें, तब गरमी के सात दिन और आगे आने वाली वर्षा ऋतु के शुरू के सात दिन—इन को "ऋतु-सन्धि" कहते हैं। इस ऋतु-सन्धिके चौदह दिनोंमें, आगे आनेवाली ऋतु की विधि सेवन करनी चाहिये; यानी गरमी की ऋतु के अन्त के सात दिनों को वर्षा ऋतु समझ कर, वर्षा ऋतु में लिखे हुए आहार-विहार सेवन करने अथवा त्यागने चाहिएँ।

प्राणनाशक समय।

कातिक के अन्तके आठ दिन और अगहन के आरम्भ के आठ दिन यानी कातिक सुदी अष्टमी से अगहन बदी अष्टमी तक के सोलह दिनोंको "यमदंष्ट्रा" अथवा यमकी दाढ़ें कहते हैं। इन सोलह दिनोंमें जो लोग थोड़ा खाते हैं, वह आरोग्य रहते हैं। जो बहुत खाते हैं या हेमन्त ऋतु में लिखे हुए पथ्य-अपथ्य का ख़याल नहीं रखते (क्योंकि ऋतु-सन्धि हो जाती है, कातिक की अष्टमी को हेमन्त ऋतु आरम्भ हो जाती है), वे भयानक रोगों में गिरफ़्तार होकर दुःख भोगते हैं और अनेक तो इस जगत् से ही चल बसते हैं।

वमन विरेचन योग्य ऋतुएँ।

शरद् ऋतु में जुलाब देकर पित्त को निकाल देना चाहिये। वसन्त में क़य कराना और जुलाब देना ज़रूरी है। शरद् ऋतु फ़स्द खुलवाने या खून निकालने के लिए अच्छी है।
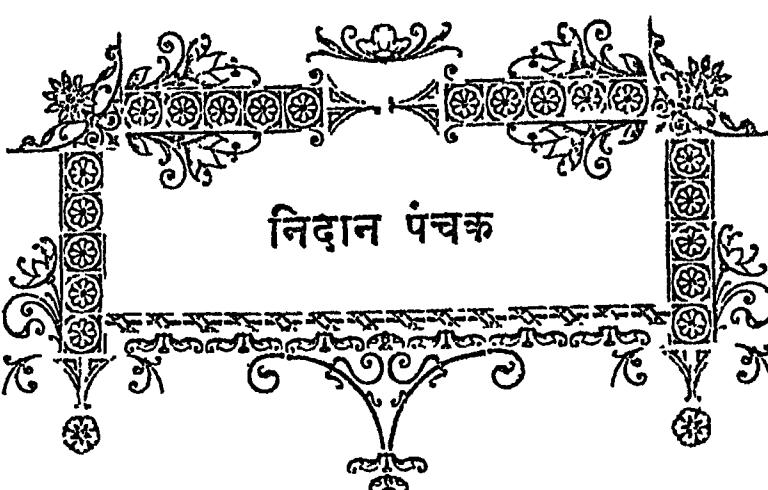
निदान पंचक

निदान पञ्चक—निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय, और सम्प्राप्ति—इन पाँचोंसे रोग जाना जाता है अथवा यों कह सकते हैं कि ये पाँचों रोग जाननेके कारण हैं।

निदान।

(१) निदान—जिन आहार-विहारोंसे रोगोंकी उत्पत्ति होती है तथा वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंकी चय और वृद्धि होती है, उन्हींको रोगका "निदान" या "कारण" कहते हैं। निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण—ये निदानके पर्य्याय-वाचक शब्द हैं; यानी ये निदानके दूसरे नाम हैं। इन छहोंमेंसे शास्त्रमें कोई शब्द आवे, उसे निदान-वाचकही समझना चाहिये। मिट्टी खानेसे पीलिया रोग होता है, इसलिए "मिट्टी" पीलिये का "निदान" यानी "कारण" है।

पूर्वरूप।

(२) पूर्वरूप—जिस लक्षणसे उत्पन्न होनेवाले रोगका ज्ञान हो जाय, उसे "पूर्व्वरूप" कहते हैं। जैसे; ज्वरके पहले थकानसी मालूम हो, मुँहका ज़ायका बिगड़ जाय, आँखोंमें जल भर-भर आवे, कभी

हवा अच्छी लगे कभी बुरी लगे इत्यादि लक्षणोंसे ज्वर होगा, ऐसा समझनाही "पूर्वरूप" है। आँखें जलने लगें और हम समझ लें कि पित्त-ज्वर होगा, तो "आँखोंका जलना" पित्त-ज्वरका पूर्वरूप है। आकाशमें बादल घिर आनेसे हम समझते हैं कि मेह बरसेगा; इसलिये बादलोंका जमा होना, मेह बरसनेके पूर्व्वरूप हैं।

रूप।

(३) रूप—जब रोगके सारे लक्षण दीखने लगें, तब उन्हें "रूप" कहते हैं। पूर्व्वरूप तो व्याधिके आरम्भ करनेवाले दोषमात्रका सूक्ष्म चिह्न है, किन्तु रूप सारे चिह्नोंका प्रकट हो जाना है। जैसे, नेत्रोंमें दाह होना, यह पित्त-ज्वर होनेका पूर्व रूप है। इस लक्षणसे हम समझ सकते हैं कि, हमें पित्त ज्वर होगा, किन्तु जब ज़ोरसे बुख़ार चढ़ आवे, दस्त पतला हो जाय, नींद कम आवे, वमन हो, पसीने आने लगें, कण्ठ, होठ, मुख और नाक ये पक जायँ; इत्यादि लक्षण नज़र आने लगें तो हमें समझना चाहिये कि पित्त-ज्वर हो गया और ऊपर कहे हुए लक्षणोंको पित्त-ज्वरके "रूप" समझना चाहिये।

संस्थान, व्यञ्जन, लिङ्ग, लक्षण, चिह्न, और आकृति—ये रूपके नामान्तर हैं; यानी रूपके पर्य्यायवाचक शब्द या उसके दूसरे नाम हैं।

उपशय।

(४) उपशय—औषधि, अन्न और विहार—इन तीनोंका रोगीकी प्रकृत्यानुसार सुखकारी प्रयोग हो, उसीको "उपशय" और उसीको "सात्म्य" कहते हैं। उपशयका अर्थ है,—औषधि, अन्न या विहार द्वारा रोगका पहचानना। जो औषधि, अन्न या विहार रोगीके रोगको घटावे और उसके पक्षमें सुखकारी हो, वही "उपशय" है। उपशय या सात्म्य एकही बात है। इससे रोगकी पहचान इस तरह होती है:—

किसी रोगीको कोई रोग है। वैद्य पूछे, क्योंजी, आपको कौन-कौन चीज़ें माफ़िक़ होती हैं या कौन-कौन चीज़ोंसे सुख होता है? रोगी कहे,—मुझे नारंगी, अनार, ईख, खीरे, ककड़ी खाने और शीतल जलमें स्नान करने, शीतल तैल मर्दन करानेसे लाभ होता है और गर्म चीज़ें खाने और लगानेसे तकलीफ़ होती है, तो वैद्यको समझ लेना चाहिये कि रोगीको शीतल आहार-विहार सुख देता है, शीतल पदार्थ उसको मुआफ़िक़ हैं। इस दशामें उसे रोग गरमीसे हुआ समझना चाहिए। क्योंकि गरमीसे पैदा हुए रोग ही शीतल आहार-विहार से शान्त होते हैं।

एक बार एक पत्र-सम्पादकने हमको लिखा कि, मेरी माँकी कमरमें बहुत दिनोंसे दर्द रहता है, हमें कोई उत्तम दवा भेज दो। हमारे मैनेजरने उस दर्दको वात-कफ या सर्दीसे पैदा हुआ समझ कर "नारायण तैल" भेज दिया। ज्यों-ज्यों तैल लगाया जाने लगा, दर्द बढ़ने लगा। हमारे पास शिकायत आई। हमने समझ लिया कि जब गर्म "नारायण तैल" रोगीको सुखकारी नहीं है, तो अवश्य रोग गरमीसे है। हमने अपने यहाँ का सुप्रसिद्ध "कृष्णविजय तेल" भेज दिया। तैल लगाते ही रोगिणीको आराम मालूम हुआ। फिर तो चन्द रोज़के लगातार इस्तेमालसे वह रोग समूल नाश हो गया। बस, इसी तरह उपशय और अनुपशयसे रोग पहचाना जाता है।

उपशयकी क़िस्में।

उपशय छै प्रकारके होते हैं;—

(१) हेतु-विपरीत
(२) व्याधि-विपरीत
(३) हेतु व्याधि-विपरीत
(४) हेतु विपर्यस्त अर्थकारी

(५) व्याधि विपर्यस्तार्थकारी
(६) हेतु व्याधि विपर्यस्त अर्थकारी

हेतु-विपरीत यानी जिस कारणसे व्याधि उत्पन्न हुई हो, उसके विपरीत औषधि, अन्न, और विहारका उपयोग "सुखकारक उपशय" है। जैसे शीत ज्वर में "सौंठ" हेतुविपरीत औषध है। क्योंकि शीत ज्वरका हेतु या कारण सरदी है। सरदीके खिलाफ़ या विपरीत दवा "सौंठ" है। रोगका कारण शीत यानी सर्दी है और कारणके खिलाफ सौंठ गर्म दवा है। इसी तरह हेतु-विपरीत अन्न को समझो। जैसे; किसीको थकाई और वादीसे ज्वर हुआ। ज्वरका कारण थकान और वादी है। थकान और वादीके विपरीत अर्थात् थकान और वादी का नाश करनेवाला पथ्य क्या है? थकान और वादीके नाशक पथ्य मांसरस और चॉवल हैं। इसलिए माँसरस और भात ये हेतु-विपरीत यानी रोगके कारणको नाश करनेवाले या रोगकी शान्ति करनेवाले हुए। इसी तरह हेतु-विपरीत विहारको समझो। किसीका दिनके सोनेसे कफ कुपित हो गया। उससे सिरमें दर्द और जुकाम हो गया। अब यह सोचना चाहिए कि कफके कुपित होनेका कारण क्या है? कफ कुपित होनेका कारण है—दिनमें सोना। दिनमें सोनेके विपरीत आचरण क्या है? रातमें जागना। रातमें जागनेसे कफ शान्त हो गया और रोगीको सुख हुआ। इस-लिए "रातमें जागना" हेतु-विपरीत विहार या आचरण हुआ।

व्याधि विपरीत—व्याधि-विपरीत यानी रोगके खिलाफ औषधि, अन्न और विहारका उपयोग "सुखकारक उपशय" है। किसीको अति-सार या दस्तोंका रोग हुआ। हमने व्याधिके विपरीत दस्त बन्द करनेवाली दवा "बेलगिरि" या "पाठा" दे दी। रोगीको सुख हुआ, तो "बेलगिरी" व्याधि-विपरीत औषधि हुई। किसीको आमातिसार हो गया। हमने उसे दही भात और मिश्री खानेको बता दिया। रोगीको उस पथ्यसे सुख हुआ, तो "दही भात और मिश्री" यह व्याधि-विपरीत पथ्य हुआ। किसीको ज्वरमें घोर दाह हुआ। हमने बाहा,

भाई! रूपवती षोडशी स्त्रीके सर्वाङ्गमें चन्दन लगवा कर उसे आलिङ्गन करो। इस तरह करनेसे उसका दाह शान्त हो गया, तो यह "स्त्रीका आलिङ्गन करना" व्याधि-विपरीत विहार हुआ।

हेतु-व्याधिविपरीत—बादीकी सूजनमें दशमूलका काढ़ा बादी और सूजन दोनोंको नाश करता है; इसलिए "दशमूलका क्वाथ" हेतु-व्याधि-विपरीत यानी रोग और रोगके कारण दोनोंके विपरीत औषधि हुई।

हेतुविपर्यस्तार्थकारी—पित्त-प्रधान व्रणकी सूजनमें पित्तकारक गर्मागर्म पुलटिश बाँधना। गरमीहीसे सूजन है और गर्महो दवा की गई।

व्याधि विपर्यस्तार्थकारी—किसीको क़य होनेका रोग है। उसको हमने गलेमें उंगली डालकर क़य करनेकी सलाह दी। रोगीने वैसा ही किया। उसे आराम मालूम हुआ, तो यह व्याधिविपर्यस्तार्थकारी "आचरण" हुआ।

हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी—कोई आगसे जल गया। हमने कहा, "अगर" प्रभृति द्रव्योंका गर्मगर्म लेप करो। लेप करनेसे रोगीको सुख हुआ, तो यह हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी औषधि हुई।

(६) अनुपशय—उपशयके विपरीत जिस औषधि, अन्न और विहार से रोगीको उलटा दुःख हो, वही "अनुपशय" या "व्याधि असात्म्य" है।

सम्प्राप्ति।

सम्प्राप्ति—वातादि दोष दुष्ट होकर, अपने-अपने स्थानको छोड़कर, ऊपर नीचे तथा इधर-उधर शरीरमें विस्तृत होकर विचरण करते हैं और उनके विचरनेसे जो रोगकी उत्पत्ति होती है, उसे "सम्प्राप्ति" कहते हैं। मतलब यह है कि वात, पित्त और कफ ये दोष बढ़कर, जिस तरह रोग प्रकट करते हैं, उसे "सम्प्राप्ति" कहते हैं। जैसे—मिथ्या आहार-विहारके कारणसे वात, पित्त और कफ कुपित होकर,

आमाशयमें प्रवेश करते हैं और उस स्थानमें इधर-उधर घूमते हुए रसवाहिनी नसोंके रास्तोंको रोक कर, पक्वाशयमें रहनेवाली अग्निको बाहर निकाल देते हैं, उसी जठराग्निसे सारा शरीर जलने लगता है—यही "ज्वर" है और ऐसा निश्चय करनाही "ज्वरकी सम्प्राप्ति" है।

सम्प्राप्ति पाँच प्रकारकी होती हैं:—

(१) संख्यारूप सम्प्राप्ति।

(२) विकल्परूप सम्प्राप्ति।

(३) प्राधान्यरूप सम्प्राप्ति।

(४) बलरूप सम्प्राप्ति।

(५) कालरूप सम्प्राप्ति।

(१) संख्यारूप सम्प्राप्ति—रोगोंकी गिन्तीको "संख्यारूप" सम्प्राप्ति कहते हैं, जैसे; ज्वर आठ प्रकारके होते हैं; खाँसी पाँच प्रकार की होती है।

(२) विकल्परूप सम्प्राप्ति—मिले हुए पित्त और कफके अंशांश के अनुमान करनेको "विकल्प सम्प्राप्ति" कहते हैं। जैसे, इसमें इतने अंश वात है, इतने अंश पित्त और इतने कफ।

(३) प्राधान्यरूप सम्प्राप्ति—रोगकी स्वतन्त्रतासे व्याधिकी प्रधानता और अप्रधानता जाननेको "प्राधान्यरूप सम्प्राप्ति" कहते हैं। जैसे, स्वतन्त्र ज्वर प्रधान रोग है और उसके अधीन श्वास खाँसी प्रभृति रोग अप्रधान हैं।

(४) बलरूप सम्प्राप्ति—जिस रोगमें रोगके पूर्व्वरूप, रूप इत्यादि सारे लक्षण मिलते हों, उस रोगको बलवान समझना और जिसमें कम लक्षण मिलते हों, उसे निर्बल समझना।

(५) कालरूप सम्प्राप्ति—रात-दिन, ऋतु और आहार—इनके अंशों से वातादि-जनित रोगों के बढ़ने-घटने का काल या समय जानना।

रोगोंके घटने बढ़नेका समय जाननेके लिये रात-दिन के तीन भाग करते हैं। पहला, दूसरा और तीसरा। रातका और दिन का पहला भाग कफ का समय है। दूसरा भाग पित्त का और तीसरा या अन्त का भाग वात का समय है।

इसी तरह ऋतुओं के भी तीन भाग करने चाहियें। वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा। वसन्तमें कफ कुपित होता है। गरमीमें पित्त कुपित होता है और वर्षा में वायु कुपित होता है।

इसी तरह भोजन के समय का भी विभाग करना चाहिये। भोजन करनेके समय कफका काल है; भोजन पचते समय पित्त का और भोजन पच जाने पर वात का काल है।

इसके जाननेसे बड़ा लाभ है। जिस-जिस दोष (वात,पित्त,कफ) का जो-जो समय बताया है, उसके जाननेसे काममें कठिनाई नहीं होती और चिकित्सामें बड़ा सुभीता होता है।

रोग-परीक्षा।

वैद्यका पहला काम रोग जानना है।

चिकित्सा-मन्दिर में प्रवेश करते ही पहला काम रोग-परीक्षा या मर्ज़ की तशख़ीस करना है। रोगके जान जानेपर चिकित्सा-कार्य आरम्भ होता है। जो वैद्य रोगको बिना समझे दवा दे देते हैं, वे धूलमें लट्ठ मारते हैं। उन्हें कभी-कभी सिद्धि हो जाती है; पर अनेक बार असफलता का ही सामना करना पड़ता है। हम इस मौक़े के पाँच-सात श्लोक इस स्थान पर वैद्यों की जानकारी के लिये लिखे देते हैं—

रोगमादौ परीक्षेत् ततोऽनन्तरमौषधम्।
ततः कर्मभिषक् पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत्॥
यस्तु रोगमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक्।
अप्यौषधिविधानज्ञस्तस्यसिद्धिर्यदृच्छया॥
यस्तु रोग विशेषज्ञः सर्व भैषज्य कोविदः।
देशकालप्रमाणज्ञस्तस्य सिद्धिरसंशयम्॥
अविज्ञाय रुजं सम्यङ्, मोहादारभते क्रियाः।
विधानज्ञोऽथ शास्त्रज्ञो न तत् सिद्धिः प्रजायते॥

निदानं रोग विज्ञानं भेषजानां गुणागुणम् ।
विज्ञाय कुरुते यस्तु तस्य सिद्धिर्न दूरतः ॥
आदावेव रुजां ज्ञानं साध्यासाध्यं विचक्षणः ।
याप्यं सर्वरुजाञ्चैव ततः कुर्य्यात् प्रतिक्रियाम् ॥

पहले वैद्य रोगकी परीक्षा करे; पीछे औषधि की परीक्षा करे। जब रोग और औषधि की परीक्षा हो जाय, तब वैद्य ज्ञान-पूर्व्वक चिकित्सा आरम्भ करे।

जो वैद्य रोगके समझे बिना ही काम शुरू कर देते हैं, उनके औषधि-प्रयोगमें प्रवीण होने पर भी, सिद्धि होती भी है और नहीं भी होती है।

जो रोगों के भेदों को जानता है, जो सब तरह की दवाओं के जानने में कुशल होता है, जो देश, काल और मात्रा के प्रमाण को जानता है, उसकी सिद्धि निश्चय ही होती है।

हारीत मुनि कहते हैं—जो वैद्य रोगको बिना जाने क्रिया—चिकित्सा का आरंभ कर देता, वह विधान और शास्त्रका जानने वाला होने पर भी, सिद्धि प्राप्त नहीं करता।

निदान और रोग, औषधियों के गुण और दोष—इनको समझ कर जो वैद्य चिकित्सा करता है, उसको सिद्धि शीघ्र होती है।

सबसे पहले वैद्य को रोग और रोगके साध्यासाध्यत्व को जानना चाहिए। इनके जान लेने के बाद चिकित्सा करनी चाहिये।

रोग-परीक्षा किस तरह होती है ?

किसी ने रोग-परीक्षा करने की कोई तरकीब लिखी है, किसी ने कोई; पर घूमघाम कर सबका मतलब एकही है। प्रत्येक आचार्य्य का मत जानने से जानकारी ज़ियादा बढ़ती है; कठिनाइयां हल हो जाती हैं; इसलिये हम नीचे तीन-चार ऋषियों का मत लिखते हैं:—

पं० ठाकुर दत्त शर्म्मा वैद्य, मालिक
अमृतधारा औषधालय लाहौर ॥

चरक में लिखा है:—

त्रिविधं खलु रोगाविशेष ज्ञानं भवति ।

तद्यथा, आप्तोदेशः प्रत्यक्षमनुमानश्चेति ॥

आप्तोपदेश, प्रत्यक्ष और अनुमान,—इन तीन प्रकारके उपायोंसे अलग-अलग रोगों का ज्ञान होता है।

हारीत ने कहा है—

दर्शन स्पर्शन प्रश्नै रोगज्ञानं त्रिधामतम् ।

मुखाक्षिदर्शनात् स्पर्शाच्छीतादि प्रश्नतः परम् ॥

देखने, छूने और पूछने, इन तीन उपायों से रोग का ज्ञान होता है। मुँह और आँखों के देखने से, गर्म और ठण्डा छूकर जानने से और रोगी से रोग की बातें पूछने से रोग का ज्ञान होता है।

धन्वन्तरि जी सुश्रुत से कहते हैं:—

.........आतुर गृहमाभिगम्योपविश्यातुरमभि

पश्येत् स्पृशेत् पृच्छेच, त्रिभिरेतैर्विज्ञानोपायै रोगाः...

...बहुत से आचार्य्यों का यह मत है कि रोगी के घर जाकर वैद्य बैठे, रोगी को देखे, हाथसे छुए और रोगका हाल पूछे। इन तीन उपायों से रोग-ज्ञान हो जाता है ; परन्तु मेरे मतमें यह बात ठीक नहीं है। वह कहते हैं, मेरी राय में—

षड्विधोहि रोगाणां विज्ञानोपायः ।

तद्यथा पंचभिः श्रोत्रादिभिः प्रश्नेनचेति ॥

रोगों के जानने के छह उपाय हैं। कान, नाक, जीभ, आँख और त्वचा (चमड़ा),—इन पाँच इन्द्रियों तथा पूछने से रोगों का ज्ञान होता है।

वागभटजी कहते हैं—

दर्शनस्पर्शन प्रश्नैः परीक्षेताथ रोगिणाम् ।

रोगं निदान प्राग्रूप लक्षणोपशयाप्तिभिः ॥

वैद्य देखने, छूने और पूछने से रोगियों की परीक्षा करे तथा निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति से रोगों की परीक्षा करे।

पाठक ! देख लिया सबका मत। निदान-पञ्चकसे रोग जाननेकी विधिको हम विस्तार-पूर्वक अभी पीछे ही लिख आये हैं। यहाँ हम चरक और सुश्रुत में लिखी हुई तरकीबों से रोग-परीक्षा को अच्छी तरह समझाते हैं। सुश्रुतमें लिखी हुई छह प्रकारकी परीक्षायें, चरक में लिखे हुए अनुमान और प्रत्यक्ष के अन्तर्गत हैं और चरकके आप्तोपदेश के अन्तर्गत निदान-पञ्चक है।

माधव-निदान में लिखा है:—

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।

सम्प्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम् ॥

निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति—इन पाँचोंके द्वारा रोगोंका ज्ञान होता है।

बस, इस "निदानपञ्चक"को ही आप "आप्तोपदेश" अर्थात् त्रिकालज्ञ महात्माओं का उपदेश समझिये। इन पाँचों से रोगोंका ज्ञान हो सकता है; मगर प्रत्यक्ष और अनुमान की सहायता बिना कुछ भी ज्ञान नहीं हो सकता।

हम शास्त्रोपदेश से जानते हैं कि ज्वर में शरीर तपने लगता है; मगर बिना शरीर को छुए हमें शरीरके गरम होने का निश्चय कैसे हो सकता है ? हम जानते हैं कि पीलियेमें रोगीके नेत्र नखादि पीले हो जाते हैं; किन्तु बिना आँखोंसे देखे हमें कैसे मालूम हो सकता है कि रोगीके नेत्र, नख, मूत्र प्रभृति पीले होगये हैं ? हम शास्त्रोपदेश से जानते हैं कि अमुक रोगमें आँतें गूँजती हैं; मगर बिना

कानों से सुने हमें पक्का निश्चय कैसे हो सकता है ? हम शास्त्र पढ़नेसे जानते हैं कि चेचक अथवा मोती-ज्वरमें रोगीके शरीरमें एक प्रकार की बदबू आया करती है ; पर बिना नाक से सूँघे हमें इस बातका पक्का निश्चय कैसे हो सकता है ? हम जानते हैं कि रक्तपित्त-रोग में रोगी का रक्त अशुद्ध हो जाता है। रोगी का खून ख़राब हुआ है या नहीं, इसका निश्चय तभी हो जब हम जीभ से चखकर देखें। वैद्य ऐसा कर नहीं सकता, इसलिये सन्देह होने पर रोगी का खून कव्वों या कुत्तों के आगे डाला जाता है। अगर कुत्ते या कव्वे उस खून को पी जाते हैं तो, खून शुद्ध समझा जाता है ; यदि नहीं पीते हैं तो अशुद्ध समझा जाता है। यहाँ हमें अपनी नहीं तो कुत्तों और कव्वों की जीभसे काम लेनाही पड़ा। इस तरह कान, आँख, नाक, जीभ और त्वचा,—पाँचों इन्द्रियोंसे काम लेना पड़ता है।

अब रहा "पूछना"। ज्वर में रोगी के मुख का स्वाद कड़वा, या फीका हो जाता है। इस बातको हम शास्त्रज्ञान होनेसे जानते तो हैं, मगर अमुक रोगी के मुख का स्वाद कैसा है ? उसे भूख लगती है या नहीं ? इन बातों का हमें रोगी से पूछे बिना कैसे ज्ञान हो सकता है ? मतलब यह है कि रोगका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें पाँचों इन्द्रियों से काम लेना होता है और जिस विषय का ज्ञान हमें हमारी पाँचों इन्द्रियों से नहीं हो सकता, उसका ज्ञान पूछने या प्रश्न करने से होता है। सुश्रुतमें रोग जानने के यही छै उपाय लिखे हैं।

एक तरह से तो हम इन छहोंको ऊपर समझा चुके हैं ; किन्तु दूसरे तौर पर फिर समझाते हैं ; जिससे मन्दबुद्धिसे मन्दबुद्धि भी आसानीसे इस ज़रूरी विषय को समझ जाय।

कान।

कानों से सुनकर हो हम जान सकते हैं कि, रोगी को डकारें

आ रही है, आँतोंमें वायु गड़गड़ शब्द कर रहा है, रोगी आन-तान बक रहा है, कण्ठ में घरघर घरघर कफ बोल रहा है, स्वर भङ्ग हो गया है इत्यादि ।

२ नाक ।

नाक से ही हमें दुर्गन्ध और सुगन्ध का ज्ञान होता है। नाक से सूँघते हैं तब मालूम होता है कि, रोगी के शरीर में एक अपूर्व सुगन्ध या दुर्गन्ध आ रही है। यह गन्ध अरिष्ट-सूचक है या स्वाभाविक है। इसके जानने के लिये अथवा ज़ख़्मों की बदबू वगैरः जानने के लिये नाक से ही काम लेना होता है।

३ जीभ ।

जीभसे रक्त-पित्त के रोगी के रुधिर का हाल तथा प्रमेह-रोगी के पेशाब का हाल मालूम होता है। रक्तपित्तवाले के रक्त को कव्वे या कुत्ते न चाटें, तो निश्चय ही ख़राब है ऐसा समझते हैं। मधु-मेही के पेशाब पर चींटियाँ लगें तो पेशाब मीठा है, ऐसा समझते हैं। ऐसे-ऐसे रोगों में जिह्वा से ही रोग का ज्ञान होता है।

४ आँख ।

आँखों से देखनेपर ही मालूम होता है कि, रोगीका शरीर मोटा है या दुबला है; आकृति अच्छी है या बुरी; सूजन मुख पर है या पैरों पर; आँखें भीतर घुस गई हैं या नहीं; आँखें सफेद हैं या पीली; शरीर का रङ्ग कैसा है; नाक का बाँसा मोटा हो गया है या सूख गया है इत्यादि।

५ त्वचा ।

त्वचा या चमड़े से छूकर ही हम जानते हैं कि, रोगी का बदन गर्म है या ठण्डा; शरीर चिकना है या खरदरा, कड़ा है या नर्म; सूजन शीतल है या गर्म इत्यादि।

६ प्रश्न।

प्रश्न करने या पूछनेसे ही मालूम होता है कि मुँह का ज़ायका कैसा है ? भूख लगती है या नहीं ? कहाँ दर्द होता है ? पेटमें दर्द भोजन पचने के बाद या पचते समय अथवा खाते ही होता है? चारपाईसे उठकर पाखाने तक जा सकते हो या नहीं ? मासिक-धर्म ठीक होता है या नहीं ? पाखाना साफ़ होता है या नहीं ? कितने दिनों से रोग है ? इत्यादि।

अनुमान

सुश्रुत में कही हुई छहों रोग जानने की तरकीबें ऊपर बता चुके। अब रहा चरक का अनुमान, उसे भी समझिये।

युक्ति सापेक्ष तर्क को "अनुमान" कहते हैं ; अथवा तर्क-वितर्क द्वारा अक़्ल के ज़ोर से जो अन्दाज़ा लगाया जाता है, उसे "अनुमान" कहते हैं। रोगी के शरीर के रस का स्वाद इन्द्रियों का विषय है ; तोभी उसका पता अनुमान से ही लगाया जाता है ; क्योंकि रस का ज्ञान प्रत्यक्ष कदापि नहीं हो सकता। शरीर पर जूएँ चलती देखकर अक़्ल से समझ लिया जाता है कि, शरीरका रस बिगड़ गया है। स्नान करने या चन्दन लगाने पर भी मक्खियों को शरीर पर पर बैठते देख कर अनुमान कर लिया जाता है कि, शरीर का रस मीठा हो गया है ; इसलिये यह अरिष्टसूचक है ; प्राणी मर जायगा। पेशाब पर चींटियों को लगते देखकर मधुमेह होने का अनुमान कर लिया जाता है। आकाश में बादल देखकर वर्षा होने का अनुमान कर लिया जाता है।

ये नीचे लिखे हुए विषय और अन्यान्य विषय अनुमान द्वारा परीक्षा करने से जाने जाते हैं—परिपाक-शक्ति से जठराग्निका, परिश्रम से बलका, मूर्खता से मोह का, दूसरे को सताने से क्रोध का, दीनता से शोक का, प्रसन्नता से हर्ष का, सन्तोष से प्रीति का, दुःख

से भय का, अविषाद से धीरज का, उत्साह से पराक्रम का, सङ्कोच से लज्जा का, विनयसे शीलका, मनके चलायमान न होनेसे विज्ञान का, उपशय और अनुपशय से छिपे लक्षणों वाले रोगों का, अरिष्ट-चिह्नों से आयुक्षय का, शुभकर्मों में मन लगाने से होनेवाले मङ्गल का अनुमान किया जाता है ।

आठ प्रकारकी रोग परीक्षा

गदाक्रान्तस्य देहस्य स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत्।

नाड़ी मूत्र मलं जिह्वां शब्द स्पर्शदृगाकृतिम् ॥

रोगी के शरीर के आठ स्थानों की परीक्षा करनी चाहिये :—

(१) नाड़ी, (२) मूत्र, (३) मल, (४) जिह्वा, (५) शब्द, (६) स्पर्श (७) नेत्र, (८) आकृति।
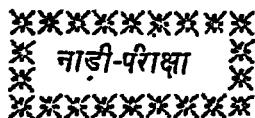
नाड़ी-परीक्षा

यद्यपि चरक, सुश्रुत, वाग्भट और हारीत-संहिता प्रभृत ऋषि-मुनि-प्रणीत ग्रन्थों में कहीं भी नाड़ी-परीक्षा का ज़िक्र नहीं है, तो-भी आजकल इसकी ऐसी चाल हो गई है कि जिस रोगी को देखिये वही वैद्य के सामने पहले अपना हाथ कर देता है। यदि वैद्य महाशय नाड़ी-ज्ञान में कुछ समझते हैं, रोगी के रोग का हाल नाड़ी देखकर बता देते हैं; तब तो रोगी की श्रद्धा वैद्य महाशय में हो जाती है और यदि वे नाड़ी छूकर कुछ न बता सकें, तो रोगी उनको वैद्य नहीं समझता। इसलिए प्रत्येक वैद्यको कुछ न कुछ नाड़ी-परीक्षा अवश्य सीखनी चाहिये।

नाड़ी-परीक्षासे वात, पित्त और कफ यानी सर्दी, गर्मी तथा साध्य-असाध्यका ज्ञान होता है; मगर इससे सारेही रोगोंका ज्ञान हो जाय, यह मिथ्या बात है। हाँ, नाड़ी-ज्ञानवालेको रोगीकी मृत्यु की अवधि खूब अच्छी तरह मालूम हो जाती है। यूनानी इलाज करनेवाले हकीम लोग भी नाड़ी यानी नब्ज देखा करते हैं। नाड़ी-ज्ञान पूर्ण होनेपर भी, केवल नाड़ी-परीक्षा पर निर्भर रहना ठीक नहीं है, क्योंकि यदि इस परीक्षामें भूल हो गई, तो रोगीके प्राण-नाशकी सम्भावना हो जायगी।

इस लिये पहले "निदान पञ्चक"से रोगकी परीक्षा करके, नाड़ी-परीक्षा करनी चाहिये। आप्तोपदेश, प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा रोगका ज्ञान हो जानेपर, यदि इनमें कोई भूल होगी तो नाड़ीसे मालूम हो जायगी और यदि नाड़ी-परीक्षामें कोई भूल होगी तो उक्त तीन तरहकी परीक्षाओं से मालूम हो जायगी। इसीलिए "वैद्य विनोद"में कहा है :—

रोगज्ञानाय कर्त्तव्यं नाड़ीमूत्रपरीक्षणम् ॥

रोगके जाननेके लिए वैद्य नाड़ी और मूत्रकी परीक्षा करे। "वैद्य विनोद"के कर्त्ताका यह आशय है, कि निदान आदि पाँच प्रकार से रोगका ज्ञान होनेपर नाड़ी और मूत्र-परीक्षा करे, क्योंकि उन्होंने निदान-पञ्चक लिखकर पीछे इसी ढँगसे इसको लिखा है। "योग-चिन्तामणि"के लेखकने लिखा है :—

नाड्यामूत्रस्य जिह्वायां, लक्ष्णं यो न विंदते ।
मारयत्याशु वै जन्तून स वैद्यो न यशो लभेत् ॥

जो वैद्य नाड़ी, मूत्र और जीभकी परीक्षा नहीं जानता; वह मनुष्योंका तत्काल नाश करता है; ऐसे वैद्य को यश नहीं मिलता।

स्त्रीके बाएँ और पुरुषके दाहिने हाथ की नाड़ी देखी जाती है।

स्त्रियोंकी बायें हाथकी नाड़ी और पुरुषोंके दाहने हाथकी नाड़ी देखनी चाहिये। इसका कारण यह है कि, स्त्रियोंकी नाभि में कूर्म नाड़ीका मुख ऊपर और पुरुषकी का नीचे है। इसीसे स्त्रियों की बायें हाथकी और पुरुषोंकी दाहिने हाथकी नाड़ी द्वारा शरीर में दुःख-सुखका ज्ञान होता है।

नाड़ी देखनेमें नियम।

सोते हुए की, कसरत करके आये हुए की, तेल मर्दन कराकर चुका हो उसकी, भूखेकी, प्यासेकी, आगके सामने से उठा हो उसकी, भोजन पर बैठता हो उसकी, भोजन करके चुका हो उसकी, धूपमेंसे आया हो उसकी, अथवा किसी प्रकारकी मिहनत करके चुका हो उसकी, नाड़ी न देखनी चाहिये। यदि इन नियमोंके विरुद्ध नाड़ी देखी जाती है, तो रोग का ठीक हाल मालूम नहीं होता।

तीन बार नाड़ी पर हाथ रख-रखकर वैद्य छोड़ दे, यानी तीन बार नाड़ी देखनी चाहिये, तब रोगका पक्का निश्चय करना चाहिये।

नाड़ीसे क्या-क्या मालूम होता है?

वात, पित्त, कफ, द्वन्द्वज, त्रिदोष, सन्निपात और साध्य-असाध्य—ये सब नाड़ीसे मालूम होते हैं।

कहाँ कहाँ की नाड़ियाँ देखी जाती हैं?

स्त्रीके बायें हाथकी और पुरुषके दाहिने हाथकी नाड़ी देखी जाती हैं, किन्तु जब रोगी मरणासन्न होता है, हाथकी नाड़ी हाथ नहीं आती, या उससे साफ पता नहीं लगता; तब पैरोंके टखने, नाक, कण्ठ, तथा लिंगेन्द्रिय की नाड़ी भी देखी जाती है।

नाड़ी देखनेकी रीति।

वैद्य और रोगीको नाड़ी देखते और दिखाते समय किस तरह बैठना उठना प्रभृति काम करने चाहियें; इस विषय में भी योगचिन्तामणि में लिखा है :—

स्थिरचित्तः प्रसन्नात्मा मनसा च विशारदाः।
स्पृशेदंगुलिभिर्नाडीं जानीयाद् दक्षिणे करे॥
त्यक्तमूत्रपुरीषस्य सुखासीनस्य रोगिणः।
अन्तजानुकरस्यापि सम्यक् नाड़ीं परीक्षयेत्॥

वैद्य स्थिरचित्त और प्रसन्न होकर, तीन अँगुलियोंसे दाहिने हाथकी नाड़ी देखे।

जो रोगी मल मूत्र त्याग कर चुका हो, सुखसे बैठा हो, दोनों जानुओंके बीचमें जिसने अपना हाथ रख रक्खा हो, उसकी नाड़ीको वैद्य अच्छी तरह देखे।

एक और पुस्तक में लिखा है,—वैद्यको चाहिये कि आप मल मूत्र आदि ज़रूरी कामोंसे फ़ारिग़ होकर, चित्तको ठिकाने करके, सुखसे अपने आसन पर बैठकर रोगीकी नाड़ी देखे। वैद्य यदि शौचादिकसे निपटा हुआ न होगा, वैद्यका चित्त और कहीं होगा तथा रोगी पाखाने पेशाबको रोके हुए होगा, अथवा भूखा-प्यासा चलकर आया हुआ, कसरत या मिहनत करके उठा होगा, तो हज़ार नाड़ी देखने पर भी कुछ मालूम न होगा; क्योंकि नाड़ी योगका विषय है। यह चित्तकी एकाग्रता (Concentration of mind) चाहती है; और भूखे-प्यासे, थके हुए, आगके पाससे उठकर आये हुए रोगीकी नाड़ी विकृत हो जाती है; यानी जो चाल होनी चाहिये, उससे विपरीत हो जाती है।

जबकि वैद्य और रोगी दोनों ऊपर लिखे हुए नियमानुसार हों,

नं० ३ चित्र ।
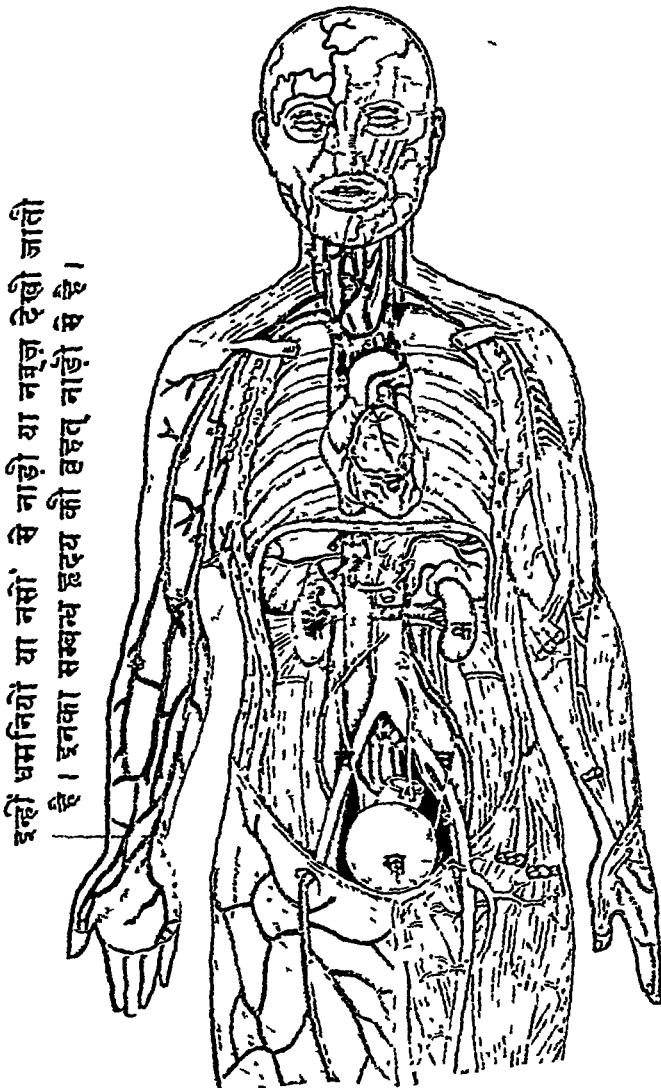
द—यह दिल या हृदय है।

क—क—ये दोनों गुर्दे या मूत्रयन्त्र हैं। इन दोनों से दो नालियाँ मूत्र की थैली तक गई हैं। इन्हीं में होकर मूत्र मूत्र की थैली में जमा होता है। इन दोनों नसों के पास च—च लिखे हैं।

ख—यह मूत्रकी थैली है। इसके पीछे मलाशय है।

तब वैद्य अपने बायें हाथसे रोगीका पहुँचा या कलाई दबाकर, दाहिने हाथकी तीन अँगुलियोंसे, अँगूठेकी जड़में, वायुकी नाड़ीको देखे; क्योंकि हाथके अँगूठेके नीचे धमनी नाड़ी जीवकी साची देनेवाली है। उसी धमनीकी चेष्टासे विद्वान् मनुष्यके सुख-दुःखको जान जाते हैं। किसीने यह भी कहा है कि दाहिने हाथकी तर्जनी, मध्यमा और अनामिका उँगलियोंको पहुँचे पर रख कर, बायें हाथसे रोगीके उसी हाथकी कुहनीकी नाड़ीको दबाना चाहिये। याद रखना चाहिये, पहुँचेमें तर्जनीके नीचे वायुकी नाड़ी, उससे दूसरी पित्तकी और तीसरी कफकी नाड़ी है।

होनहार रोगों के जानने के लिये स्वस्थ मनुष्य की नाड़ी-परीचा करनी चाहिए। प्रथम पित्त की, बीचमें कफ को और अन्तमें वादी की नाड़ी चलती है। रावणकृत पुस्तक में लिखा है:—

आदौ वातवहा नाड़ी मध्ये वहति पित्तला।
अन्ते श्लेष्मविकारेण नाड़िकेति त्रिधा मता॥

आदि में वात की नाड़ी, बीच में पित्त की नाड़ी और अन्तमें कफ की नाड़ी—ये तीन प्रकार की नाड़ी मानी गई हैं।

रोगी के वात अधिक हो तो वैद्य को तर्जनी अँगुली के नीचे नाड़ी फड़कती है, पित्त अधिक हो तो मध्यमा अँगुलीके नीचे, अगर कफ अधिक हो तो अनामिका के नीचे नाड़ी फड़कती है। अगर वात-पित्त का ज़ोर हो तो तर्जनी और मध्यमा के बीच में; वात-कफ का ज़ोर हो तो मध्यमा और अनामिका के बीच में नाड़ी फड़-कती है। अगर सन्निपात हो, तो तीनों अँगुलियों के नीचे नाड़ी मालूम होती है।

नोट—हाथकी नाड़ियोंका हाल जाननेके लिए, उधर दिये हुए चित्रमें हाथकी नाड़ियोंको देखो और समझो।

नाड़ीकी चाल।

वातका कोप होनेसे नाड़ी जोंक और सर्पकी चालसे चलती है; पित्तका कोप होनेसे कुलिङ्ग कव्वा और मेंडककी चालसे चलती है; कफका कोप होनेसे नाड़ी हंस और कबूतरकी चालसे चलती है। किसीने लिखा है—वायुके कोपसे नाड़ीकी चाल टेढ़ी होती है; पित्तके कोपसे नाड़ी तेज़ चलती है और कफके कोपसे नाड़ी मन्दी चलती है। किसीने लिखा है—वायुका ज़ोर होनेसे टेढ़ी, पित्तका ज़ोर होनेसे चञ्चल और कफका ज़ोर होनेसे स्थिर चालसे नाड़ी चलती है। अच्छी तरहसे समझमें आजानेके लिए हमने एक ही बात तीन तरह लिखी है। तीनों बातोंका आशय प्रायः एक ही है।

दो दोषोंकी अधिकतामें और चाल हो जाती है। वात और पित्त का ज़ोर होनेसे नाड़ी कभी सर्पकीसी चालसे चलती है, कभी मेंडक की चालसे; वायु और कफका ज़ोर होनेसे नाड़ीकी चाल कभी सर्प कीसी और कभी हंसकीसी होती है। इसी तरह पित्त और कफ का कोप होनेसे नाड़ी कभी मेंड़ककी तरह फुदक-फुदक कर चलती है और कभी हंस या मोरकी तरह धीरे-धीरे क़दम उठाती हुई चलती है।

त्रिदोषकी नाड़ी।

तीनों दोषोंकी अधिकता या ज़ोर होनेपर नाड़ी लवा, तीतर और बटेरकीसी चालसे चलती है, अथवा यों समझिये कि वायुके कोपके कारण सर्पकीसी चालसे, पित्तके कोपसे मेंडककीसी चालसे और कफके कोपसे हंसकीसी चालसे चलती है। अगर पहले नाड़ीके छूतेही सर्पकीसी, उसके बाद मेंडककीसी, उसके बाद कफकीसी चाल मालूम हो, तो रोगको साध्य समझना चाहिये; अगर इसके खिलाफ हो; यानी पहले सर्पकीसी चाल; उसके बाद हंसकीसी चाल

अथवा हंसकी चालके बाद मेंडककीसी चाल हो, तो रोगको असाध्य समझना चाहिये।

काठफोड़ा पक्षी ठहर-ठहर कर बड़े ज़ोर से अपना मुँह काठ पर दे-दे मारता है ; उसी तरह सन्निपात की नाड़ी ठहर-ठहर कर ठोकर मारती हुई चलती है।

ज्वरके पहले नाड़ीकी चाल ।

ज्वर चढ़नेके पहले नाड़ी दो तीन बार मेंडककीसी चाल से चलती है। यदि वही चाल बराबर बनी रहे, तो समझना कि "दाह ज्वर" होगा।

सन्निपात ज्वर होनेके पहले, नाड़ी पहले तो बटेरकी तरह, पीछे तीतरकी तरह और अन्तमें बतककी तरह चलती है।

ज्वर में नाड़ी की चाल ।

ज्वरका वेग होनेपर नाड़ी गरम और वेगवान होती है; यानी तेज़ीसे चलती है। किन्तु इस बातको भी याद रखना चाहिये कि, मैथुन कर चुकनेपर अथवा मैथुनकी रातके सवेरे तक और अत्यन्त भोजन कर लेनेपर भी नाड़ी गरम रहती है ; लेकिन इसमें ज्वर कीसी तेज़ी नहीं होती।

वातज्वर में नाड़ी ।

साधारणतया वात ज्वरमें नाड़ीकी चाल वैसीही होती है, जैसी कि वातकी अधिकतामें होती है, जिसके लक्षण ऊपर लिख आये हैं। हाँ, गरमीमें जब वायु संचित होता है, भोजन पचनेके समय, दोपहर या आधीरातको यदि वात ज्वर होता है, तो नाड़ी धीमी-धीमी चलती है। वर्षा-कालमें जब वायुका कोप होता है, भोजन पचनेके बाद और पिछली रातको जब वायुका समय होता है, वात-ज्वरमें नाड़ी जल्दी-जल्दी चलती है।

पित्तज्वर में नाड़ी।

पितत्तज्वरमें नाड़ी मेंडक की तरह उछल-उछल कर चलती है और बड़ी तेज़ी से चलती है। किन्तु शरद् ऋतु, भोजन पचने के समय, दोपहर और आधी रात को (ये पित्तके समय हैं) नाड़ी इतनी तेज़ी से चलती है कि बयान नहीं कर सकते। ऐसा मालूम होता है, मानो नाड़ी मांस को चीर कर बाहर निकल आवेगी।

कफज्वरमें नाड़ी।

कफज्वरमें नाड़ी पहले लिखी गई हंस की सी चाल से चलती है। कफ का समय होने पर यानी वसन्त, प्रातःकाल, संध्या के बाद, तथा भोजन करते-करते कफ की नाड़ी उसी तरह हंस की चाल से चलती है और छूने से ऐसी मालूम होती है, जैसी गरम पानी में भीगी हुई रस्सी ठण्डी जान पड़ती है।

वातकफ ज्वर।

वातकफज्वर में नाड़ी मन्दी-मन्दी चलती है और किसी क़दर गर्म रहती है। अगर इस ज्वरमें कफ का अंश कम और वायु का अंश ज़ियादा रहता है, तो नाड़ी रूखी और बराबर तेज़ चलती रहती है।

वातपित्त ज्वर।

वातपित्तज्वरमें नाड़ी चञ्चल, स्थूल और कठिन रहती है और झूम-झूमकर चलती सी जान पड़ती है।

पित्तकफ ज्वर।

पित्तकफ ज्वरमें नाड़ी नर्म चलती है, कभी अधिक ठण्डी और कभी कम ठण्डी और पतली रहती है।

त्रिदोषज्वर

त्रिदोष की अधिकता में नाड़ी की जैसी चाल होती है, सन्निपात-ज्वरमें भी वैसी ही चाल रहती है। त्रिदोष के बुखार को सन्निपात-ज्वर कहते हैं। इस ज्वरमें मनुष्य बहुत जल्दी मरता है। कोई विरला ही भाग्यशाली बचता है।

त्रिदोष के बुखार में, अगर तीसरे पहर के समय नाड़ी की असली टेढ़ी चाल, पीछे पित्त की चञ्चल चाल, इसके पीछे कफ की स्थिर चाल दीखे, तो रोग को साध्य समझो; यदि इसके विरुद्ध दीखे तो रोग को असाध्य समझो।

अगर नाड़ी की चाल कभी सूक्ष्म और कभी बे-मालूम, कभी इधर कभी उधर घूमती जान पड़े—अथवा अँगूठे के नीचे कभी नाड़ी चलती जान पड़े और कभी चलती ही न जान पड़े, ग़ायब हो जाय, तो आप रोग को असाध्य समझ लो। किन्तु याद रक्खो, बोझा उठाने, डरने और रञ्ज करने या बेहोश होने पर भी नाड़ी की चाल ऐसी ही हो जाती है; मगर उस अवस्था में रोग को असाध्य मत समझना। सब से अधिक इस बात का ध्यान रक्खो कि, जब तक नाड़ी अँगूठे की जड़ से ग़ायब न हो जाय, तब तक किसी रोग को भी असाध्य मत समझो।

अन्तर्गत ज्वरमें नाड़ी

शरीर के भीतर ज्वर होने से रोगी का शरीर छूने में शीतल मालूम होता है, किन्तु नाड़ी अत्यन्त गर्म मालूम होती है।

मिश्रित

कामातुरता, क्रोध, भारी चिन्ता और भय में नाड़ी क्षीण चलती है।

मन्दाग्निवाले और धातुक्षीणवाले की नाड़ी मन्दी चलती है।

रक्तकोप में नाड़ी कुछ गरम और भरी सी होती है ।

आमके रोगों में नाड़ी भारी होती है । जिनकी अग्नि दीप्त होती है, उनकी नाड़ी हलकी और ठीक चाल पर जल्दी-जल्दी चलती है ।

सुखी आदमी की नाड़ी स्थिर चाल से चलती है और बलवान होती है ।

भूखे आदमी की नाड़ी चपल और अघाये की स्थिर होती है ।

दो दोषों का कोप होने पर नाड़ी कभी मन्दी चलती है और कभी तेज़ी से चलती है । ऐसे मौके पर नाड़ी के वेग से, बारीकी से से विचार करके, कुपित हुए दोनों दोषों का पता लगाना चाहिये ।

अँगूठे से ऊपर की नाड़ी यदि समान चाल से चले, तो समझ लो कि नाड़ी में कोई दोष नहीं है ।

ज्वर चढ़नेके समय नाड़ी गर्म और तेज़ चलती है । भय, क्रोध, चिन्ता और घबराहटमें भी गर्म और तेज़ चलती है ।

कफ और प्रदर रोगमें नाड़ी स्थिर होती है ।

अजीर्ण रोगमें नाड़ी कठिन और भारी हो जाती है ।

भूख लगने पर नाड़ी प्रसन्न, हलकी और जल्दी चलनेवाली होती है ।

प्रमेह, बवासीर, मल-वृद्धि और अजीर्णमें नाड़ी जल्दी-जल्दी चलती है ।

गर्भवती होनेपर नाड़ी भारी और बादी को लिए हुए होती है ।

वात-ज्वरमें नाड़ी टेढ़ी और चपलता-पूर्वक चलती है और छूने से शीतल मालूम होती है ; किन्तु पित्त ज्वरमें सीधी, लम्बी और जल्दी-जल्दी दौड़ती चलती है ।

अगर नाड़ी देखनेके समय पहले मन्दी मालूम हो, पीछे धीरे-धीरे प्रचण्ड वेगसे चलने लगे, तो समझ लो कि जाड़ेका बुखार या कम्पज्वर होगा । ऐसी नाड़ीसे इकतरा, तिजारी या चौथैया ज्वर

आता है। भूत प्रेतकी बाधा या इकतरामें नाड़ीका चलना मालूम नहीं होता।

सोते हुए आदमीकी नाड़ी ज़ोरसे फड़कती है।

रक्तपित्त रोगमें नाड़ी मन्दी, कठिन और सीधी चलती है।

कफ खाँसी में नाड़ी स्थिर और मन्दी चलती है; किन्तु श्वास रोगमें नाड़ीकी चाल तेज़ हो जाती है।

राजयक्ष्मा रोगमें नाड़ी की चाल हाथी की चाल के समान हो जाती है।

नशेवाले की नाड़ी कठिनताके साथ सूक्ष्म गति से चलती है और चारों ओर से भारी मालूम होती है।

बवासीर में नाड़ी स्थिर और मन्दी तथा कभी टेढ़ी और कभी सीधी चलती है।

अतिसार रोग में नाड़ी ऐसी मन्दी हो जाती है, जैसे ठण्ड के मौसम में जोंक हो जाती है।

मूत्राघात में नाड़ी बारम्बार टूटती हुई फड़कती है।

पाण्डु या पीलिये में नाड़ी चञ्चल और तीक्ष्ण हो जाती है। कभी जान पड़ती है और कभी नहीं जान पड़ती।

कोढ़ में नाड़ी कठिन चलती है। उसकी चाल भी एक नहीं रहती; कभी चलती है कभी नहीं।

असाध्य नाड़ी

रोग असाध्य होने पर कभी नाड़ी मन्द, कभी तेज़ और कभी चलते-चलते खण्डित होकर यानी टूटकर चलने लगती है; यानी कभी सूक्ष्म, कभी स्थूल, इस तरह घड़ी-घड़ी में चाल बदलकर चलने लगती है।

असाध्य नाड़ी चमड़े के ऊपर से दीखने लगती है। नाड़ी की चाल अत्यन्त चञ्चल हो जाती है और कुछ दबी सी रहती है। हाथ

में आती है और बिछल जाती है और अत्यन्त चञ्चल हो जाती है।

जो नाड़ी ठहर-ठहर कर चलती है; यानी चलती है ठहर जाती है, और फिर चलती है, वह प्राणनाशक होती है। अति शीतल और अत्यन्त क्षीण नाड़ी भी प्राण नाश करती है।

होती है। स रोगीकी नाड़ी बहुत ही सूक्ष्म और बहुत ही शीतल होगी, भूखेकसी तरह न जीवेगा।

हो जिस रोगी की नाड़ी कभी कैसी और कभी कैसी चलती है और कभी त्रिदोष-युक्त होती है, वह शीघ्र ही मर जाता है।

से जो नाड़ी रुक-रुक कर चलती है, वह प्राणनाश करती है। इसी तरह जो एकदम से तेज़ हो जाती है अथवा एकदम से शीतल हो जाती है, वह निश्चय ही प्राण नाश करती है।

रोगी प्रलाप करता हो, आनतान बकता हो, प्रलाप के शेष में नाड़ी शीघ्रगति से चलती हो, दोपहर को या सन्ध्या-समय आग के समान ज्वर हो जाय, तो वह रोगी दिन भर जीवे; दूसरे दिन तो अवश्य ही मर जाय।

जिसकी नाड़ी स्थिर हो और मुँह में बिजलीकीसी दमक दीखे, वह एक दिन जीवे, दूसरे दिन मर जावे।

सन्निपात में जिसकी नाड़ी मन्दी-मन्दी, टेढ़ी-मेढ़ी, घबराहट लिये, काँपती हुई चाल से रुक-रुक कर चले, कभी नाड़ी का फड़कना मालूम ही न हो, नष्ट हो जाय, या जो अपने असल मुकाम से हट जाय, देखनेवाले की अँगुलियों को न मालूम पड़े, और फिर ज़रा देर में ठिकाने पर आ जाय या मालूम पड़ने लगे—ऐसे लक्षण वाली नाड़ी सन्निपात-रोगी को मार डालती है।

कलाई के अगले भाग में नाड़ी तेज़ी से चले, कभी शीतल हो जाय, चिपचिपा पसीना आवे, ऐसी नाड़ी सात दिन में रोगीको मार देती है।

शरीर शीतल हो, मुँह से साँस चले, नाड़ी अत्यन्त गर्म हो और तेज़ी से चले, तो रोगी पन्द्रह दिनमें मरे।

जब नाड़ी रुक-रुक चलने लगे, अथवा एकदम से ऐसी हतवेग हो जाय कि उसका फड़कना मालूम ही न पड़े, तो रोगी को एक दिन में मरा समझो।

अगर नाड़ी कभी मन्दी चले और कभी ज़ोरसे चले, तो उसे दो दोषोंवाली समझो। अगर दो दोषोंवाली नाड़ी भी अपने स्थानसे भ्रष्ट हो जाय, यानी कभी कहीं और कभी कहीं जा चले तो समझ लो कि रोगी मर जायगा।

यदि किसीकी नाड़ी थोड़ी देर तेज़ चलकर फिर धीमी हो जाय, तथा शरीर में शोथ न हो,तो उस रोगी की मृत्यु सातवें या आठवें दिन समझना।

जिसकी नाड़ी अँगूठे की जड़ से या अपने स्थान से आधे जौ भर जाय, तो उसकी मृत्यु तीन दिन में हो।

सन्निपात ज्वरमें जिसका शरीर बहुत गर्म हो, पर नाड़ी अत्यन्त ल हो, तो उसकी मृत्यु तीन दिन बाद समझनी।

अगर नाड़ी की चाल भौंरे की तरह हो; यानी दो-तीन बार बहुत तेज़ चलकर, फिर थोड़ी देर को ग़ायब हो जाय, फिर उसी तरह तेज़ चलने लगे। यदि बारबार ऐसा जान पड़े, तो कह दो की रोगी एक दिन में मरेगा।

किसी रोगी के हृदयमें जलन हो और उसकी नाड़ी अपने स्थान—अँगूठे के मूल—से खिसक कर थोड़ी-थोड़ी देर में चलती हो, तो जब तक हृदयमें जलन है तभी तक जीवन है। जलन की शान्ति होते-होते ही रोगी मर जायगा।

मरे हुए के चिन्ह।

नसों और नाड़ियों का फड़कना बन्द हो जाय, इन्द्रियों का हिलना-जुलना देखना-भालना सुनना प्रभृति बन्द हो जाय,

सारा बदन शीतल हो जाय, सब रोग शान्त हो जायँ, चिन्ता और मानसिक विकारों के रास्ते सूने हो जायँ, होश बिल्कुल न हो, चन्द्र और सूर्य स्वर अपने गुणों से रहित हो जायँ—दोनों नथनों से हवा का आना-जाना बन्द हो जाय—ऐसी हालत होने से समझ लो, कि मृत्यु हो चुकी।

नाड़ी देखना सीखनेकी तरकीब ।

नाड़ी देखने का काम महा कठिन है। यह गुरु के शिष्य को पास बिठा कर बताने, रोगी की नाड़ी अपने सामने दिखाने, भूल हो तो उसको बताने अथवा अभ्यासी के हर किसी रोगी की नाड़ी देखने और पुस्तक से मिला-मिला कर अभ्यास बढ़ाने से आ सकती है। अभ्यास बड़ी चीज़ है। अभ्यास से बिना गुरु और बिना पुस्तक के भी नाड़ीज्ञान हो सकता है। मगर सैकड़ों-हज़ारों रोगियोंकी नाड़ी देखनी होगी और बुद्धि लड़ानी होगी। अगर गुरु मिल जाय तो बहुत ही जल्दी ज्ञान हो सकेगा और ज़रा भी तकलीफ़ न होगी। जहाँ तक हो सके, नाड़ीपरीक्षा सीखनेको गुरु तलाश करना चाहिए। मगर नाड़ी का पूरा ज्ञान रखनेवाले वैद्य आजकल भारत में कहीं-कहीं और बहुत थोड़े हैं। यों तो रोगी के दिलमें विश्वास जमाने को सभी नाड़ी पकड़ लेते हैं।

डाक्टरोंकी नाड़ी परीक्षा ।

डाक्टर लोगों को नाड़ी का ज्ञान नहीं होता। वे लोग नाड़ी को छूते तो हैं, मगर वह ढोंगमात्र है। एक सेकण्ड में खाली हाथ से नाड़ी के छू देने से कोई बात मालूम नहीं हो सकती। डाक्टरी में नाड़ी को "पल्स" कहते हैं। अगर डाक्टर नाड़ी देखे, तो खाली सर्दी गर्मीकी ज़ियादती अथवा सरदी गर्मीकी कमी मालूम कर सकता है। डाक्टर लोग घड़ी सामने रखकर, नाड़ी पर हाथ रख कर नाड़ी

के फड़कने को गिनते हैं। उनके यहाँ इसका एक हिसाब है। यह हिसाब वैद्योंको भी जानना चाहिये,क्योंकि यह सहज काम है और इसमें भूल नहीं हो सकती। उम्र के कम-ज़ियादा होने के साथ १ मिनट पर इसका हिसाब है।

स्वस्थ मनुष्यकी नाड़ी १ मिनटमें६०से७५ बार और किसी-किसी स्वस्थ की नाड़ी १ मिनट में ५० बार चलती है तथा किसी-किसी स्वस्थ की नाड़ी एक मिनट में ६० बार भी चलती है।

पेट के भीतर के बच्चे की	नाड़ी	१ मिनिट में	१६०	बार
ज़मीन पर गिरे बालक की	,,	,,	१४० से १३०	,,
एक साल की उम्र तक	,,	,,	१३० से ११५	,,
दो साल की उम्र तक	,,	,,	११५ से १००	,,
तीन साल की उम्र तक	,,	,,	१०० से ९९	,,
सात साल की उम्र तक	,,	,,	९० से ८५	,,
सात से चौदह वर्ष तक	,,	,,	८५ से ८०	,,
चौदह से ३० वर्ष तक	,,	,,	८०	,,
तीस से ५० वर्ष तक	,,	,,	७५	,,
पचास से ८० वर्ष तक	,,	,,	६०	,,

ज्यों-ज्यों उम्र अधिक होती जाती है, नाड़ी का फड़कना कम होता जाता है। हालके जन्मे बालक की नाड़ी १४० से १३० बार तक फड़कती है। जवान और अधेड़की नाड़ी केवल ८० बार और अस्सी वर्ष के बूढ़े को ६० बार ही फड़कती है। किसी-किसी ने बूढ़े की नाड़ी १ मिनट में ६५ से ५० बार तक भी लिखी है। यदि किसी की नाड़ी उम्र के हिसाब से जितनी कम फड़के उतनी ही सरदी समझो और जितनी ज़ियादा फड़के उतनी ही गर्मी समझो। सरदी होने से नाड़ी कमती बार फड़कती है; गरमी होने से ज़ियादा बार फड़कती है। जैसे एक जवान की नाड़ी हमने देखी, वह एक मिनट में ८० बार फड़कनी चाहिये, मगर वह ७० बार

फड़की, तो समझ लो कि १० अंश सरदी बढ़ी हुई है और अगर ९० बार फड़की तो १० अंश गरमी बढ़ी हुई समझो।

थर्मामीटर
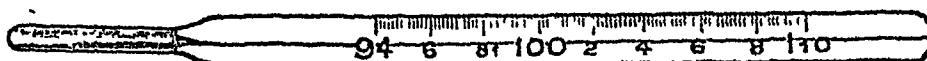
आजकल थर्मामीटर नामक एक यन्त्र चला है। वह एक कांचकी नली सी होती है। उसमें एक ओर पारा रहता है। उसके आगे छोटी-छोटी रेखाएँ और नम्बर लिखे रहते हैं। इस यन्त्र से शरीर की गरमी और सरदी का बहुत ही ठीक पता लगता है। अगर थर्मामीटर बिगड़ा हुआ न हो, तो कभी भूल नहीं हो सकती। बुख़ार देखने में इससे बड़ी सच्ची सहायता मिलती है। डाक्टर तो इसे अपने जेब में रखते ही हैं; प्रत्येक वैद्य को भी इसे अपने पाकिट में रखना चाहिये। (थर्मामीटरका चित्र ऊपर देखिये)

शारीरिक गरमी से इसका पारा धीरे-धीरे ऊपर की ओर, जिधर नम्बर और रेखायें लिखी हैं, चढ़ता है। इन रेखाओं और अङ्कों को अङ्गरेज़ी में डिग्री कहते हैं। पारा जितनी डिग्री ऊँचा चढ़े, उतनी ही गरमी समझनी चाहिये।

इस यन्त्र को रोगी की बग़ल में इस तरह रखते हैं, जिससे पारे के तरफ़ की नली बग़ल से दबी रहती है; पारेका अंश बाहर नहीं रहता। पारे का अंश यदि बाहर रह जायगा, तो ठीक काम न होगा; इसलिए इसमें भूल करना ठीक नहीं।

पहले रोगी को करवट लेकर लिटाना चाहिए। पीछे नीचे की बग़ल में, जिधर पारा रहता है उधर से थर्मामीटर को दबा देना चाहिये। दबाने से पहले बग़ल का पसीना वगैर: क़पड़े से पोंछ देना चाहिये। अगर मुँहमें थर्मामीटर लगाना हो, तो जीभके नीचे लगाना चाहिये और मुँह बन्द करवा देना चाहिये।

कोई थर्मामीटर एक मिनिट में चढ़ जाता है, कोई २ मिनिट में, कोई पाँच मिनिट में, और कोई इससे भी ज़ियादा मिनटों में चढ़ता है। मतलब यह है कि जितनी मिनिट का थर्मामीटर हो, उतनी मिनिट तक बग़ल या मुँह में रखना चाहिये; कम या ज़ियादा देर तक रखना ठीक नहीं है। जितनी मिनिटका थर्मामीटर होता है, उस पर लिखा रहता है और जो थर्मामीटर कमती से कमती मिनिट में चढ़ जाता है, उसीका मूल्य ज़ियादा होता है। एक मिनिट में चढ़ जानेवाला थर्मामीटर अच्छा होता है।

सवेरे या शाम को थर्मामीटर लगाना चाहिये। ज़रूरत होने से चाहे जब लगा सकते हो। सख़्त बुख़ारों में घण्टे-घण्टे या दो-दो घण्टों पर टेम्परेचर लेना चाहिये और एक कापीमें लिख लेना चाहिये, इससे चिकित्सा में बड़ी सुभीता होता है।

तन्दुरुस्ती की हालत

में ताप या टेम्परेचर ९८ डिग्री, डेसीमल चार फारेनहीट; और २६ सालसे कम उम्रवाले का ताप ९९ डिग्री डेसीमिल (दशमलव) ४ फारेनहीट होता है। धूपमें रहने या चलकर आने, अथवा आग के पाससे उठकर आने, कसरत करने या ज़ीना चढ़कर आनेके बाद तत्काल थर्मामीटर लगाया जाय तो ९८·४ या ९९·४ डिग्री से भी अधिक ताप या गरमी रहती है। दिनमें सोकर उठनेके बाद, आराम से बैठे रहने या लेटे रहने के बाद, यदि तत्काल थर्मामीटर लगाया जाय तो मामूल से कम गरमी नज़र आती है। तन्दुरुस्त शरीर में भी रात को ताप कम रहता है, सवेरेसे बढ़ने लगता है। और मध्याह्नकालमें ज़ियादा हो जाता है। तन्दुरुस्त या स्वस्थ शरीरमें मामूली तौर से ९८ दर्जे गरमी-सरदी रहती है। अगर ९८ से ऊपर पारा चढ़े, तो आप उतनीही गरमी बढ़ी समझें और अगर ९८ डिग्री से कम हो जाय तो उतनीही सरदी समझें।

देखा गया है, गरम मिज़ाजवालोंके तन्दुरुस्त रहने की हालत में ९८॥ या ९९ डिग्री तक टेम्परेचर होता है। इससे ज़ियादा होने पर रोग समझा जाता है।

ज्वरमें टेम्परेचर।

जुकाम की हरारत में	१०० डिग्री
मामूली ज्वरमें	१०१॥ "
तेज़ बुख़ारमें	१०४ "
मारक ज्वरमें	१०६॥ "
अभिन्यास ज्वरमें	१०६।१०७ "
राजयक्ष्मा (तपेदिक़) में	१०२।१०३ "

ज्वरमें १०५ डिग्री से ज़ियादा ताप रहनेसे भय रहता है; १०६ से ऊपर होनेसे मृत्यु की आशङ्का पूरी पक्की हो जाती है और १०८ डिग्री से ऊपर ताप होनेसे रोगी अवश्य मर जाता है।

किसी ज्वर-युक्त रोग में यदि ताप १०१ या १०४ डिग्री सदा रहे, तो आराम होने की सम्भावना समझो। यदि १०० या १०५ डिग्री ताप सदा बना रहे तो रोग का आराम होना मुश्किल है। अगर १०६ या १०७ डिग्री रहे तो डर समझो, अगर १०९ या ११० डिग्री हो जाय तो मृत्यु निश्चय होगी।

राजयक्ष्मा रोग में यकृत या लिवर में घाव हो तो ताप १०२ या १०३ डिग्री रहता है, पर ज्यों-ज्यों घाव बढ़ता जाता है त्यों-त्यों ताप भी बढ़ता जाता है।

रोग आराम होरहा है और उधर ताप भी धीरे-धीरे घट रहा है, तो समझ लो कि अब दुबारा रोग के लौट पड़ने का भय नहीं है।

हैज़े में, मौत के नज़दीक होने से, ताप घटकर ७७ से ७९ डिग्री तक हो जाता है। नवीन ज्वर, विषमज्वर, पुराने क्षयरोग में

मौत के निकट होने से, ताप ९८ डिग्री से नीचे की ओर चला जाता है।
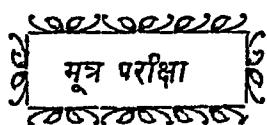
मूत्र परीक्षा

नाड़ी-परीक्षाके प्रधान होने पर भी बहुतसे रोगोंमें अन्यान्य परीक्षाओं के बिना काम न नहीं चलता। जैसे; प्रमेह आदि रोगोंमें मूत्र-परीक्षा की ; अतिसार, संग्रहणी और सन्निपात प्रभृति में मल-परीक्षा की; आमवात में जिह्वा-परीक्षा की; कण्ठ-रोगोंमें शब्द-परीक्षा की; चर्म-रोगोंमें स्पर्श-परीक्षा की ; पीलिये और कामला प्रभृतिमें नेत्र-परीक्षा की ज़रूरत होती है। प्रत्येक रोगमें जैसी परीक्षा होनी चाहिये, वैसीही होनेसे रोग ठीक समझमें आता है। पहले हम मूत्र-परीक्षा लिखते हैं:—

यूनानी चिकित्सामें इसको बहुत चाल है। हकीम लोग मूत्र-परीक्षा को "क़ारूरह देखना" कहते हैं। अब हमारे वंगसेन, वैद्य-विनोद, योगचिन्तामणि प्रभृति ग्रन्थोंमें भी मूत्र-परीक्षा लिखी है। चरक सुश्रुतादि में इसका ज़िक्र नहीं है। हमारी समझमें इस तरह की परीक्षा वैद्यक में यूनानी से आई मालूम होती है। ऐसे तो मल, मूत्र, जीभ और आँख के देखने की बात औरभी संस्कृत ग्रन्थोंमें लिखी है ; पर ये तरकीबें नहीं हैं।

मूत्र लेने की विधि ।

वैद्य रोगी को चार घड़ी के सवेरे पलँग से उठा कर, काँच या काँसीके बर्तनमें पेशाब करावे, किन्तु पहली धारको ज़मीन पर गिरवा दे और बीचकी धारको उक्त प्रकारके बर्तनोंमेंसे किसीमें ले, पीछे की धार भी ज़मीन पर गिरा देनी चाहिये। मतलब यह कि पहली और पिछली धार वैद्य काँच की शीशी या काँसी के बर्तन में न ले, केवल बीच की धार ले। पीछे शीशी हो तो काग से बन्द करदे

और चौड़ा बर्तन हो तो कपड़े से अच्छी तरह ढक दे, ताकि हवा न जा सके।

परीक्षा करने की विधि।

सवेरे सूरज निकलने पर, जब अच्छी तरह से उजाला हो जाय, चाँदने या धूप में उस पेशाब के बर्तन को रखकर, कपड़ा हटा-कर मूत्र की परीक्षा करे।

मूत्रसे रोगों की पहचान।

अगर बादी का कोप होगा तो पेशाब पानी की तरह साफ़, रूखा और मिक़दार में ज़ियादा होगा।

अगर पित्त का कोप होगा, तो पेशाब लाल या पीला होगा और मिक़दार में थोड़ा होगा।

अगर कफ का कोप होगा, तो पेशाब सफ़ेद, गाढ़ा और चिकना होगा।

दो दोषों के कोप में दो दोषोंके और तीनों दोषों के कोपमें तीनों दोषों के लक्षण नज़र आते हैं।

वैद्य विनोदमें लिखा है,—वायु का कोप होने से पेशाब नीला, सफेद और किसी कदर पीला होगा; पित्त का कोप होनेसे पेशाब बहुत गर्म और बहुत पीला होगा और कफ का कोप होनेसे पेशाब चिकना, सफ़ेद और शीतल होगा। त्रिदोष में पेशाब काला, गर्म, लाल और धूमिल रंग का होगा।

एक और वैद्यराज लिखते हैं,—वायुसे दूषित मूत्र चिकना, पीला, अथवा काला पीला अथवा अरुण होता है। पित्त से दूषित मूत्र लाल और कफ से दूषित झागदार और गदला होता है।

ज्वर में सफ़ेद धारा, महाधारा और पीली धारा होती है। महा-ज्वरमें लाल धारा होती है। यदि काली धारा हो तो रोगी को

मृत्यु समझनी चाहिये। सन्निपात में पेशाब का रङ्ग काला होता है।

जलोदर रोग में पेशाब घी के दानों के समान होता है।

आमवात में पेशाब माठे के समान होता है।

अजीर्ण में पेशाब का रङ्ग सफेद और लाल होता है अथवा बकरी के पेशाब जैसा होता है।

क्षयरोग में भी मूत्र का रङ्ग काला होता है। अगर क्षयरोग में पेशाब का रङ्ग सफेद हो, तो असाध्य समझना। ज्वर की अधिकता में मूत्र लाल और स्वच्छ होता है। कभी-कभी धूएँ के रंग का भी होता है।

पित्तज्वर में पेशाब पीला, कफज्वर में झागदार, वातज्वर में काला और निरामज्वर में ईख के रस के समान होता है।

प्रसूत-दोष में पेशाब ऊपर से पीला, नीचे से काला और बुदबुदे की तरह का होता है।

सन्निपातज्वर में मूत्र काला और साफ निर्मल होता है।

पित्तोल्वण यानी पित्ताधिक्य-सन्निपात में पेशाब ऊपर से पीला और नीचे लाल होता है।

रसाधिक्य होने से पेशाब ईखके रस के समान होता है और आँखें लाल पीली होती हैं। रसाधिक्य में लंघन कराना लाभदायक है।

उदर-वृद्धि यानी आहार से पेट बढ़ने की दशा में पेशाब तेल के समान चिकना होता है।

रुधिर-कोप में पेशाब ऊपर से नीला और नीचे से लाल होता है।

रक्तवात में पेशाब का रंग लाल होता है।

रक्तपित्त में पेशाब का रंग कसूम के रंग के समान होता है।

पित्त की अधिकता में पेशाब का रंग पीला और साफ होता है।

ज्वर प्रभृति रोगों में रस की अधिकता होने से पेशाब ईख या गन्ने के रस के समान होता है।

जीर्णज्वर में पेशाब बकरी के पेशाब जैसा होता है।

मूत्रातिसार रोगमें पेशाब मिक़दार में ज़ियादा होता है। अगर उसे कुछ देर रखकर देखें, तो नीचे लाल रंग का होता है।

कफवातमें पेशाब काँजी जैसा होता है। कफपित्तमें पाण्डु और पीले रंग का होता है।

मल की अधिकता होने से पेशाब पीला और मिक़दार में ज़ियादा होता है। खून-विकार में पेशाब खून के समान होता है।

बहुमूत्र रोग में पेशाब बार-बार होता है। इस रोग में पेशाब करते समय दर्द नहीं होता और पेशाब, साफ़, शीतल गन्धहीन होता है।

सोज़ाक में पेशाब ऐसा जल-जल कर होता है कि, रोगी रो उठता है। पेशाब के नाम से जाड़ा चढ़ आता है। ऐसा मालूम होता है, मानों घावों पर नमक छिड़का जाता है। बूँद-बूँद पेशाब होता है।

हैज़े में पेशाब बन्द हो जाता है। यह लक्षण ख़राब है।

घोर तेज़ सन्निपातमें प्रायः पेशाब काला हो जाता है। यह हालत ख़राब है।

वातज्वरमें केशर जैसा पीला, पित्तज्वरमें साफ़ पीला और कफ-ज्वर में सफ़ेद और गाढ़ा पेशाब होता है।

सोम रोग में शरीर की धातुएँ पेशाब के रास्ते से बहा करती हैं। उठते-उठते धोती में पेशाब हो जाता है।

पुराने रोग में पेशाब लाल हो जाता है।

अतिसारमें पेशाब नीचे से बहुत लाल दीखता है।

धातुओं की समानता होने पर पेशाब कुए की जल की तरह

साफ होता है। जल की तरह का, बिजौरे नीबू की तरह और काँजी की तरह का पेशाव निर्दोष होता है।

पित्तप्रकृति वाले का पेशाव तेल के समान होता है, कफप्रकृति-वाले का कीचके पानी के समान और वात प्रकृतिवाले का जलके समान और मिक़दार में ज़ियादा होता है।

उदकप्रमेह वाले का पेशाव स्वच्छ, बहुत सफेद, शीतल, गन्ध-रहित पानी के समान, कुछ गाढ़ा और चिकना होता है।

इक्षुप्रमेह वाले का पेशाव ईखके रस के समान अत्यन्त मीठा होता है।

सुरा प्रमेह वालेका पेशाव शराबके समान, ऊपर से निर्मल और नीचे से गाढ़ा होता है।

पिष्टप्रमेह वाले का पेशाव पिसे चाँवलों के पानी के समान सफेद और मिक़दारमें ज़ियादा होता है।

शुक्रप्रमेह वाले का पेशाव शुक्र यानी वीर्य के समान होता है अथवा उसके पेशाव में वीर्य मिला रहता है।

सिकता प्रमेह वाले के पेशाव में बालू रेत के समान मल के रवे होते हैं।

शीत प्रमेह वाले का पेशाव मीठा और बहुत ठण्ढा होता है। यह रोगी बारम्बार पेशाव करता है।

शनैर्मेह वाला धीरे-धीरे पेशाव करता है।

लाला प्रमेह वालेका पेशाव लारके समान, तारयुक्त और चिकना होता है।

क्षार प्रमेह वाले का पेशाव खारी जल के समान होता है।

नीलप्रमेहवालेका पेशाव नीले रंगका अथवा पपैहा पक्षीके पंखके समान होता है।

कालप्रमेह वाले का पेशाव स्याही के समान होता है।

हारिद्रप्रमेह वाले का पेशाब हल्दी के समान और दाहयुक्त होता है।

मांजिष्ठप्रमेहवाले का पेशाब बदबूदार और मंजीठ के रंग का होता है।

रक्तप्रमेहवाले का पेशाब बदबूदार, गरम, खारी और खूनके समान सुर्ख़ होता है।

वसामेही का पेशाब चरबी मिला या चरबी के समान होता है।

मज्जा प्रमेही का पेशाब मज्जा मिला या मज्जा के समान होता है।

क्षौद्र प्रमेहीका पेशाब कसैला, मीठा और चिकना होता है।

हस्तिप्रमेही का पेशाब मस्त हाथी के समान निरन्तर वेगरहित और तारदार होता है। यह रोगी ठहर-ठहर कर मूतता है।

तैल द्वारा मूत्र परीक्षा।

पहले लिखी हुई रीतिसे पेशाब लेकर धूप में रख लेना चाहिये, पीछे एकचित्त होकर उसमें तेल की बूँदें डालनी चाहियें।

अगर तेल की बूँद डालते ही पेशाबमें बबूले या बुदबुदे से हो जायँ, तो पित्त-विकार समझो।

अगर बूँदें रूखी और कालीसी दीखें, तो वायु-विकार समझो। इसमें तेल की बूँदें पेशाब पर तैरा करती हैं।

अगर तेल की बूँदें कीच के समान अथवा तालाब के जल के समान हो जायँ, तो कफका विकार समझो। इस दशामें तेलकी बूँदें पेशाब में मिल जाती हैं।

अगर तेल की बूँदों के डालने से पेशाब का रंग सरसों के तेल के समान हो जाय, तो वातपित्त का विकार समझना चाहिये।

साध्य, असाध्य या मृत्यु।

अगर तेल की बूँद पेशाब पर जाकर फैल जाय, तो रोग को

साध्य समझो; अगर न फैले, बूँद की बूँद ही रही आवे, तो असाध्य समझो।

अगर तेल की बूँद डालने से पूरब, पच्छम या उत्तर की ओर फैले, तो रोगी रोग से निजात (छुटकारा) पा जायगा।

अगर तेल की बूँदें दक्खन, ईशान, आग्नेय, वायव्य या नैर्ऋत की ओर फैलें, तो रोग असाध्य समझो।

अगर तेल की बूँद पेशाब में डालने से डूब जाय या नीचे बैठ जाय, तो रोग को असाध्य समझो।

अगर तेल की बूँद पेशाबमें डालने से फ़ैलकर अनेक प्रकारकी विकृत मूर्त्तियों के समान हो जाय, अथवा हल, कछुआ, गधा अथवा ऊँटकी सी शक्ल की हो जाय, तो रोग को असाध्य समझो।

अगर तेल की बूँद हंस या छत्र आदिके समान हो जाय, तो रोगी आराम होकर बहुत दिनों तक जीवेगा।

अगर तेल की बूँद पेशाब में चक्कर खाने लगे अथवा उसके बीच में छेद हो जाय अथवा तलवार, दण्डे या धनुष(कमान)के आकारकी हो जाय, तो रोगी की मृत्यु समझो।

अगर तैलबिन्दु तालाब, कमल, हंस, हाथी, छत्र या तोरण के आकार की हो जाय, तो रोगीको दीर्घायु समझो।

अगर पेशाब में तेल की बूँद बबूले की तरह उठे तो देव-दोष समझो।

अगर तेल की बूँद पूरब, पच्छम, उत्तर, वायव्य या नैर्ऋत— इन दिशाओंमें फैले तो शुभ* है। अगर दक्खन, ईशान और अग्नि-कोण में फैले तो अशुभ है। ऐसी तैल-परीक्षा समतल या हमवार ज़मीन में करनी चाहिये।

---

* वङ्गसेनने ईशान, आग्नेय, वायव्य और नैऋत इन चारों विदिशाओंकी ओर तेलकी बूँदका फैलना बुरा लिखा है, मगर योग चिन्तामणिवालेने वायव्य और नैऋतकी ओर फैलना शुभ लिखा है।

वैद्यविनोदमें लिखा है—पेशाब में डाली हुई तेल की बूँद का आकार कमल, शंख, मणि, चँवर के जैसा हो तो आरोग्यता समझो; यदि साँप, सिंह, बैल, बिच्छू, कछुआ और कँवाड़े के समान हो तो रोगी मर जायगा।

अगर तैल-बिन्दुका आकार त्रिशूल, धनुष, वज्र, कुठार, खड्ग, दण्ड, वाण, और छुरी प्रभृति का सा हो तो रोगी मर जायगा।

वायु का विकार होने से तेल की बूँद सर्प के आकार की सी हो जाती है, पित्त का विकार होनेसे छत्रके समान गोल और फैली हुई होती है। कफ का विकार होने से मोती की तरह की रहती है। अगर तेल की बूँद चलनी के समान या दो सिर वाले आदमी की सी हो जाय, तो भूत-बाधा समझो।

अगर तेल की बूँद पेशाब पर फैल जाय तो रोग साध्य है। अगर न फैले तो कष्टसाध्य है, अगर नीचे बैठ जाय तो असाध्य है।

अगर तेल की बूँद का फैलाव पूरब या उत्तर की ओर ज़ियादा हो, तो रोगी जल्दी आराम हो; अगर दक्खनकी ओर हो तो देर से आराम हो; अगर पच्छम की ओर हो तो आयु का नाश हो।

तेल की बूँदके दिशाओं की ओर फैलने के सम्बन्ध में ज़मीन-आस्मान का मत-भेद है। बङ्गसेनने दक्खन की ओर बूँद का फैलना बुरा लिखा है, योगचिन्तामणिवालेने भी ऐसा ही लिखा है। नागार्जुन महोदय कहते हैं कि, दक्खनकी ओर फैले तो देरसे आराम हो। उक्त दोनों सज्जनोंने पच्छमकी ओरको फैलना अच्छा लिखा है; किन्तु नागार्जुन पच्छम की ओर फैलने को आयुनाशक कहते हैं। पाठक स्वयं आज़मा कर देखें।

यूनानी मत।

यूनानी हिकमत वाले कहते हैं, कि सवेरेके समय पेशाब देखना चाहिये। अगर पेशाब सफेद हो तो सफरा यानी पित्त की ज़िया-

दती समझो; अगर सुर्ख़ हो तो खून की ज़ियादती समझो ; अगर हरी रङ्गत हो तो सौदा यानी वात की ज़ियादती समझो ; अगर सफ़ेद हो तो बलग़म यानी कफ अथवा चरबी का आना समझो ।

गरमी होनेसे पेशाब लाल, पीला और कम आता है तथा जलन होती है। सरदी होनेसे पेशाब सफ़ेद, ज़ियादा और बिना जलन के आता है ।

मल परीक्षा

वात के कोप से मल टूटा हुआ, झाग मिला हुआ, रूखा और धूएँ के रङ्ग का होता है।

वात-कफ के कोप से सुर्खी-माइल पीला होता है।

वात-पित्त के कोपसे मल बँधा हुआ, कभी बिखरासा, या पीला कालासा होता है ।

कफपित्तके कोपसे पीला काला, कुछ गीला और चीकट सा होता है ।

त्रिदोष के कोप से काला, पीला, टूटा सा, सफ़ेद और बँधा हुआ होता है ।

अजीर्ण-रोगी का मल बदबूदार और ढीला होता है ।

वातादि दोष क्षीण होनेसे मल कपिल और गाढ़ा होता है।

जलोदरवालेका मल सफ़ेद और बहुतही सड़ा हुआ होता है ।

क्षयी वाले का मल काला होता है ।

आमवातवाले का मल कमर में दर्द होकर पीला होता है। इसमें दस्त कम होता है और पेट फूला रहता है ।

बहुत काला, बहुत सफ़ेद, बहुत पीला या बहुत लाल मल अथवा अत्यन्त गरम मल जिसका होता है, उसकी मृत्यु होती है ।

तीक्ष्ण अग्निवाले का मल सूखा होता है और मन्दाग्निवाले का मल पतला होता है।

जिसका मल सड़ा हुआ, बदबूदार या मोर की सी चन्द्रिका के समान होता है, वह रोगी असाध्य होता है।

वात रोगमें मल बँधा हुआ, रूखा और धूमिल रंग का होता है। पित्त रोग में पीला और पतला होता है; कफमें सफेद, गाढ़ा और बहुत होता है। दो दोषों और तीन दोषों के मिलकर कोप करने से मल काला, कम और किसी क़दर गरम होता है।

अतिसार रोग में मल पतला होता है और कृमि-रोग में भी मल पतला होता है, किन्तु कृमि-रोगी का जी मिचलाया करता है।

हैज़ेमें पानीके समान पतले दस्त होते हैं, उनमें मल नहीं रहता।

संग्रहणी में कच्चा अन्न बिना पचे यों का यों निकलता है।

वातज्वर में दस्त क़ब्ज होता है या सूखा और थोड़ा दस्त होता है। पित्तज्वरमें दस्त पतला और पीला होता है। कफ-ज्वरमें दस्त सफेद होता है।
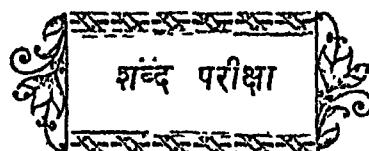
कफ रोगी की आवाज़ भारी होती है; पित्त-रोगी साफ बोलता है, और वादी का रोगी घरघर करके बोलता है।

स्पर्श परीक्षा
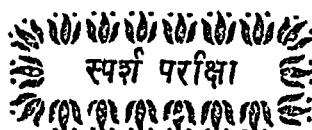
पित्त के कोप करनेसे शरीर गरम रहता है। वात-रोगी का शरीर शीतल; कफ-रोगी का शरीर शीतल, चिपचिपा, चिकना और पानी से भीगासा होता है। त्रिदोष में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं। बुख़ार किसी भी तरह का हो, शरीर गरम रहता ही है। शीताङ्ग-सन्निपात में शरीर बर्फ के समान शीतल हो जाता है और अन्तक-सन्निपात में शरीर आग की तरह जलता है।

वायु के रोगों में शरीर रूखा, धूएँ के रंग का और रोग पुराना पड़नेसे पीला हो जाता है। वातज्वरमें भी शरीर रूखा रहता है।

पित्त-रोगी का शरीर पीला होता है। पित्तज्वरमें भी कुछ पीला शरीर रहता है।

पाण्डु रोग में शरीर पीला हो जाता है। कामला जो पीलिया का भेद ही है उसमें भी पीला हो जाता है। हलीमक रोग में काला पीला, या हरा रंग हो जाता है।

कफ-रोगी का शरीर चिकना और सफ़ेद होता है।

सभी पुराने रोगों में शरीर पीला पड़ जाता है।

वायु का कोप होने से जिह्वा यानी जीभ सुन्न, फटीसी, मीठी, जड़वत, हरे रंग की होती है और उससे लार गिरती है। वायुके रूक्ष गुणके कारण रूखी और गायकी जीभ की तरह खरदरी होती है।

पित्त का कोप होने से जीभ लाल रंग की, कड़वी, जली हुई सी, दाहयुक्त और चारों ओर से काँटों से व्याप्त होती है। लाल और जली हुई का मतलब यह है कि लाल और काली होती है।

कफ का कोप होने से जीभ स्थूल, भारी, लिहसी मोटे-मोटे काँटों से व्याप्त, खारी और बहुत कफदार होती है; यानी उससे बहुतसा कफ गिरता है।

दो दोषोंके कोप में दो दोषोंके लक्षण वाली और तीन दोषों के कोपमें तीनों दोषों के लक्षणवाली होती है।

रक्ताधिक्य दाह में जीभ गरम और लाल हो जाती है।

हैज़ेमें, मूर्च्छा रोगमें और श्वास रुक जानेपर जीभ शीतल होती है। कण्ठ के भीतर दाह होनेसे जीभ काले रङ्ग की हो जाती है। ज्वर और दाह रोगमें जीभ नीरस, तथा नवीन ज्वर और तेज़ दाहमें सफ़ेद और चटपटी होती है।

आमाजीर्ण और आमवात के पहले दर्जेमें जीभ सफेद होती है।

सन्निपात-ज्वरमें जीभ मोटी, सूखी रूखी और बुझे हुए अङ्गारकी तरह काली होती है।

यकृत-दोषमें, मल और पित्तके रुकने पर, जीभ हरियाली-माइल पीली और मल से लिपटी हुई होती है।

यकृत प्लीहा आदि की अन्तिम अवस्था में और क्षय रोगके पीछे तथा भीतरी यन्त्रोंकी पीड़ासे, मरनेके समय, जीभमें ज़ख़्म हो जाते हैं।

बहुत ही कमज़ोरी और जलन होने पर जीभ बड़ी होती है।

नीरोग मनुष्य की जीभ सदा गीली और गुलाबी होती है। किन्तु शराबी की जीभ फटी हुई सी होती है।

मुखपरीक्षा

वायु के कोप से मुँह का स्वाद विरस होता है; पित्त से चरपरा और कफ से मीठा खट्टा स्वाद होता है। त्रिदोष में तीनों लक्षणों वाला, अजीर्ण में चिकना और मन्दाग्नि में कसैला स्वाद होता है। एक और सज्जन लिखते हैं, वायुकोप में मुख का स्वाद नमकीन, पित्त में कड़वा और कफ में मीठा होता है।

चेहरे की परीक्षा

वात कोप से मुँह या चेहरा रूखा स्तब्ध और टेढ़ा होता है; पित्तकोप से लाल, पीला और गरम होता है। कफ-कोप से चेहरा भारी चिकना और सूजा हुआ सा होता है।

नेत्रपरीक्षा

वात रोगमें-नेत्र भयानक, रूखे, धूएँ के से रङ्ग के, टेढ़े, चञ्चल जड़से अथवा बँधेसे और भीतरसे काले होते हैं।

पित्त-रोगमें नेत्र पीले, नीले, लाल, गरम और दीपक प्रभृति चमकीले पदार्थों के देखने में असमर्थ होते हैं; अर्थात् पित्तरोग वाला चिराग़ की ओर नहीं देख सकता।

कफरोग में नेत्र ज्योतिहीन, सफ़ेद, पानी से भरे हुए, भारी और मन्दा देखने वाले होते हैं।

त्रिदोष या सन्निपात में नेत्र, तन्द्रा और मोहसे व्याकुल, श्याम वर्ण, टेढ़े रूखे, भयानक और लाल रङ्ग के होते हैं।

त्रिदोष की दशा में रोगी के नेत्र रोगी के वश में नहीं रहते। क्षण-भर में रोगी नेत्रों को खोल लेता है, क्षण-भर में बन्द कर लेता है; कभी हर वक्त बन्द रखता है, कभी हर समय खुले ही रखता है; काली पुतलियाँ लुप्त हो जाती हैं; धूएँ के रङ्गका बड़ा तारा घूमने लगता है; नेत्रोंका रङ्ग अनेक प्रकारका हो जाता है और वे विकृत हो जाते हैं तथा अनेक प्रकार की चेष्टा करते हैं—ऐसे नेत्रोंवाला निश्चय ही मर जाता है।

अगर नेत्र प्रसन्न हों, अपनी प्रकृति में स्थिर हों, देखने में सुन्दर हों—तो रोगीको कोई भय नहीं है। वह शीघ्र ही आराम होगा।

जिस रोगी के नेत्र ठठराए हुए, तन्द्रा और मोहयुक्त तथा गड़े हुए और डरावने हों, वह मृत्यु की गोद में है।

कामला रोगमें हल्दी के समान पीले नेत्र होते हैं। पीलिये में भी पीले होते हैं। पित्त-ज्वर में किसी क़दर पीले होते हैं। हलीमक रोग (पीलिये का भेद) में नेत्र हरे होते हैं।

राजयक्ष्मा जब असाध्य होता है, नेत्र एकदम सफ़ेद हो जाते हैं।

हैज़े में आँखें खड्डों में घुस जाती हैं और उनका रङ्ग लाल हो जाता है। कुछ धूएँकासा रङ्ग भी झलकता है।

सन्निपात में नेत्रों में सब रङ्ग मिले हुए होते हैं; पर सुर्ख़ी अधिक होती है।

आमरोगमें पलक बन्द करने में कष्ट होता है। पित्त-रोग में या पित्ताधिक्य-ज्वर में दीपक के सामने देखा नहीं जाता।

अधिक खून जाने की दशा में नेत्र भीतर घुस जाते हैं और धूमिल रङ्ग के तथा सुर्ख़ होते हैं।

मस्तक में खून जम जाने से दोनों नेत्र खून के समान सुर्ख़ हो जाते हैं।

अफीम का विष चढ़ जाने या सिरमें खून के बहुत गर्म होजाने से आँखों के तारे सिकुड़ जाते हैं।

तेज़ बुख़ार में रोगी टकटकी लगाकर देखा करता है।

मिरगी रोगमें आँखे' चढ़ जाती हैं और पलक काँपते हैं। संन्यास (एक प्रकार की बेहोशी) में नेत्रों के तारे सुकड़ जाते हैं।

किसीने लिखा है,—पित्त-रोगमें आँखे' पीली, लाल या हरे रङ्ग की होती हैं। इनको दीपक या बिजलीकी रोशनी बुरी लगती है।
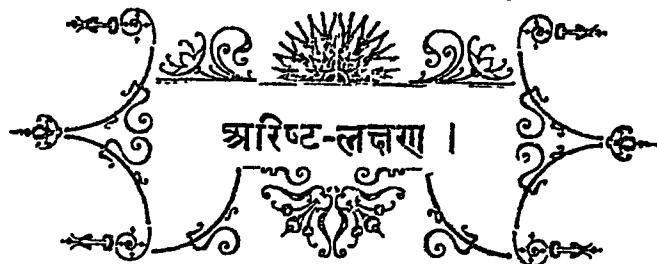
अरिष्ट-लक्षण ।

यदि रोगीके दाहिने या बायें, अगले या पिछले, नीचे के या ऊपर के किसी अङ्ग में स्वाभाविक और किसी अङ्ग में विकार का रङ्ग देखनेमें आवे, तो रोगी की मृत्युके चिह्न समझो।

(२) यदि रोगी के मुख या शरीर के किसी और हिस्से में एक जगह स्वाभाविक और दूसरी जगह विकार का रङ्ग दिखाई दे, तो मृत्यु के लक्षण समझो।

(३) यदि रोगी के शरीरमें एक जगह प्रसन्नता और दूसरी जगह ग्लानि, एक अङ्ग में रूखापन और दूसरे अङ्ग में चिकनाई दीखे, तो रोगी मरेगा।

(४) यदि रोगीके मुँह पर हठात लहसन, तिल, झाँई या कोई फुन्सी प्रकट हो जाय तो मृत्यु होगी।

(५) यदि रोगी के नाखून, नेत्र, मुँह, मूत्र, मल और हाथ पैरों में किसी तरह के विकार का रङ्ग पैदा हो जाय अथवा यकायक रङ्ग खराब हो जाय या कोई इन्द्रिय मारी जाय, तो रोगी की मृत्यु समझो। इसी तरह रोगी के शरीरमें पहले कभी न देखा हो ऐसा रङ्ग अकस्मात अथवा विना कारण पैदा हो जाय, तो रोगीका मरण समझो।

(६) यदि रोगी के दोनों होठ पके जामुन की तरह अत्यन्त नीले हो जायँ, तो रोगी की मृत्यु समझो।

(७) जिस मरनेवाले के कण्ठ से एक अथवा अनेक तरह के

वैकारिक स्वर निकलें, वह नहीं बचे ; यानी रोगी जिस तरह सदा बोला करता था उसके विपरीत ऐसी बोली बोले जैसी उसके कण्ठ से सुनी न गई हो§।

(८) जिसके शरीर से दिन-रात अनेक प्रकारके वृक्षों और वन के तरह-तरह के फूलोंकी सुगन्ध आती रहे, उसे "पुष्पित" कहते हैं। वह एक वर्ष के भीतर निश्चय ही मर जाता है।

(९) जिस प्राणी के शरीर से एक अथवा अनेक प्रकार की दुर्गन्ध निकलें, वह भी "पुष्पित" है। जिसके स्नान करने या न करने पर शरीर से कभी शुभ और कभी अशुभ गन्ध बिना कारण आवे, उसे भी "पुष्पित" कहते हैं; यानी जिसके शरीर से कभी चन्दन की या कभी फूलों की या मलमूत्र अथवा मुर्दे की सी गन्ध आवें, उसको मृत्यु-मुखमें समझो‡।

(१०) जिस प्राणी की देह से वियोनि की सी; यानी पशु-पक्षीकी सी सुगन्ध या दुर्गन्ध स्थायी-रूपसे आती हो, वह एक वर्ष नहीं जीता।

(११) किसी मनुष्यके ख़ूब अच्छी तरह स्नान करलेने और चन्दन प्रभृति लगा लेने पर भी मक्खियाँ घेर लेती हैं और किसी के शरीर के पास मक्खी, मच्छर, डाँस प्रभृति आते ही न जाने क्यों एकदम दूर हो जाते हैं; औरों के शरीर पर बैठते हैं, पर उसके शरीर पर नहीं बैठते; यदि ऐसी हालत हो, तो समझना चाहिए कि इस मनुष्य के शरीर का रस ख़राब हो गया है या मीठा

---

§ हमने अपनी आँखोंसे देखा है कि, एक मनुष्य रातको छतपर सोता-सोता कुत्तेकी तरह भौंकने लगा और ३।४ दिनमें मर गया। उसे कुत्ते वग़ैरःने काटा न था।

‡ एक सोलह वर्षकी जवान सुन्दरीके हाथोंमें दिन-रातमें दो एक बार विष्टाकीसी गन्ध कोई एक या दो सालसे आने लगी। वह दुर्गन्ध हर समय न रहती थी, ख़ूब साबुनसे हाथ धो लेने पर भी वह दुर्गन्ध यकायक प्रकट हो जाती थी। वह स्त्री एक दिन बिना किसी रोग के चटपट मर गई।

हो गया है। रस के मीठे होने से मक्खी वग़ैरः जीव पीछा नहीं छोड़ते और बदज़ायक़े होनेसे नज़दीक नहीं आते। ये लक्षण भी मरण के हैं।

१२ अगर रोगी के नेत्र बाहर निकल आवें या भीतर को बैठ जायँ, टेढ़े-मेढ़े हो जायँ, एक बड़ा और एक छोटा हो जाय, एक बन्द रहे और एक खुला रहे, अत्यन्त पानी बहे, निरन्तर खुला रहे या निरन्तर बन्द ही रहे, बारम्बार खुलें या बन्द रहें, दिनमें सब चीज़ें सफेद दीखें या काली दीखें, अथवा नेत्र अङ्गारके समान काले, नीले, पीले, श्याम, लाल, हरे और सफेद इनमें से किसी एक रंग से अत्यन्त युक्त हों तो रोगी को गतायु समझो।

१३ रोगी के बाल या रोएँ खींचने से उखड़ आवें और रोगी के दर्द न हो, तो उसे गतायु समझो।

१४ अगर रोगी के पेट पर काली, नीली, पीली लाल या सफ़ेद नसें दीखने लगें, तो रोगी को गतायु समझो।

१५ यदि रोगी के नाख़ूनों में मांस और खून न रहे और वे पकी हुई जामुनके समान हो जायँ, तो उसे गतायु समझो।

१६ यदि रोगी की उँगलियाँ पकड़ कर खींचने पर न चटखें, तो रोगी को गतायु समझो।

१७ जो रोगी आकाश को पृथ्वी की तरह संघट्ट और पृथ्वी को आकाश की तरह शून्य देखता है, वह बहुत जल्दी मरता है।

१८ जो रोगी हवा को मूर्त्तिमान देखता है और जलती आग जिसे नहीं दीखती, वह गतायु है।

१९ जो रोगी जलमें जल न होने पर जल का भ्रम करता है अथवा स्थिर जलको चंचल समझता है, वह गतायु है।

२० जो रोगी जाग्रत अवस्थामें प्रेत और राक्षस-पिशाचों को देखता है अथवा अन्य प्रकार की अदभुत चीज़ें देखता है, वह गतायु है।

२१ जो रोगी स्वाभाविक अग्निको नीली प्रभा-रहित, काली या सफेद देखता है, वह सात रात जीता है।

२२ जो रोगी आकाश को बिना प्रकाश के प्रकाशित देखता है; आकाश में बादल नहीं हैं, पर उसे बादल दीखते हैं; आकाश में बादलों के होने पर बादल नहीं दीखते; आकाशमें बादल नहीं हैं पर रोगी को बिजली चमकती दीखती है, ऐसा रोगी नहीं जीता।

२३ जो रोगी निर्मल सूर्य और चन्द्रमा को काले कपड़े से लिपटे हुए बर्तन के समान देखता है, वह नहीं बचता।

२४ जो प्राणी बिना पर्व के सूर्य और चन्द्रमा में ग्रहण देखता है, वह रोगी हो चाहे निरोगी बहुत नहीं जीता।

२५ जो रातको सूर्य और दिनमें चन्द्रमाको देखता है, तथा अग्नि-हीन वस्तुओं से धुआँ उठते देखता है तथा रातमें आग को प्रभाहीन देखता है, वह नहीं बचता।

२६ जो प्राणी प्रभाहीन चीज़ों को प्रभायुक्त और प्रभायुक्तोंको प्रभाहीन देखता है, वह नहीं बचता।

२७ जो रोगी दीखनेवाली चीज़ों को नहीं देखता और न दीखने-वाली चीज़ों को देखता है, वह नहीं बचता।

२८ जो रोगी अपनी उँगलियोंसे अपने कानों को बन्द करके अनाहत * शब्दको नहीं सुनता, वह नहीं बचता।

२९ जो रोगी सुगन्ध को दुर्गन्ध और दुर्गन्ध को सुगन्ध समझता है, वह नहीं बचता।

३० जिस रोगी के मुख में कोई रोग नहीं है, तोभी उसे मीठे खट्टे प्रभृति रसों का स्वाद न मालूम हो अथवा असल रस का ज्ञान न हो, वह गतायु है।

---

† दोनों कानोंको हाथोंसे बन्द कर लेनेपर जो "सांय सांय" शब्द सुनाई देता है, उसको "अनाहत शब्द" या "ज्वाला शब्द" कहते हैं। साधारण लोग उसे रावणकी चिताकी आवाज़ कहते हैं। डाक्टर उसे खून बहनेकी आवाज़ कहते हैं।

३१ जो रोगी नरम चीज़ों को कड़ी, गरम को ठण्डी, चिकनी को खरदरी और कड़ी को नरम, शीतल को गरम, खरदरी को चिकनी समझता है, वह नहीं बचता।

३२ जो बिना घोर तप या योग-साधन के इन्द्रियों से न जाना जा सके, ऐसे पदार्थ या ऐसी बातको जान ले या देख ले, वह नहीं जीवे।

३३ अगर ज्वर के रोगी के पूर्व-रूप सभी हों या बहुत ज़ियादा हों, तो समझ लो कि रोगी नहीं बचेगा। इसी तरह और रोगोंके होने के पहले, होने वाले रोग के सारे या अधिक पूर्व-रूप* हों तो मृत्यु होगी।

३४ जो प्राणी सुपने में कुत्ते, गधे या ऊँट पर चढ़कर दक्खन दिशा को जाता है, वह "राजयक्ष्मा" से मरता है।

३५ जो प्राणी सुपने में मरे हुए लोगों के साथ शराब पीता है और उसे कुत्ते घसीटते हैं, वह घोर "ज्वर" से मरता है।

३६ जिस प्राणी को सुपने में लाल कपड़े, लाल फूलों की माला पहने लाल शरीर वाली स्त्री हँसती-हँसती घसीटे, वह "रक्तपित्त" से मरे।

३७ जिस प्राणी के ज़ोर से दर्द चले, पेट में अफरा हो, शरीर दुर्बल हो और नाखून आदि का रंग और का और हो जाय, वह "गुल्म" रोग से मरे।

३८ जो प्राणी सुपनेमें ऐसा देखे, मानो उसके हृदय में काँटोंवाली दारुण बेल उगी है, वह "गुल्म रोग" से मर जाय।

३९ जिस प्राणी की खाल या चमड़ी ज़रा छूने से फट जाय अथवा जिसके घाव भरें नहीं, वह कोढ़ी होकर मरेगा।

४० जो प्राणी सुपने में नंगा होकर, सारे शरीर में घी लगा कर,

* सब रोगोंके पहले पूर्वरूप होते हैं, पर सारे पूर्वरूप नहीं होते; कुछ होते हैं, कुछ नहीं होते; यदि सभी हों तो बचना कठिन समझो।

ज्वालाहीन आग में हवन करे और सुपने में जिसकी छाती में कमल पैदा हो, वह "कोढ़" से मरे ।

४१ जिस प्राणी के शरीर पर स्नान करने और चन्दन लगाने पर भी नीले रंग की मक्खी बैठे, वह "प्रमेह"से मरेगा ।

४२ जो प्राणी सुपने में चाण्डालों के साथ घी तेल आदि चिकने पदार्थ पीवे, वह "प्रमेह" से मरे ।

४३ जिसका ध्यान एक ओर लग जाय, जिसको बिना मिहनत के थकान मालूम हो, जो घबराने लगे, चित्तमें भ्रम और बेचैनी हो, शरीर का बल नाश हो जाय—अगर ये सब लक्षण एक साथ ही हों, तो समझ लो वह "उन्माद" रोग से मरेगा ।

४४ जिसको भोजन के पदार्थ बुरे मालूम हों, ज्ञान न रहे, उदर्द रोग हो, उसकी "उन्माद रोग" से मृत्यु होगी ।

४५ जो प्राणी सदा नाराज़ रहे, चेहरे पर क्रोध बना ही रहे, भयभीत रहे, हँसता रहे, बार-बार बेहोश हो, प्यास बहुत लगे, उसकी "उन्माद" से मृत्यु होगी ।

४६ जो प्राणी सुपने में राक्षसों के साथ नाचता-नाचता पानी में डूब जाय, वह "उन्माद" से मरेगा ।

४७ जिस मनुष्य को अँधेरा न होने पर भी अँधेरा दीखे, कहीं शब्द भी न होता हो पर उसे तरह-तरह के गाने या दूसरी आवाज़ें सुनाई दें, वह "मृगी रोग" से मरेगा ।

४८ जो मनुष्य सुपने में ऐसा देखे, मानो मैं नशे से मतवाला होकर नाच रहा हूँ और भूत मेरा सिर नीचा करके मुझे ले जारहे हैं, उसकी "मृगी रोग" से मृत्यु हो ।

४९ जाग्रत अवस्था में जिसकी ठोड़ी, गरदन, और दोनों आँखें रह जायँ, उसकी "बहिरायाम"नामक वात-रोगसे मृत्यु हो ।

५० जो प्राणी सुपने में तिलों के पदार्थ या पूरी मालपूआ खाता

है और जाग उठता है अथवा जागते ही वमन करता है और पूरी मालपूआ ही निकलते हैं, वह नहीं बचता ।

५१ जिस प्राणी की छाती से नीला या पीला लाल कफ निकले, उसके जीवन में सन्देह है ।

५२ जिस मान्द्रमेही के रोएँ खड़े हों, शरीर में सूजन हो, खाँसी और ज्वर हो तथा मांसक्षीण होगया हो, उसे वैद्य हाथ में न ले ।

५३ जिस प्राणी के कोठे में तीनों दोष कुपित होकर चले जायँ, चाहे वह दुर्बल हो चाहे बलवान, वह नहीं बचेगा ।

५४ अगर किसी दुर्बल मनुष्य के सूजन के बाद ज्वरातिसार हो अथवा ज्वरातिसार के बाद सूजन हो, वह नहीं बचेगा ।

५५ अत्यन्त बलहीन रोगी को हनुग्रह, मन्याग्रह और प्यास हो, तो उसके प्राण छाती में समझो ।

५६ जो रोगी मुरझाया सा दुःखी होकर पड़ा रहता है, जिसको होश नहीं रहता, जिसका मांस और बल क्षीण होगया है, साथ ही भोजन भी घट गया है, वह रोगी नहीं बचेगा ।

५७ रोगी की छाया बिगड़ी दीखे या दीखे ही नहीं अथवा रोगी को दूसरे की छाया न दीखे, तो रोगी को गतायु समझो ।

५८ जो मनुष्य चाँदनी, धूप, दीपक की रोशनी, जल अथवा आइने में अपनी छाया को बिगड़ी देखे; यानी और ही तरह की देखे, वह नहीं बचे ।

५९ जो मनुष्य अपनी छाया को छिन्न-भिन्न, कम-ज़ियादा, पतली या दो हिस्सों में बँटी हुई देखे या छाया को सिर-बिना देखे या और तरह की देखे, वह मर जाय ।

६० जिस रोगी के दोनों नेत्रों में आमला हो, मुँह भारी हो, दोनों गालों में अधिक मांस हो (कहीं लिखा है दोनों कनपटियों में मांस न हो), हाथ पैर आदि में जलन हो, शरीर गरम हो, वह रोगी नहीं जीवे ।

६१ जो रोगी पलँग से उठने पर बेहोश हो जाय और बारम्बार आनतान बके, वह सात दिन भी नहीं जीवे।

६२ जिसकी व्याधि उलटी और सीधी दोनों तरह से मिली हुई हो, जिसे खाया हुआ न पचे, वह पन्द्रह दिन भी न जीवे।

६३ जो रोगी रोग के मारे अत्यन्त दुबला हो, और अत्यन्त थोड़ा खाता हो, पर मलमूत्र अधिक त्यागता हो, वह नहीं जीता।

६४ जो रोगी पहले से अधिक खाने लगे, परे मलमूत्र थोड़े हों; वह भी नहीं जीवे।

६५ जो प्राणी ताक़तवर पदार्थों को खावे, पर उसकी ताक़त कम होती जाय और रंग ख़राब होता जाय, वह नहीं जीवे।

६६ जिस रोगी के कण्ठसे आवाज़ निकले, जिसका मन शिथिल हो, जिसे दस्त लगते हों, जिसे श्वासरोग हो, जिसका बल घट गया हो, जिसे प्यास अधिक हो, जिसका मुँह सूखता हो, वह रोगी नहीं जीवे।

६७ जिस रोगी के ऊर्ध्वश्वास चलता हो, कण्ठ में घरघर शब्द होता हो, बल घट गया हो, रङ्ग बिगड़ गया हो, आहार क्षीण (कम) हो गया हो, वह नहीं बचे।

६८ जो रोगी कमज़ोर हो गया हो, प्यास के मारे मुँह सूख रहा हो, आँखें कपाल में चढ़ गई हों, गर्दन की मन्या नामक नसें नीची होकर काँपती हों, वह रोगी नहीं बचे।

६९ जिसके सिर, जीभ, और आँखें—ये उलट गये हों या लटक पड़े हों, दोनों भौंहें नीची होगई हों, जीभमें काँटे पड़ गये हों, वह रोगी नहीं बचे।

७० जिसका लिङ्ग एकदम भीतर घुस गया हो, फोते लटक गये हों, अथवा लिङ्ग लटक आया हो और फोते भीतर को चले गये हों, वह रोगी नहीं बचे।

७१ जिसका मांस क्षीण हो गया हो; यानी चाम और हाड़

मात्र शेष रहे हों; जो खानेको न खाता हो, वह एक मास से अधिक नहीं जीवेगा।

७२ जो अपनी छाया का सिर नीचे को देखे या टेढ़ा देखे या मस्तक-रहित छाया देखे, वह नहीं बचे।

७३ जिसके पलक रह जायँ, हिलें चलें नहीं और नज़र कम हो जाय, वह नहीं जीवे।

७४ जिसकी दोनों भौंहों में अथवा सिरमें बिना कारण पहले नहीं देखी ऐसी सीमन्त या भौंरे दीखे, वह नहीं बचे। अगर रोगी के सिर और भौंहों में भौंरी या चोटी सी गुँथी दीखे, तो वह तीन रात जीवे। अगर निरोगी के भौंरी या चोटीसी गुँथी दीखे, तो वह छै रात से अधिक नहीं जीवे।

७५ जिस रोगी के बालों में तेल तो डाला न गया हो, किन्तु बाल ऐसे दीखें मानों तेल डाला गया है, उस रोगीको गतायु समझो।

७६ रोगी रोग से दुःखी हो, उसकी नाक का बाँसा मोटा हो जाय, बिना सूजन के ही नाक सूजीसी दीखे, उसे वैद्य हाथ में न ले।

७७ जिसकी जीभ एकदम से बाहर निकल आवे अथवा बहुत ही भीतर चली जाय, अथवा नाक सूख जाय, वह रोगी नहीं बचे।

७८ जिसके मुँह, कान और दोनों होठ अत्यन्त काले, सफेद, लाल या नीले हो जायँ, वह रोगी नहीं बचे।

जिस रोगी के दाँत विकृति के कारण से हिलते से जान पड़ें, सफेद रंग के से दीखें, उन से खुशबू निकलने लगे और कीच से लिहसे से हो जायँ, वह रोगी नहीं बचे।

८० जिसकी जीभ लठरा जाय, उसमें चेतना न रहे, भारी हो जाय, अत्यन्त काँटे पड़ जायँ, काली हो जाय, सूख जाय या सूज जाय, वह रोगी नहीं बचे।

८१ जो मनुष्य लम्बे-लम्बे साँस लेता हुआ, धीरे-धीरे मन्दे-

मन्दे साँस लेने लगे और मूर्च्छित हो जाय, वह रोगी नहीं बचे।

८२ जब रोगी की आयु नहीं रहती; तब उसके दोनों हाथ पैर, मन्या नसें और तालू—ये सब अत्यन्त शीतल हो जाते हैं अथवा कठोर होजाते हैं।

८३ जो रोगी घोंटुओं से घोटुओं को घिसता है, पैरों को उठा-उठा कर पटकता है, बारम्बार मुखको फिराता है, वह नहीं बचता।

८४ जो रोगी दाँतों से नाखूनों को काटता है, नाखूनों से बालों को तोड़ता है और लकड़ी के टुकड़े से ज़मीन पर लिखता है, वह नहीं जीता।

८५ जो रोगी जाग्रत अवस्था में दाँतों से दाँतों को पीसता है, रोता है और ऊँची आवाज़ के साथ खिलखिला कर हँसता है, वह नहीं जीता।

८६ जो रोगी बारम्बार हँसे, चीख़ मारे, पैरों से पलँग के बिस्तर बिगाड़े, हाथ बढ़ाकर कान नाक के छेद छुए, वह नहीं बचे।

(८७) जिन चीज़ों से पहले रोगी राज़ी होता था, वह अब उसे बुरी लगीं, तो ऐसी हालत में रोगी की मृत्यु समझो।

(८८) जो रोगी अपने सिर, गर्दन, पीठ और शरीर के बोझ को न सम्हाल सके, जिसकी ठोड़ी टेढ़ी हो जाय, मुँह में दिया कौर बाहर निकल पड़े, वह नहीं बचे।

(८९) जिस रोगी को यकायक ज़ोर से बुख़ार चढ़ आवे, बल घट जाय, ज़ोरसे प्यास लगे, और रोगी बेहोश हो जाय, तो वह नहीं जीवे।

(९०) जिस प्रलेपक ज्वर-रोगी के अल्प शीत-युक्त काफ ज्वर में दिन निकलने के पहले घबराहट हो और मुख से पसीने टपकें, वह रोगी नहीं बचे।

(९१) जिस रोगी को आयु शेष हो जाती है, उसके गले से नीचा

आहार नहीं उतरता ; जीभ गले में चली जाती है और बल नाश हो जाता है।

(९२) जिस रोगी की दोनों आँखें काली, शिथिल अथवा हरी हो जायँ, वह नहीं बचे ।

(९३) जो रोगी बेहोश हो, जिसका मुख सूखता हो और जिसे मर्म्मस्थानों में चोटसी लगी जान पड़े, वह नहीं जीवे ।

(९४) जिस रोगी की नसें हरे रङ्ग की हो गई हों, रोम-छिद्रों के मुँह बन्द हो गये हों, अन्न पर मन न हो, पित्त की गरमी बढ़ गई हो, वह नहीं बचे ।

(९५) जिस रोगी के मुख, हाथ पैर आदि अङ्ग कान्तियुक्त हों, शरीर सूख गया हो, बल क्षीण हो गया हो, उसे प्रबल "राजयक्ष्मा" हुआ समझो। वह नहीं बचेगा।

(९६) अगर राजयक्ष्मा-रोगी की दोनों पसलियों में दर्द हो, हिचकियाँ आती हों, खून गिरता हो, पेट पर अफारा हो और कन्धों में पीड़ा हो, वह नहीं बचे।

(९७) अगर वायु-रोगी, मृगी-रोगी, कुष्ट-रोगी, शोथ-रोगी, उदर-रोगी, गुल्म-रोगी, मधुमेही और राजयक्ष्मावाले का बल और मांस क्षीण हो जाय, तो उनकी चिकित्सा करना वृथा है।

(९८) जिस रोगी को जुलाब लेने और अफारा दूर होने पर फिर प्यास लगे और अच्छी तरह दस्त हो जाने और कोठा शुद्ध हो जाने पर फिर अफारा हो जाय, वह रोगी नहीं बचे।

(९९) जिसकी आवाज़ बैठ जाय, जिसका बल घटता जाय, रङ्ग बिगड़ता जाय, पर रोग बढ़ते जायँ, वह नहीं बचे।

(१००) जिसके ऊर्ध्वश्वास हो, देह में गरमी न हो, दोनों जाँघों के जोड़ों में दर्द हो, और रोगी को किसी भी चीज़ से आराम न मालूम होता हो, वह रोगी नहीं बचे।

(१०१) जो रोगी हतस्वर से अपनी मौत को आप ही नज़दीक बतावे और बिना किसी शब्द के हुए शब्द सुने, वह नहीं बचे।

(१०२) जिस दुर्बल रोगी को रोग यकायक छोड़ दे, उसके जीने में सन्देह है।

(१०३) जिसका कफ, मल या वीर्य जलमें बैठ जाय, उसकी आयु शेष समझो।

(१०४) जिसके कफमें अनेक प्रकार के रङ्ग दीखें और वह कफ जल में डूब जाय, तो समझ लो कि रोगी नहीं बचेगा।

(१०५) पित्त उष्मा को साथ लेकर कनपटियों में जाकर ठहर जाय, उसको "शङ्कक" रोग कहते हैं। इस रोगवाला तीन रातके अन्दर मर जाता है।

(१०६) जिसके मुँह से झाग मिला खून बारम्बार गिरे तथा कूख में ज़ोर से दर्द हो, वह रोगी नहीं बचे।

(१०७) बल और मांस के घटने पर रोग ज़ोरसे बढ़े, रोगी को अन्न से अरुचि हो, तो रोगी तीन दिन भी कठिन से जीवे।

(१०८) वातष्ठीला के अच्छी तरह पैदा होकर हृदय में दारुण भाव से अवस्थिति करने पर, अगर रोगी प्यास से दुःखित हो जाय तो वह तत्काल मरे।

(१०९) अगर वायु पैरों की दोनों गाँठों को शिथिल करके और नाक को टेढ़ी करके शरीर में विचरे, तो रोगी तत्काल मरे।

(११०) जिसकी दोनों भौंहें अपने स्थान से लटक पड़ें, भीतर ज़ोर से दाह होता हो, हिचकियाँ चलती हों, वह रोगी तत्काल मरे।

(१११) जिस रोगी का रक्त-मांस क्षीण हो गया हो, उसकी वायु ऊपर की ओर जाकर गर्दन की दोनों नसों को दुखाती हुई घूमती फिरे, वह शीघ्र ही मरे।

(११२) अगर वायु गुदा से होकर नाभि में जाकर जाँघों और

पेड़ू के दोनों जोड़ों में दर्द पैदा करे और रोगी कमज़ोर हो, तो मर जाय।

(११३) अगर बलवान वायु गुदा और हृदयमें एक साथ पीड़ा करे, तो कमज़ोर रोगी जल्दी ही मर जावे।

(११४) अगर बलवान वायु गुदा और हृदय में पीड़ा करती-करती श्वास रोग पैदा कर दे, तो वह रोगी तत्काल मर जाय।

(११५) जिसके दोनों वंक्षण वायु-शूल से पीड़ित हों, साथ-साथ दस्त होते हों, और प्यास का ज़ोर हो, तो रोगी तत्काल मरे।

(११६) जिसका शरीर वायु की सूजन से सूज रहा हो, दस्त होते हों और प्यास लगती हो, तो वह रोगी तत्काल मरे।

(११६क) जिसके आमाशय में कैंचीसे कतरने की सी पीड़ा होती हो, साथ ही प्यास और गुदा में दर्द होने लगे, वह रोगी तत्काल मर जाय¶।

(११७) वायु जिसके पक्वाशय में जाकर बेहोशी और कण्ठ में कफ का घरघराहट प्रकट कर दे, वह रोगी तत्काल मर जाय।

(११८) जिसके दाँत कीच और चूने से हो जायँ, मुँह पर धूल सी उड़ने लगे, पसीने आने लगें, रोएँ खड़े हो जायँ, वह तत्काल मर जाय।

(११९) जिस रोगी की आँतों में गड़गड़ गड़गड़ शब्द होता हो, दस्त लगते हों, साथही प्यास, श्वास, मस्तक-रोग, मोह और दुर्बलता हो, वह तत्काल मरे।

(१२०) जो सप्तऋषियोंके समीप अरुन्धती नक्षत्रको नहीं देखता, वह वर्ष दिन के भीतर ही मर जाता है।

(१२१) जिसके बिना कारण भक्ति, शील, स्मृति, त्याग, बुद्धि और बल,—ये छै हठात पैदा हो जायँ, वह छै मास में मरे।

¶ ऐसी दशा भगन्दर आदि रोगीके अन्तमें हुआ करती है।

(१२२) जिसके ललाटमें अकस्मात सुन्दर और अपूर्व नस-जाल प्रकट हो जाय, वह छह महीने से ज़ियादा नहीं जीवे।

(१२३) जिसके ललाट में चन्द्रकलाके समान रेखा दीखने लगें, वह छह मास में मर जाय।

(१२४) जिसका शरीर काँपे, मोह हो, जिसकी चाल और बातें मतवालों की सी हों, वह एक महीने से ज़ियादा नहीं जीवे।

(१२५) जिसका शुक्र, मूत्र और मल जलमें डूब जाय और जो अपने प्यारों से बैर करे, वह मर जाय।

(१२६) जिसके हाथ पैर और मुँह सूख जायँ, अथवा हाथ पैर और मुख पर सूजन हो, वह एक मास भी न जीवे।

(१२७) जिसके ललाट अथवा बस्तिमें टेढ़ी और नीली रेखा पैदा हों, वह नहीं बचे।

(१२८) जिसकी देह में मूँगे के समान फुन्सियाँ प्रकट हों और वे फुन्सियाँ जल्दी न सूखें, तो रोगी मर जाय।

(१२९) जिसकी गर्दन में ज़ोर से दर्द हो, जीभ में सूजन हो, बद हो और गला पक जाय, वह नहीं बचे।

(१३०) भ्रम, अति प्रलाप और घोर हड़फूटन होने से रोगी को काल-फाँस में समझो।

(१३१) अगर रोगी बेहोशी में अपने बालोंको खींचे और उखाड़े तो नहीं बचे।

(१३२) अगर कमज़ोर और कुछ भी न खानेवाला रोगी, निरोगी और जवान की तरह खाय और उसमें बल भी आ जाय, तो समझ लो कि अब वह मरेगा।

(१३३) अगर रोगी आँखों के पास उँगली ले जाय, कुछ ढूँढ़ता-सा मालूम हो, विस्मित की तरह ऊपर की तरफ़ देखे, पलक न लगें ; इस तरह ढूँढे मानो उसका शरीर, उसकी खाट, उसके कपड़े

कहीं चले गये हैं; और ढूँढ़ते-ढूँढ़ते तत्काल बेहोश हो जाय, उसे काल के फन्दे में समझो।

(१३४) जो संज्ञाहीन रोगी बिना सबब हँसे, जीभ से दोनों होठ चाटे, और उसके हाथ पैर और साँस शीतल हों, वह नहीं जीवे।

(१३५) जिस रोगी को अपने प्यारे नातेदार पास बैठे रहने पर भी न दीखें, उनके नाम ले लेकर पुकारे, सबकी ओर देखे, मगर किसीको पहचाने नहीं, वह नहीं बचे।

जिन्हें अधिक अरिष्ट-लक्षण, [illegible] और [illegible], मृत्युकारक योग प्रभृति "कालज्ञान" [illegible] हों (जिनका जानना प्रत्येक वैद्य को परमावश्यक है), वह हमारे यहाँ से "कालज्ञान" नामक पुस्तक [illegible] मँगा लें।
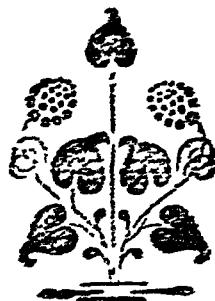
महारोग ।

वात रोग, प्रमेह, कोढ़, बवासीर, पथरी, मूढ़गर्भ, भगन्दर और उदर रोग—ये आठों महारोग हैं और इनका इलाज कठिन है। अगर इन रोगों के साथ बलक्षय, मांसक्षय, श्वास, प्यास, शोष, वमन, ज्वर, बेहोशी, अतिसार और हिचकी—ये उपद्रव भी हों; तब तो "करेला और नीमचढ़ा" वाली कहावत चरितार्थ हो अर्थात् उपद्रवों के साथ होने पर ये रोग हरगिज़ आराम न हों, इसलिये सिद्धि चाहनेवाला वैद्य ऐसे रोगियों को अपने हाथ में न ले।

ज्वर ।

२ जिस ज्वर रोगी की जीभ खरदरी और नीली पीली हो जाय, श्वास की वायु अत्यन्त गर्म हो, शरीर के रोएँ खड़े हों, नेत्र नीले, लाल और पीले हों, कण्ठमें कफ घरघर करे—वह रोगी निश्चय ही मर जाय।

३ जिस ज्वर रोगी के मुँह में जल्दी-जल्दी साँस आवे, दाँतों की पंक्ति काली हो जाय, आँखें ठहर जायँ, शरीर में ज़ोर आजाय—ऐसा रोगी नहीं जीता।

४ जिस ज्वर रोगी के मुँह से रक्त गिरे, जिसके सिरमें दर्द हो, जिसे भीतर से गरमी और बाहर से शीत लगे, ऐसा रोगी मर जाय।

५ जिस ज्वर* रोगी को मोह हो, किसी तरह का होश न हो, बाहर सर्दी और भीतर गरमी लगी ऐसा रोगी मर जाय।

६ जिस ज्वर रोगी के रोएँ खड़े हों, हृदयमें दारुण शूल यानी भयानक दर्द हो, मुँह से निरन्तर ऊँचे साँस लेता हो—ऐसा रोगी मर जाता है।

७ जो ज्वर रोगी हिचकी और साँस से पीड़ित हो, जिसकी आँखें भ्रमती हों, जो शरीर से क्षीण हो गया हो और ऊँचे साँस लेता हो—ऐसा रोगी मर जाता है।

८ जिस ज्वर रोगी के नेत्र धूएँकेसे रङ्गके हों, जिसे होश न हो, जिसके रक्त और मांस क्षीण होगये हों,जिसे अत्यन्त तन्द्रा हो—ऐसा रोगी मर जाता है।

९ जिस ज्वर रोगी को बहुत ही वमन होती हों, आँखों से जल गिरता हो, अरुचि हो, भीतर आग लग रही हो, जीभ काली हो गई हो—ऐसा रोगी मर जाता है।

१० जिस रोगी को सवेरे ही बुख़ार चढ़े, बुख़ार के साथ ज़बर्दस्त सूखी खांसी हो, बल और मांस क्षीण होगया हो, उस रोगी को मरे हुए के समान ही समझो। (चरक)

११ जिस कफज्वरवाले मनुष्यके मुँहसे सवेरे के समय अत्यन्त पसीना गिरे, उसका जीना कठिन है। (बङ्गसेन)

१२ जो ज्वर बहुतसे प्रबल कारणोंसे उत्पन्न हुआ हो, जिसमें सम्पूर्ण लक्षण मिलते हों, वह ज्वर प्राण हरण करता है।

जो ज्वर पैदा होते ही और चिकित्सा करते-करते ही इन्द्रियों की शक्ति को नष्ट करदे अर्थात् अन्धा, बहरा, गूँगा आदि करदे, उसे असाध्य समझना चाहिये।

१४ जो पुरुष ज्वर से क्षीण हो गया हो, अथवा जिसके शरीर में

* ज्वर आठ प्रकार का होता है। इसमें शरीर गर्म हो जाता है।

सूजन आगई हो, वह रोगी शायद हो बचे; क्योंकि ये असाध्य लक्षण हैं।

१५ जो ज्वर प्रकट होते ही विषम हो जाय, जो ज्वर बहुत दिन से आया करे, और दुबले रूखे शरीरवाले को गम्भीर ज्वर हो, तो मृत्यु समझो।

१६ जो रोगी मूर्च्छित होकर मोह को प्राप्त हो, गिरकर जिससे उठा न जाय पड़ा ही रहे, बाहर सरदी और भीतर गरमी लगे— ऐसा रोगी मर जावे।

अतिसार।

१७ जिसके शुरूमें अतिसार* हो, पीछे श्वास और शोष पैदा हों, वह शीघ्र ही मर जावे।

१८ जिसको श्वास, शूल और प्यास ये रोग सता रहे हों, जो क्षीण हो, जिसे ज्वरने सताया हो, ऐसे वृद्ध रोगीको यदि अतिसार हो जाय, तो मरण ही समझो।

१९ जिसके अतिसार, सूजन, अरुचि और शूल—ये रोग हों, उसकी अनेक प्रकारकी चिकित्सा करने पर भी मृत्यु होगी।

सूजन।

२० बालक, अति वृद्ध और विकल मनुष्यके सारे शरीर में सूजन हो, तो निश्चय ही मरण हो।

२१ जिसके पेट से सूजन आरम्भ होकर क्रम से हाथ पैरों में फैल जावे, वह सूजन रोगीके सम्बन्धियोंको वृथा हैरान करके शेष में रोगीके प्राण नाश करे। (चरक)

२२ जिसके दोनों पैरोंमें सूजन हो, दोनों पिण्डरी ढीली होजायँ, और दोनों जाँघें रह जायँ, वह रोगी नहीं बचे। (चरक)

---

* अतिसार के प्रकार का होता है। इस रोग में पतले दस्त होते हैं। कभी दस्त के साथ आँव और कभी आंव तथा खून भी आते हैं।

२३ जिसके हाथ, पैर, गुदा और पेट सूज रहे हों; जिसका वर्ण, बल और आहार मारा गया हो; वह दवा करने योग्य नहीं है।

२४ जो सूजन नीचे के अङ्ग से प्रकट होकर ऊपर को चढ़ती है, वह असाध्य होती है।

२५ जिस सूजनवाले रोगीको श्वास, प्यास, वमन, दुर्बलता, ज्वर और अरुचि हो, उसे वैद्य त्यागदे; क्योंकि वह नहीं बचेगा।

२६ दूसरे रोगोंके उपद्रव से प्रकट न हुई हो ऐसी सूजन पहले पैरों से उत्पन्न होकर, पीछे मुख आदि ऊपर के स्थानों में उत्पन्न हो, उसे "उलटी सूजन" कहते हैं। अगर पुरुषके ऐसी सूजन पैदा हो, तो वह मर जावे। जो सूजन पहले मुख पर हो, पीछे पैरों पर उतरे, वह सूजन स्त्रियों को घातक है।

जो सूजन पहले गुदामें हो, पीछे वहाँ से सब शरीर में फैल जाय, वह स्त्री और पुरुष दोनों का नाश करती है।

शूल।

२७ जिसके अफारा, शूल, श्वासरोग, प्यास, मूर्च्छा, सिरमें दर्द ये रोग हों, वह शूल§ रोगी मर जावे।

२८ जिस शूल-रोगी के मांस, बल और अग्नि—ये क्षीण होजायँ, उसका रोग असाध्य समझो।

पाण्डु।

२९ जिस रोगी के दाँत, नाख़ून और नेत्र तीनों पीले होगये हों और जिसे सब चीज़ें पीली ही पीली§ दीखती हों, वह पाण्डु-रोगी मर जायगा।

---

§ दोनों पसली, हृदय, नाभि, और पेड़ू—इन पाँचों स्थानोंमें से किसीमें भी शूल हो, उसीको शूल समझो। इसमें शूलके घावके समान पीडा होती है, इसीसे इसे "शूल" कहते हैं।

§ पाण्डु रोग पाँच प्रकार का होता है। अति मैथुन, खट्टे, नमकीन और चरपरे पदार्थ तथा मिट्टी खाने और दिनमें सोने, बहुत शराब पीनेसे पाण्डु रोग होता है। बोलचाल की भाषामें इसे "पीलिया" कहते हैं। वातादिक दोष त्वचा और मांस को दूषित करते हैं, तब यह रोग होता है। हारीत कहते हैं, इसमे वातादिक दोष—दोष और रस दूष्य होता है।

२० जिसका चमड़ा पीला हो जाय, जिसके नेत्र और मूत्र पीले हो जायँ और जो सब जगह पीलापन ही पीलापन देखे, वह पाण्डु-रोगी मर जाय ।

२१ जिस पाण्डु-रोगी के सारे शरीर में सूजन आगई हो, और जिसे सब चीज़ें पीली दीखती हों, वह पीलियेवाला नहीं बचे ।

२२ जिसकी देह का रङ्ग सफेद हो और जो वमन, मूर्च्छा और प्यास से पीड़ित हो, वह रोगी नष्ट हो जाय ।

२३ जिस पाण्डु रोगी के हाथ, पैर और सिरमें सूजन हो और बीच का भाग पतला हो, वह रोगी आराम न हो ।

२४ जिस रोगी की देह के बीच में सूजन हो, हाथ, पाँव और सिर ये सूख जायँ, गुदा और लिङ्ग में सूजन हो, तथा जो मुर्दे के समान होगया हो, ऐसा पाण्डु-रोगी आराम नहीं होता । वैद्य ऐसे रोगी को त्यागदे ।

कामला

२५ जिस मनुष्य का मल काला और मूत्र पीला हो, शरीर पर सूजन विशेष हो ; नेत्र, मुख, वमन, मल और मूत्र ये अत्यन्त लाल हों, मोह हो, वह कामला[१] रोगी नहीं बचे ।

२६ जिस कामला रोगी को दाह, अरुचि, प्यास, अफारा, तन्द्रा, मोह, और मन्दाग्नि हो तथा जिसे कोई बात याद न रहती हो, वह कामला रोगी तत्काल मरेगा ।

२७ जिस कुम्भ-कामला रोगी को वमन, अरुचि, ओकारी आना, अनायास थकान मालूम होना, श्वास, खाँसी और अतिसार—इतने रोग हों, वह अवश्य मर जाय ।

राजयक्ष्मा

२८ जिस रोगी के नेत्र सफेद हों, जिसे अन्न के नाम से बैर हो,

[१] कामला रोग पाण्डु रोगकी उपेक्षा करनेसे ही होता है । कोष्ठाश्रय कामलाको "कुम्भ कामला" कहते हैं ।

जिसे ऊँचे श्वास से हर समय कष्ट हो, जिसे बड़ी तकलीफ़ से बारम्बार पेशाब होता हो—ऐसा राजयक्ष्मा* या क्षय-रोगी मर जाय।

३८ जो खूब खाने पर भी दिन पर दिन दुबला होता जाय, वह क्षय-रोगी असाध्य है। जिस क्षयी रोग वाले को अतिसार हो, वह भी असाध्य† है।

३८(क) जिस यक्ष्मावालेके फोतों और पेटपर सूजन‡ हो, उसका आराम होना असम्भव है, इसलिए ऐसे रोगी को वैद्य हाथ में न ले।

श्वास।

४० जिस श्वास रोगी§ का साँस मुँहसे निकले वह तो शीतल हो और जो नाक से निकले वह गरम हो, नाड़ी जल्दी-जल्दी चले, रोगी में चलने की सामर्थ्य न हो—ऐसा श्वास-रोगी शीघ्र ही मर जाय।

---

* अपानवायु मलमूत्र आदि वेगोंके रोकने, अति मैथुन, उपवास, ईर्ष्या, सोच-फिक्र, बलवानसे वैर करने, कुसमयमें थोड़ा बहुत खानेसे वातादिक तीनों दोष कुपित होकर राजयक्ष्मा पैदा करते हैं। इसे शोष, क्षय, राजयक्ष्मा या राजरोग कहते हैं। इसमें कन्धों और पसवाड़ोंमें दर्द, पैरोंमें जलन और सब शरीरमें ज्वर होता है। बल मांसके क्षीण होनेपर रोगी त्याज्य है, इलाज करने योग्य नहीं है। यदि बल-मांस क्षीण न हों और चाहे सभी लक्षण हों, तो चिकित्सा करना उचित है।

† क्षयी रोगीवाले का जीना मलके अधीन है। इसलिये क्षयवालेके मलकी रक्षा करनी चाहिये। कहा है,—

मलायत्तं बलं पुंसां, शुक्रायत्तं तु जीवितम्।
तस्माद्यत्नेन संरक्षेत् यक्ष्मिणो मलरेतसी॥

‡ इसलिए आराम होना असम्भव है, कि शोथ या सूजन बिना दस्त कराये आराम नहीं होती और क्षय रोग में दस्त कराना मना है।

§ महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, तमकश्वास और क्षुद्रश्वास,—पाँच तरह के श्वास-रोग होते हैं। पहले तीन श्वास रोगोंसे कोई भाग्यवान ही बचता है। चौथा तमक श्वास कष्टसाध्य है। हाँ, पाँचवाँ क्षुद्र श्वास बेशक साध्य है। हिचकी और श्वास जितनी जल्दी मनुष्यके प्राण हरण करते हैं और रोग नहीं करते।

४१ जिस श्वास-रोगीके अङ्ग काँपें, जिससे चला न जाय, जिसका मुँह केशरके समान पीलाहो जाय, और दस्त जाते समय हवा निकले, वह श्वास-रोगी मर जाय।

उदर रोग।

४२ जिस उदर-रोगी*की पसलियाँ फटी जाती हों; यानी उनमें बड़े ज़ोर की पीड़ा होती हो, अन्न खाने की इच्छा न हो, सूजन और दस्तों से दुःखी हो, जुलाव या और किसी क्रिया से पेट का जल वग़ैरः निकाल देने पर भी थोड़े ही दिनों में फिर पेट बढ़ जाय—ऐसे रोगी को वैद्य त्यागदे।

४३ जिस उदर-रोगी की आँखों पर सूजन हो, लिङ्ग टेढ़ा होगया हो, पेट का चमड़ा गीला तथा पतला होगया हो; बल, अग्नि, रुधिर और मांस—ये क्षीण होगये हों, वह रोगी त्याज्य है। ऐसे रोगीको वैद्य हाथमें न ले।

४४ जिस उदर-रोगी के मल और मूत्र गाँठदार निकलें, जिसके शरीरमें गरमी न रहे, चरक में लिखा है, ऐसा उदर-रोगी श्वास से मरे।

गुल्म रोग।

४५ जिस गुल्म-रोगी को श्वास की पीड़ा हो, पसली हृदय पेड़ू प्रभृति में से कहीं शूल चलता हो, बहुत ज़ोर की प्यास हो, अन्न का नाम बुरा लगता हो, रोगी कमज़ोर होगया हो, इनके साथ ही गोले की गाँठ अकस्मात् लोप हो जाय—ऐसा रोगी मर जायगा।

४६ जब गुल्म† यानी गोला धीरे-धीरे सारे पेटमें फैल जाता है,

---

* उदर रोग-आठ तरह के होते हैं। उदररोग जन्मसे ही प्रायः कष्टसाध्य होते हैं। बलवान पुरुषके उदर रोग हो और पेटमें पानी न आया हो, तब तो किसी तरह बड़ी कठिनाइयोंसे आराम हो जाय। पानी पैदा होनेके बाद सभी उदर रोग मारक होते हैं। हाँ, बढ़िया शस्त्र-चिकित्सा रोगी को सुखी कर सकती है।

† वातादिक दोषोंके अत्यन्त दुष्ट होनेसे पेटमें गाँठसी हो जाती है। इस गाँठ या गोलेके रहने के पाँच स्थान हैं—दोनों पसवाड़े, हृदय, नाभि और बस्ति (पेड़ू)। यह गोला चलायमान और निश्चल दोनों तरह का होता है और घटता-बढ़ता भी रहता है।

धातुओं में उसकी जड़ जा पहुँचती है, नाड़ियों यानी नसों का जाल उसपर लिपट जाता है, बाक़ी रहा हुआ गोला पीठकी तरह ऊँचा हो जाता है तब गुल्म रोगी निर्बल हो जाता है, खाने पर मन नहीं रहता, सूखी उल्टी आती है; खाँसी, वमन, प्यास, ज्वर, तन्द्रा और पीनस—जुकाम—ये लक्षण पैदा हो जाते हैं— ऐसी अवस्था होने पर गुल्म-रोगी असाध्य हो जाता है।

४७ यदि गुल्म* रोगी को वमन होती हों, दस्त लगते हों, हृदय, नाभि और हाथ पैरों में सूजन हो, साथ ही ज्वर और दम का उठाव हो—तो रोगी जीवित नहीं रह सकता।

रक्तपित्त

४८ जिसकी जीभ, दोनों होठ और आँखें लाल हो जायँ अथवा उनसे खून गिरे,—ऐसा रक्तमूत्रवाला, रक्तातिसारवाला और रक्तपित्त† वाला रोगी मर जाता है।

४९ जिस रोगी को खूनकी उल्टी हों, आँखें लाल हों, सब ओर लाल ही लाल रङ्ग दीखे,—ऐसा रक्तपित्त-रोगी मर जाता है।

५० जो रक्तपित्त मांस के धोवन, सड़े पानी, कीच, मेद, राध, रुधिर, कलेजे के टुकड़े, पकी जामुन, काले रङ्ग, नीले रङ्ग, पपैहा के पङ्ख के समान हो, जिसमें मुर्देकी सी बदबू आवे और साथ ही श्वास

---

* गुल्म और अन्तर्विद्रधि दोनों सूरतमे एकसे होते हैं, रहने के स्थान भी दोनोंके एक ही हैं। तब इनमें फर्क क्या है? गुल्म निराश्रय है और अन्तर्विद्रधि साश्रय है। गुल्म दोषोंमें रहता है; अन्तर्विद्रधि मांस और खूनमें रहती है; गुल्म मुट्ठी के बराबर होता है, विद्रधि गुल्म से बड़ी होती है, विद्रधिका पाक होता है किन्तु गुल्म का पाक नहीं होता।

† रक्तपित्त ऊपर और नीचे के दोनों रास्तोंसे होता है। ऊपरवाला साध्य, नीचेवाला याप्य और दोनों ओरसे होने वाला असाध्य होता है। नाक, कान, आँख और मुँह से जब खून गिरता है, तब ऊपरका रक्तपित्त कहते हैं, यही साध्य होता है; क्योंकि यह कफ से होता है। जब लिङ्ग, भग और गुदा से खून निकलता है, तब इसे नीचे का या अधोमार्गी कहते हैं। जब रुधिर अत्यन्त कुपित होता है, तब आँख, कान, लिङ्ग, मुख, गुदा और लिङ्ग तथा शरीरके सभी रोमछिद्रोंसे खून गिरता है। यह असाध्य समझा जाता है।

आदि रक्तपित्तके उपद्रव हों, वह रक्तपित्त आराम नहीं हो सकता, और वह रक्तपित्त भी असाध्य है जिसका रङ्ग इन्द्र-धनुषके समान हो।

बवासीर।

५१ जिस बवासीर* रोगी के मुखपर सूजन हो, भ्रम, अरुचि, विबन्ध और पेट के शूल से रोगी पीड़ित हो, वह रोगी मर जाता है।

५२ जिस बवासीर वाले रोगीको प्यास बहुत लगती हो, अन्न अच्छा लगता न हो, शूल चलते हों, खून बहुत गिरता हो, दस्त लगते हों और सूजन हो, ऐसा रोगी मर जाता है।

५३ जिस बवासीरवाले के हाथ, पैर, गुदा, नाभि, मुँह और फोतों पर सूजन हो और पसवाड़ों में दर्द हो, वह असाध्य है।

५४ जिस बवासीरवाले के हृदय और पसलियों में दर्द हो, इन्द्रियों और मनमें मोह हो, वमन होती हों, अङ्गोंमें पीड़ा हो, बुखार चढ़ता हो, प्यास ज़ोर से लगती हो, गुदा पक जाय यानी गुदा पर पीले-पीले फोड़े हो जायँ, वह रोगी असाध्य है।

विद्रधि।

५५ जिस विद्रधिवाले के पेट पर अफारा हो, पेशाब रुक गया हो, उल्टियाँ होती हों, हिचकियाँ चलती हों, पसली वग़ैर:में कहीं

---

* मनुष्यकी गुदामें तीन आँटे या वलियाँ होती हैं। ऊपरके आँटेको प्रवाहिणी, बीचकेको सर्जनी और तीसरेको ग्राहिणी कहते हैं। प्रवाहिणी मल और अपान वायु आदिको बाहर लाती, सर्जनी बाहर निकाल देती है और ग्राहिणी मल आदिके निकल जानेपर गुदाको जैसी की तैसी बन्द कर देती है। इन्हीं तीन आँटोंमें बवासीरके मस्से होते हैं। उनसे खून गिरता है और नहीं भी गिरता। जिस बवासीरमें खून गिरता है उसे खूनी और जिसमें खाली चटके चलते हैं, उसे बादी बवासीर कहते हैं। वैद्यकके मतसे बवासीर छै तरह की होती हैं। लोकमें साधारण लोग दो तरह को हो कहते हैं। गुदाके बाहर के आँटेकी और एक सालकी पुरानी बवासीर आराम हो जाती है; पर बीचके आँटेकी कठिनसे आराम होती है। जन्मकी, त्रिदोषज और भीतरके तीसरे आँटेकी असाध्य होती है।

शूल चलता हो, प्यास और श्वास से रोगी दुःखी हो, तो रोगी मर जायगा।*

भगन्दर।

५६ जिस भगन्दर† रोगीके घाव से अधोवायु, मूत्र, विष्ठा, कीड़े और वीर्य ये गिरते हों, उसको असाध्य समझो।

पथरी।

५७ जिस रोगी के नाभि और फोतों पर सूजन हो, पेशाब रुक जावे, शूल चले; ऐसी पथरी‡-सिकता और शर्करावाला रोगी मर जाय।

मूढ़ गर्भ।

५८ जिस स्त्रीके बच्चा होता-होता गर्भमार्गमें रुक जाय, बाहर न

---

* एक प्रकारकी गोल और लम्बी सूजनको "विद्रधि" कहते हैं। यह हड्डी तक पहुँच जाती है और पैदा होनेसे सड़न और पीड़ा करता है। ये छै तरहकी होती है। कोई गूलरके समान, कोई सिर के बालके समान, कोई ऊपरसे पतली नीचेसे मोटी अनेक तरहकी होती है। कोई पकती है, कोई नहीं पकता है। गुदा, बस्ति, मुख, नाभि, कूख, वंक्षण, वृक्क, प्लीहा, हृदय, क्लोम (प्यास का स्थान) इसके होनेके स्थान हैं। यह बाहर भी होती है और भीतर भी, बड़ा खराब रोग है।

† गुदाके पास, दो अंगुलकी ऊँचाई पर, पीड़िकी तरह, एक फुन्सीसी होती है। उसमें बड़ा दर्द होता है, जब वह फूट जाती है, उसे "भगन्दर" कहते हैं। उपेक्षा करनेसे उसमें चलनीकी तरह अनेक छेद हो जाते हैं। उनमेंसे मल, मूत्र, और वीर्य निकलने लगते हैं। भगन्दर सभी दुःसाध्य होते हैं। त्रिदोषज और क्षतज तो असाध्य ही होते हैं।

‡ पथरी रोग बस्ति या पेड़ूमें होता है। वीर्य आदि की गांठसी बन जाती है। मैथुन के समय चलते हुए वीर्य और मलमूत्र आदि वेगोंके रोकनेसे पथरी होती है। फोतोंके पास की सीवन और पेटके अन्दर भारी दर्द होता है। पथरीके कारण पेशाबकी राह रुक जाती है। इसलिये पेशाबकी धार फटी-फटीसी आती है, पेशाबके समय और करनेसे भयानक पीड़ा होती है। पेशाबमें रुककर जाय वह "शर्करा" और बालूसी जाय वह "सिकता" कहाती है। पंडितय, उपघात, हृदय शूल आदि पथरीके उपद्रव हैं।

निकले, मक्कल शूल हो तथा खाँसी श्वास आदि उपद्रव भी हों, तो वह स्त्री मर जाय* ।

५८ जिस गर्भिणी का सिर नीचा हो जाय, देह शीतल हो जाय, लज्जा शर्म का ध्यान न रहे, जिसकी कोखमें हरी नीली नसें उठ खड़ी हों, वह गर्भिणी आप मरती है और गर्भ को मारती है अथवा गर्भ उसे मारता और आप मरता है; अर्थात् गर्भगत बालक और गर्भिणी दोनों मर जाते हैं† ।

मृगी ।

६० सुश्रुत में लिखा है, जिसे बारम्बार जल्दी-जल्दी अपस्मार यानी मृगी‡का दौरा हो, जो कमज़ोर हो जाय, जिसकी भौंहें चलायमान हों और जो आँखोंको बुरी तरहसे चलावे, वह मृगी रोगवाला मर जाय । हारीतने पार्श्वभङ्ग, अन्नसे बैर, सूजन और अतिसार ऊपरके लक्षणोंके साथ और जोड़े हैं ।

---

* मूढ़ गर्भ की गति आठ प्रकारकी होती है। वायुके योगसे गर्भ टेढ़ा होकर अनेक तरहसे योनि-द्वारमें आकर अड़ जाता है। कोई सिरसे, कोई पेटसे, कोई एक हाथ से, कोई दोनों हाथों से योनि-द्वारको रोक देता है। किसीके हाथ पैर खुरकी तरह बाहर निकल आते हैं, और शरीर योनिके भीतर अटका रहता है।

† मूढ़ गर्भके कारणसे तो स्त्रीकी योनिका द्वार बन्द हो जाता है, बालक अटका जाता है; किन्तु जब पेटमें बच्चा माताके मानसिक और आगन्तुक दुःखोंसे मर जाता है, तब उसे "मृतगर्भ" कहते हैं। जब पेटमें बालक मर जाता है तब गर्भ हिलता-चलता नहीं, बच्चा होने की दर्द बन्द हो जाते हैं, शरीर हरा और नीलासा हो जाता है, श्वासमें दुर्गन्ध आती है, आँतोंके फूलनेसे पेट तन जाता है—ऐसे लक्षण होनेसे बालक को मरा समझना चाहिये।

‡ मृगीको अपस्मार इसलिये कहते हैं कि, इस रोगमें स्मृतिका नाश हो जाता है, कुछ ज्ञान नहीं रहता। इसी वजहसे रोगीके लिये जल वगैरःसे भय रहता है। अधिक चिन्ता, शोक, लोभ, मोह आदिसे वातादि दोष कुपित होकर, मनके बहनेवाली नाड़ीमें जाकर स्मरण (ज्ञान) का नाश कर अपस्मार रोग पैदा करते हैं। मृगी-रोगी दाँतोंको चबाता, मुँहसे झाग गिराता, भौंहें हिलाता, आँखोंको टेढ़ो-बाँकी करता है। उसे ऐसा मालूम होता है, मानो काला, पीला, सफेद आदमी मेरे पास दौड़ा आता है। पुरानी और दुर्बल की मृगी असाध्य है।

वात-व्याधि।

६१ हारीत ने कहा है—जिस वात व्याधिवाले* को शूल हो, चमड़ा सूना हो यानी स्पर्श-ज्ञान न हो, शरीर फटा हो, (या हड्डी टूटी हो) अफारा हर समय बना रहता हो, रोगी दुखी हो, ऐसा रोगी मर जाता है। सुश्रुतमें सूजन और कम्प अधिक लिखा है।

प्रमेह।

६२ यदि प्रमेही रोगी का प्रमेह उपद्रवों† सहित हो, अत्यन्त बहता हो, शराविका कच्छपिका आदि फुन्सियाँ रोगी को अत्यन्त पीड़ित करती हों, तो प्रमेह रोगी मर जाय।

कोढ़।

६३ जिस कोढ़-रोगी का शरीर फट गया हो, अङ्गों से कोढ़ चूता हो, नेत्र लाल हों, स्वरभङ्ग हो; स्नेह, स्वेद, वमन, विरेचन प्रभृति पंच कर्मों से कुछ लाभ न हो, कुष्ट अस्थिगत होगया हो, ऐसा कोढ़ी मर जाता है।

---

* वात-व्याधि बहुत प्रकारकी होती हैं। आक्षेपक, दण्डापतानक, धनुस्तंभ, जिह्वासंभ, मन्यास्तम्भ, शिराग्रह, हनुग्रह, लकवा, फालिज, मुंह टेढा हो जाना, आधा शरीर रह जाना, प्रभृति रोग वात व्याधिमें ही शामिल हैं।

† अन्नका न पचना, अरुचि, ज्वर, खाँसी, पीनस,—ये कफ प्रमेहके और वस्ति यानी पेड़ूमें दर्द, फोतोंका पककर फटना, ज्वर, प्यास, खट्टी डकार, मूर्च्छा, पतले दस्त—ये पित्त प्रमेहके और उदावर्त्त, हृदय तथा गलेका रुकना, सब रसोंके खानेकी इच्छा, शूल, निद्रानाश, शरीर सूखना, सूखी खाँसी, श्वास—ये वात प्रमेहके उपद्रव हैं। प्रमेह बीस प्रकारके होते हैं। ये पेशाब की बीमारियां हैं। इनमें तरह-तरहके पेशाब होते हैं। इस रोगवालेके किसीके मतसे सात तरहकी (चरकके मतसे) किसी के मतसे नौ तरहकी (सुश्रुत और भोजके मतसे) और किसीके मतसे दस तरहकी पिड़िका या फुन्सियाँ होती हैं। गुदा, हृदय, सिर, कन्धा, पीठ और मर्मस्थानकी, पिड़िकायें असाध्य होती हैं। सब प्रमेहोंमें मधुमेह खराब है। दवा न करनेसे समय पाकर सभी प्रमेह "मधुमेह" हो जाते हैं। मधुमेहवाले का पेशाब मधु या शहदके समान होता है। पेशाबमें चींटियाँ लगने लगती हैं।

६४ गुदा, हाथ, पैर, तलवों और होंठों में यदि किलास कोढ़ हो, और वह पुराना भी न हो; तोभी यश चाहनेवाला वैद्य ऐसे कोढ़ी को चिकित्सा न करे* ।

उन्माद।

६५ जो उन्माद-रोगी सदा मुँह नीचा रक्खे, अथवा सदा ऊपर को मुँह रक्खे, मांस-बल क्षीण होगये हों, दिन-रात जागता रहे, किसी बात का सन्देह न रहे—ऐसा पागल मर जाता है।

६६ जिस उन्माद† रोगीके नेत्र भयानक हो जायँ, जल्दी-जल्दी चलें, मुँहसे झाग निकलें, जिसे नींद बहुत आवे, जो गिर-गिर पड़े, जो काँपे, वह रोगी असाध्य है। जो हाथी, पर्वत, वृक्ष, देवमन्दिर आदिसे गिरकर उन्मादग्रस्त हो, वह भी असाध्य है। तेरह वर्ष के बादका उन्माद रोग भी असाध्य हो जाता है।

---

* कोढ़ अठारह प्रकारके होते हैं। उनमें सात महाकुष्ट और ग्यारह क्षुद्र कुष्ट होते हैं। यड़ा खराब रोग है। कोढ़वाली के साथ मैथुन करनेसे, कोढ़ीके शरीरसे शरीर लग जाने से, कोढ़ीका श्वास लगनेसे, कोढ़ीके साथ एक बासनमें भोजन करनेसे, कोढ़ीके साथ एक पलँग पर सोनेसे, कोढ़ीके साथ मिलकर बैठने से, उसके पास रहने से, कोढ़ीके कपड़े पहनने से, कोढ़ीकी पहनी हुई माला पहननेसे, सूंघा हुआ फूल सूंघने से, कोढ़ीके लगाये चन्दनमें से चन्दन लगानेसे कोढ़ हो जाता है। यह रोग उड़कर लगता है। कोढ़, ज्वर, क्षय, नेत्र-रोग, चेचक आदि रोग संक्रामक रोग कहलाते हैं; यानी उड़कर लगते हैं। इसलिये बुद्धि-मानोंको इनसे हर तरह बचना चाहिये। कोढ़ रोग ऐसा है कि, मरने पर भी पीछा नहीं छोड़ता। कहा है:—

म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातस्ततद् भवेत।
नातोनिंद्यतरोगो यथा कुष्टं प्रकीर्त्तितम्॥

कोढ़ीके मर जानेपर भी दूसरे जन्ममें कोढ होता है।

† उन्माद—यह रोग मनसे सम्बन्ध रखता है, इसलिये इसे उन्माद कहते हैं। इस रोगमें रोगी बिना कारण हँसता है, मुस्कराता है, बिना प्रसङ्ग नाचता, गाता और दीवारोंसे बातें करता है, बिना कारण रोता है, हाथ पैर चलाता है, डरता है, भागता है, नङ्गा हो जाता है, पत्थर मारता है,—ऐसे-ऐसे अनेक लक्षण होते हैं। इसीको "उन्माद" या "पागलपन" कहते हैं।

विशूचिका।

६७ जिस रोगीके दाँत, नाखून और होठ काले पड़ जायँ, संज्ञा जाती रहे, होश-हवास ठिकाने न रहें, वमन करते-करते रोगी घबरा जाय, आँखें खड्डोंमें घुस जायँ, आवाज़ मन्दी हो जाय, हाथ-पैरों के जोड़ ढीले हो जायँ, वह विशूचिका* रोगी नहीं बचे।

हिचकी।

६८ जिसकी देह हिचकियोंसे† तन जावे, ऊँची दृष्टि हो जावे, मोह हो, शरीर दुर्बल हो जाय, अन्न पर मन न चले, छींक बहुत आवें ऐसे रोगीको यदि गम्भीरा या महती हिचकी आती हों, तो उस रोगी का वैद्य इलाज न करें।

६९ जिसके दोषों का सञ्चय खूब होगया हो, जिसका अन्न छूट गया हो, जो कमज़ोर होगया हो, जो अनेक रोगों से दुर्बल होगया हो, जो बूढ़ा हो या अति मैथुन करनेवाला हो—ऐसे पुरुषके यदि गम्भीरा या महाहिक्का चलें, तो रोगी तत्काल मर जाय।

७० यमका हिचकीवाला यदि बकवाद करे; पीड़ा, मोह तथा प्यास हो—तो यमका भी तत्काल प्राण नाश करती है।

छर्दि।

(७१) क्षीण पुरुष के बारम्बार छर्दि (वमन) हो, साथ ही खाँसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, प्यास, बेहोशी, हृदयरोग और आँखोंके सामने

* विशूचिकाको बोल-चालमें हैज़ा कहते हैं। अंगरेज़ीमें कालेरा कहते हैं। इस रोग में दस्त और क़य (वमन) होते हैं। पीछे प्यास, शूल, भ्रम, मूर्च्छा (बेहोशी), दाह, जंभाई, कम्प, मस्तक-पीड़ा ये लक्षण होते हैं। रोगीका रङ्ग और का और हो जाता है, पेशाब बन्द हो जाता है। बहुत कम रोगी इस रोगसे बचते हैं।

† हिचकीको वैद्यकमें हिक्का कहते हैं। यह पांच तरह की होती है। इस रोगसे मनुष्य बहुत ही जल्दी मरता है। मामूली हिचकी गरम भात और घी खाने, प्राणायाम करने प्रभृति उपायोंसे सहजमें बन्द हो जाती है, किन्तु गम्भीरा और महती हिचकी असाध्य हैं। इस रोगमें सुस्ती करना ठीक नहीं।

अँधेरा आना ये उपद्रव हों; छर्दि में खून और राध मिले हों, छर्दि का रङ्ग मोर के चँदोवेके समान हो, ऐसी छर्दि* असाध्य होती है।

मदात्यय।

(७२) जिस मदात्यय† रोगी का नीचे का होठ ऊपर के होठ से लम्बा हो जाय, शरीर में बाहर ज़ोर से जाड़ा लगे, भीतर से अत्यन्त दाह हो, मुख तेल से लिपासा हो जाय, जीभ, होठ, दाँत काले या नीले हो जायँ, आँखें पीली हो जायँ या खून-जैसी सुर्ख़ हो जायँ, ऐसे बहुत शराब पीने से बीमार हुए रोगी को वैद्य त्याग दे।

दाह।

(७३) हृदय, सिर पेड़ू में चोट लगने से जो दाह‡ रोग होता है, वह असाध्य होता है। जिस रोगीको दाह हो, मगर उसका शरीर छूने में शीतल हो, वह रोगी आराम नहीं होता।

वातरक्त।

(७४) घुटनों तक गया हुआ वातरक्त§ असाध्य होता है। जिस वातरक्त-रोगी का चमड़ा फट जाय या चिर जाय, उसमें से राध आदि चुए, साथ ही मांस-क्षय, निद्रा-नाश, अरुचि, स्वास, मांस

---

* छर्दि रोग में वमन यानी क़य होती हैं।

† जो गुण विष में हैं वही गुण मदमें हैं। अगर यह बेकायदे अधाधुन्ध पिया जाता है तो भयङ्कर मदात्यय रोग पैदा करता है; अगर क़ायदेसे थोडा-थोड़ा पीया जाता है तो अमृत का काम करता है। विधि-पूर्व्वक पीनेसे रूप खिलता है, मनको सन्तोष होता है, उत्साह होता है, शोक और रंज हवा होजाते हैं।

‡ दाह रोग सात प्रकार का होता है। इस रोग में रोगी एकदम जला जाता है। मारे दाह के रोगी बेहोश हो जाता है। गला, तालू और होठ एकदमसे सूखने लगते हैं, मारे गरमी के रोगी जीभ को बाहर निकाल देता है। ऐसे-ऐसे लक्षण होते हैं।

§ वातरक्त रोग एक प्रकार का रक्तविकार है। इस रोगमें सारे शरीर का खून खराब हो जाता है, सूजन, खुजली, फोड़े, स्पर्श का बुरा मालूम होना या शरीर का सूना होना या सूई चुभाने की सी पीड़ा प्रभृति लक्षण होते हैं। सूखे, मोटे और नाज़ुक लोगों को यह रोग होता है।

का सड़ना, मस्तक का जकड़ना, मूर्च्छा, अत्यन्त पीड़ा, प्यास, ज्वर, मोह, हिचकी, लँगड़ापन, विसर्प, पकाव, नोचने की सी पीड़ा, भ्रम अनायास श्रम, उङ्गली टेढ़ी होना, फोड़े, दाह, मर्म स्थानों में पीड़ा और अर्बुद (गांठ),—ये उपद्रव हों, वह वातरक्त-रोगी असाध्य है। वातरक्तके साथ यदि एक ही उपद्रव "मोह" हो, तोभी उसे असाध्य समझना चाहिये।

ऊरुस्तम्भ।

(७५) जिस ऊरुस्तम्भ* रोगी के दाह, शूल, और नोचने की सी पीड़ा तथा कम्प हो, वह रोगी मर जाय।

उदावर्त्त।

(७६) जो उदावर्त्त-रोगी प्यास और शूल से पीड़ित हो, क्लेशयुक्त हो, क्षीण हो, मल की उल्टी करता हो—ऐसे उदावर्त्ती† रोगी को वैद्य त्याग दे।

श्लीपद या हाथी-पांव।

(७७) जो श्लीपद कफकारक आहार-विहार से हुआ हो, तथा कफप्रकृतिवाले पुरुष के कफ से हुआ हो, तथा स्रावयुक्त हो, तथा जिस दोष से प्रकट हुआ हो उस दोष के लक्षण उसमें बढ़ गये हों, खुजली बहुत चलती हो और कफयुक्त हो, ऐसा रोगी असाध्य है। ऐसे श्लीपद (हाथी-पॉव) वालेको वैद्य हाथ में न ले।

---

* ऊरुस्तम्भ रोग में पैरो का सोजाना, सङ्कोच होना, पैर उठाने और रखनेमें तकलीफ, जांघ और ऊरुओं में अधिक पीडा, निरन्तर दाह और वेदना हो, शीतल पदार्थों का स्पर्श मालूम न हो यानी शरीर के शीतल चीज लगने से मालूम न हो, पैर और जांघ पराई सी और टूटी सी मालूम हों।

† उदावर्त्त रोग १२ प्रकार के होते हैं। अधोवायु, विष्टा, मूत्र, जंभाई, अश्रुपात, छींक, डकार, वमन, शुक्र, प्यास, श्वास और निद्रा इन १२ वेगों के रोकने से उदावर्त्त रोग होते हैं। पेट में दर्द, अफारा, पथरी, फोतों में दर्द, गुदा में पीड़ा, सूजन, पीलिया प्रभृति लक्षण इन रोगों में होते हैं।

व्रण।

(७८) जो व्रण* मर्मस्थानमें प्रकट हुए हों और उनमें अत्यन्त पीड़ा होवे, तथा जो व्रण (फोड़े) बाहर से शीतल हों और उनके भीतर जलन होवे, तथा जिन व्रणों में भीतर जलन हो और बाहर से शीतल होवें, तथा जिन व्रणोंवाला रोगी बलक्षय, मांसक्षय, श्वास खाँसी, अरुचि इनसे पीड़ित होवे, तथा जो व्रण मर्मस्थान में प्रकट हुए हों और उनमें से राध, लोहू बहुत बहता होवे, तथा जो व्रण इलाज पर इलाज करनेसे भी आराम न हों—ऐसे व्रणोंकी चिकित्सा सद्वैद्य भूलकर न करें।

उपदंश या आतशक।

(७९) जिस उपदंश†में अनेक प्रकार का स्राव हो, साथ ही पीड़ा हो वह त्रिदोषज उपदंश असाध्य है।

(८०) जिस उपदंश-रोगी के लिङ्ग का मांस गल गया हो, कीड़े लिङ्ग को खा गये हों, केवल फोते रह गये हों, उस रोगी से वैद्य दूर ही रहे।

---

* व्रण—फोड़ों को कहते हैं।

† उपदंश—इसे सर्व साधारण "गरमी का रोग" कहते हैं। इस रोग में लिङ्ग पर छोटी छोटी फुन्सियाँ हो जाती हैं। पीछे पककर उनसे राध बहती है, इसके बाद लिङ्ग सूज जाता है, लिङ्ग का मुख बन्द हो जाता है इत्यादि। यह रोग पाँच प्रकार का होता है। हाथ की चोट लगने से, नाखून और दाँतों के लगने से, अच्छी तरह न धोने से, गरमीवाली स्त्रीसे मैथुन करने से, रजस्वला स्त्री के साथ गमन करने और खारी जलसे इन्द्री धोनेसे अथवा गरमीवाले के पेशाब पर पेशाब करने से उपदंश या गरमी रोग होता है। इस रोग के इलाज करने में देर करना और मौत को न्योता देना दो बात नहीं हैं।

जिस रोगी के नेत्र, कान और मुख सौम्य-श्रेष्ठ हों, जो रस तथा गन्ध को जानता हो, उस रोगी का रोग निसन्देह साध्य है।

जिसके हाथ पैर गर्म हों, दाह—जलन—अल्प हो, जीभ कोमल हो, वह रोगी नहीं मरता।

जिस रोगी के ज्वर में पसीने न आते हों, सांस नाकसे आता हो, कण्ठ में काफ घरघर न करता हो, वह रोगी अवश्य जीता है।

जिस रोगीको सुखसे नींद आती हो, शरीर कान्तियुक्त हो, इन्द्रियाँ प्रसन्न हों, वह रोगी नहीं मरता।
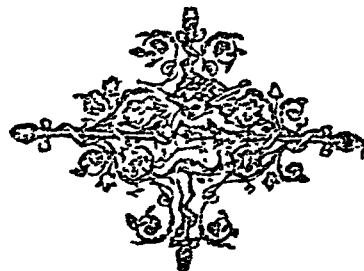
द्रव्यों की पाँच अवस्थायें।

प्रत्येक पदार्थ में रस, गुण, वीर्य, विपाक, और शक्ति—ये पाँच बातें होती हैं। ये पांचों अपना-अपना काम करते हैं।

पदार्थों में छै प्रकार के रस, बीस प्रकार के गुण, दो तरह का वीर्य्य, तीन तरह के विपाक और अचिन्त्य प्रभाव होता है।

रस

पदार्थों में मधुर, अम्ल, खारी, कड़वा, चरपरा और कसैला—ये छै रस रहते हैं। वाग्भट ने लिखा है, इन छहोंमें पहला-पहला रस पीछे-पीछे के रस से अधिक बलप्रद है।

मधुर, अम्ल (खट्टा) और खारी—ये तीन रस वात नाशक हैं और कड़वा, चरपरा, और कसैला—ये तीन रस वातकारक हैं।

कड़वा, कसैला और मीठा—ये तीन रस पित्तनाशक हैं और खट्टा, खारी और चरपरा,—ये तीन रस पित्तकारक हैं।

मीठा, खट्टा, खारी,—ये तीन रस चिकने और भारी हैं। चरपरा, कड़वा और कसैला,—ये तीन रूखे और हलके हैं। मीठा, कड़वा, कसैला, ये तीन शीतल हैं। चरपरा, खट्टा, नमकीन ये तीन गरम हैं।

जो रस वातको हरनेवाला है, यदि उस रसवाले पदार्थ में रूखा-पन, शीतलता और हलकापन हो, तो वह वायु को नष्ट नहीं कर सकता।

खारा और कसैला रस वायुको कुपित करता है; मीठा और कड़वा कफ को कुपित करता है; चरपरा और खट्टा रस पित्त को कुपित करता है।

चरपरा और खट्टा रस वात को शान्त करता है; मीठा और कड़वा पित्त को शान्त करता है; चरपरा और कसैला कफ को शान्त करता है।

चरपरा, कड़वा और कसैला—ये रस वायु को कुपित करते हैं, इसलिये वायुमें इनका देना ठीक नहीं। चरपरा, खट्टा और नमकीन ये रस पित्त को कुपित करते हैं, इसलियें इनका पित्तमें देना ठीक नहीं। मीठा, खट्टा और नमकीन ये कफ को कुपित करते हैं, इसलिये कफ के रोग में इनका देना ठीक नहीं।

जो रस पित्त को शमन करनेवाला है, यदि उस रसवाले पदार्थ में तीक्ष्णता, उष्णता और हलकापन हो, तो वह पित्त को शान्त नहीं कर सकता।

जो रस कफ को शान्त करनेवाला है, यदि उस रसवाले पदार्थमें चिकनापन, भारीपन, और शीतलता हो, तो वह कफ को नष्ट नहीं कर सकता।

सम्पूर्ण मधुर रस वाले पदार्थ कफकारक होते हैं, किन्तु जौ, मूँग, शहद, मिश्री और जङ्गली जीवों का मांस,—ये कफकारक नहीं होते हैं।

सभी अम्ल रसवाले—खट्टे पदार्थ पित्त को उत्पन्न करते हैं, किन्तु आमला और अनार खट्टे होनेपर भी पित्त को उत्पन्न नहीं करते।

सभी तरह के नमक आँखों के लिए नुकसानमन्द होते हैं, किन्तु सेंधानोन नहीं होता।

सभी चरपरे और कड़वे पदार्थ वात को कुपित करनेवाले और वीर्य को नुकसान पहुँचानेवाले हैं; किन्तु सोंठ, पीपल, लहसुन,

परवल और गिलोय चरपरे और कड़वे होने पर भी वीर्य की हानि नहीं करते और वात को कुपित नहीं करते। चरक में कहा है, सोंठ और पीपल वीर्य को बढ़ानेवाले हैं, किन्तु अन्य चरपरे पदार्थ वीर्य के लिए हानिकारक हैं।

सभी कसैले रसवाले पदार्थ प्रायः शरीर को स्तम्भन करनेवाले होते हैं, किन्तु 'हरड़' क़सैली होनेपर भी ऐसी नहीं है।

आगे हम छहों रसों के गुण लिखते हैं। पाठक इन गुणों को सामान्य गुण समझें, क्योंकि रसों के आपस में मिलनेसे और ही तरह के गुण प्रकट होते हैं। जैसे शहद और घी मिलकर (बराबर-बराबर) विष हो जाते हैं। साँप के काटने पर विष का प्रयोग अमृत का काम करता है; यानी अमृत हो जाता है।

मधुर रस

मधुर रस शीतल है। यह रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, ओज और वीर्य को बढ़ानेवाला; स्त्रियोंके स्तनोंमें दूध की वृद्धि करनेवाला, आँखों और बालों के लिये हितकारी, रूप और बलके देनेवाला, टूटेको जोड़नेवाला, रुधिर और रसको प्रसन्न करनेवाला, बालक, और बूढ़े तथा घावोंसे दुर्बल को हितकारी; भौंरे और चींटियों को प्यारा लगनेवाला; प्यास, मूर्च्छा, और दाहको शान्त करनेवाला; पाँचों इन्द्रियों और मनको प्रसन्न करनेवाला, कृमि (चुरने कीड़े) और कफ करनेवाला है। इतने गुण सुश्रुतमें लिखे हैं। भावप्रकाश में यह अधिक लिखा है—मधुर रस वात और पित्त को नष्ट करनेवाला, शरीर में स्थूलता (मोटापन) करनेवाला, पुष्टि करनेवाला, कण्ठको शुद्ध करनेवाला, भारी, विषनाशक, चिकना और आयुके लिये हितकारी है।

मधुर रसका अति सेवन

सुश्रुत में लिखा है, यदि मीठा रस अकेला ही बहुत ज़ियादा

सेवन किया जाय तो खाँसी, श्वास, अलसक, वमन, मुखका मीठा रहना, आवाज़ बैठ जाना, कृमिरोग, गलगण्ड, अर्बुद (रसौली) और श्लीपद (फीलपाँव) रोग पैदा करता है। पेड़ू (वस्ति) और गुदा मैले और भारी रहते हैं, आँखोंसे जल गिरता है। भावप्रकाशमें लिखा है,—ज्वर, श्वास, गलगण्ड, अर्बुद, कृमि, स्थूलता, अग्नि की मन्दता, प्रमेह, मेद और कफ के रोग पैदा करता है।

खट्टा रस

खट्टा रस गर्म है। यह रस पाचक, रुचिको उत्पन्न करनेवाला, पित्त कफ और रुधिरको बढ़ानेवाला, हलका, मोटेको पतला करने वाला, छूने में शीतल, क्लेदन, वातनाशक, चिकना, तीक्ष्ण और दस्तावर है। वीर्य, विबन्ध, आनाह और आँखों की रोशनी को नाश करता तथा रोमाञ्च करता है। दाँतों को हर्ष करता तथा नेत्र और भौंहों का सङ्कोच करनेवाला है।

खट्टे रसका अति सेवन

यदि यही खट्टा रस अकेला ही बहुत अधिक सेवन किया जाय तो भ्रम, प्यास, दाह, तिमिर (अन्धकार), ज्वर, खुजली, पीलिया, विसर्प, सूजन, विस्फोटक और कोढ़ करता है। सुश्रुत में लिखा है, दाँतों में हर्ष यानी दाँतों का आम जाना, नेत्रों का मिचना, रोमोंमें पीड़ा या छोटी-छोटी फुन्सियाँ, शरीर का ढीलापन; गर्म होनेसे कण्ठ, छाती और हृदय में दाह—ये विकार करता है।

खारी रस

यह रस भी गर्म है। यह रस संशोधन करनेवाला, रुचिकारक, पाचक, कफ और पित्तको बढ़ानेवाला, पुरुषता और वात को नाश करनेवाला, शरीरमें शिथिलता और मृदुता करनेवाला है। आँख,

नाक और मुँहमें पानी लानेवाला, गाल तथा गलेमें जलन करने वाला है। सुश्रुत में लिखा है—जोड़ों को ढोला करनेवाला, मार्गों को शोधनेवाला, शरीर के सब भोगों को मुलायम करनेवाला इत्यादि ।

खारी रसका अति सेवन

यही रस अकेला ज़ियादा सेवन करनेसे नेत्रपाक, रक्तपित्त, कोढ़, घौर चतादि (घाव प्रभृति) रोग करनेवाला, शरीरमें सलवटें डालनेवाला, बालों को सफ़ेद करने और उड़ानेवाला ; कोढ़, विसर्प और तृषा (प्यास) रोग करनेवाला है। सुश्रुतमें लिखा है—खाज, कोढ़, चकत्ते, सूजन, कुरूपता, पुरुषत्व का नाश, और इन्द्रियोंमें उत्ताप करनेवाला; मुँह और आँखों का पकानेवाला तथा रक्तपित्त, वातरक्त प्रभृति रोग करनेवाला है ।

चरपरा रस

यह रस भी गर्म है। यह रस तीक्ष्ण, विशद, वात-पित्तको करनेवाला, कफ को हरनेवाला, हल्का, अग्निके अधिक भागवाला; कृमि (कीड़े), खुजली और विषको नाश करनेवाला ; रूखा, स्तनों का दूध नष्ट करनेवाला, मेद यानी चरबी की मुटाई को नाश करनेवाला ; आँखोंमें आँसू लानेवाला ; नाक, मुँह और जीभ में उद्वेग करनेवाला ; रुचिकारक, अग्नि को दीप्त करनेवाला, नाक को सुखानेवाला, स्रोतों को प्रकट करनेवाला, रूखा, बुद्धि बढ़ानेवाला और मल-रोधक यानी दस्त रोकनेवाला है ।

चरपरे रसका अति सेवन

यदि चरपरा रस अकेला ही अधिक सेवन किया जाय, तो भ्रम और दाह करता; मुख, तालू और होठों को सुखाता, कण्ठादिमें दर्द करता, मूर्च्छा और प्यास को पैदा करता और बल तथा कान्तिका

नाश करता है। सुश्रुतमें लिखा है—भ्रम और मद करता, गले, तालू और होठोंमें खुश्की करता, देहमें सन्ताप करता, बल का नाश करता; कँपकँपी, पीड़ा, फूटनीसी पैदा करता और हाथ, पाँव पसली और पीठ वग़ैरः में वायुशूल यानी वादी का दर्द करता है।

कड़वा रस

यह रस शीतल है। यह प्यास, मूर्च्छा, ज्वर, पित्त और कफ को नाश करनेवाला और कृमि, कोढ़, विष, दाह, जी मिचलाना एवं खूनके रोगों को आराम करनेवाला है। आप स्वादमें बुरा है, अरुचिकारक है, लेकिन और चीज़ों में रुचि करता है, कण्ठ तथा दूध को शुद्ध करता है; वातकारक, अग्निवर्द्धक, रूखा, हलका और नाक को सुखानेवाला है। सुश्रुत में इतना और लिखा है—यह रस दूधको शोधनेवाला; विष्टा, मूत्र, गीलापन, चरबी की चिकनाई और पीव को सोखनेवाला है।

कड़वे रस का अति सेवन

इस रस के अकेले ही अत्यधिक सेवन करनेसे सिरमें दर्द, गर्दनमें स्तम्भता (गर्दन न हिले न घूमे), थकान, पीड़ा, कम्प, मूर्च्छा और तृषा—ये रोग होते हैं तथा बल और वीर्य का नाश होता है। सुश्रुत में लिखा है—गर्दन का ठहर जाना और गिर-गिर पड़ना, अर्दितवायु, सिर का दर्द, पीड़ा, फूटनी, छेदने की सी पीड़ा और मुख का स्वाद खराब—ये रोग होते हैं।

कसैला रस

यह रस शीतल है। यह रस घाव को भरनेवाला, शरीरको स्तम्भन करनेवाला, व्रण को शोधनेवाला, व्रण आदि पर उठे मांस को छीलनेवाला, पीड़ा करनेवाला, चन्द्रमासे उत्पन्न हुआ, व्रण तथा मज्जा आदि को सुखानेवाला, वायु को कुपित करनेवाला; कफ,

रुधिर और पित्तको हरनेवाला; रूखा, हलका, चमड़े को शुद्ध और ठीक करनेवाला; आमको रोकनेवाला, फैलनेवाला, जीभ को जड़ करनेवाला, कण्ठ और छिद्रों को रोकनेवाला है।

कसैले रसका अति सेवन

अकेले इस रसका अति अधिक सेवन ग्राही, अफारा, हृदय की पीड़ा और आक्षेपक—अति कम्प आदि रोग उत्पन्न करनेवाला है। सुश्रुतमें लिखा है—हृदयमें पीड़ा, मुँह सूखना, उदर-रोग, अफारा, बातों का साफ़ न बोलना, गर्दन की नसका रहजाना, अङ्ग-फड़कना, चुनचुनाहट, अङ्ग सुकड़ना और अति कम्प आदि रोग होते हैं।

मधुर पदार्थ

दूध, घी, चरबी, चाँवल, जौ, गेहूँ, उड़द, सिंघाड़े, कसेरू, खीरा, आरिया, फूट, ककड़ी, घिया, तरबूज़, चिरौंजी, महुआ, दाख, किशमिश, छुहारा, खिरनी, ताड़फल, खोपरा, ईखरस, गुड़, शक्कर, चीनी, खरेंटी, कंघी, कौंचके बीज़, बिदारीकन्द, दूध, रबड़ी, मलाई, प्रभृति तथा अरण्डकाकड़ी, कोयला, पेठा और शहत इत्यादि मीठे पदार्थ हैं।

खट्टे पदार्थ

अनार, आँवले, नीबू, कैथ, करौंदे, छोटे बड़े बेर, इमली, फालसा, बड़हल, अम्लवेत, जम्भीरी नीबू, दही, छाछ, मद्य, शुक्त, सौवीर और तुषोदक (एक तरह की काँजी) इत्यादि खट्टे पदार्थ हैं।

खारी पदार्थ

सैंधा नोन, कालानोन, बिड़नोन (मटिया नोन), मनियारी नोन, सांभर नमक, समन्दर नोन, जवाखार, रेह, सज्जी, सुहागा और शोरा प्रभृति खट्टे पदार्थ हैं।

चरपरे पदार्थ

सहँजना, मूली, लहसन, कपूर, कूट, देवदारु, बावची, खुरासानी अजवायन, देशी अजवायन, गूगल, नागरमोथा और लालमिर्च प्रभृति चरपरे पदार्थ हैं।

कड़वे पदार्थ

दोनों हलदी, इन्द्रजौ, दोनों कटेली, निशोथ, ककोड़े, करेले, बैंगन, कनेर के फूल, टेंटी, शंखाहुली, चिरचिरा, कुटकी, अरणी और मालकांगनी इत्यादि कड़वे पदार्थ हैं।

कसैले पदार्थ

त्रिफला, जामुन, मौलसरी, पाषाणभेद, जीवन्तीशाक, पालक और चौलाई प्रभृति कसैले पदार्थ हैं।

द्रव्योंके गुण

हलके गुणवाले पदार्थ अत्यन्त पथ्य, कफनाशक, और शीघ्र पचनेवाले होते हैं। भारी पदार्थ वातनाशक, पुष्टिकारक, कफ-कारक और देर से पचनेवाले होते हैं। चिकने पदार्थ वातनाशक, कफकारक, वीर्य और बलवर्द्धक होते हैं। रूखे पदार्थ अत्यन्त वायु-वर्द्धक और कफनाशक होते हैं। तीक्ष्णपदार्थ अधिक पित्तकारक, लेखन तथा कफ वातनाशक होते हैं। इनके सिवा श्लक्ष्ण, स्थिर, सर, पिच्छिल प्रभृति और पन्द्रह गुण होते हैं। उनके लिये पहले लिखी हुई २७१से २८० नम्बर तक की परिभाषायें १०८ और १०९ पृष्ठों में देखिये।

वीर्य

सारा ही संसार अग्नि और चन्द्रमा से सम्बन्ध रखनेवाला नज़र आता है, इसलिये किसी चीज़में गरमी और किसी में शीतलता

होती है। इसलिये पदार्थों में उष्ण (गर्म) और शीत (ठण्डा) दो तरह का वीर्य माना है। गर्म वीर्य से वात और कफ का नाश होता है, किन्तु पित्त बढ़ता है। ठण्डे वीर्यसे पित्त नाश होता है, किन्तु वात और कफ की वृद्धि होती है। उष्ण वीर्य से भ्रम, तृषा, ग्लानि, स्वेद और दाह होता है ; किन्तु वायु और कफ की शान्ति होती है। इसी तरह शीत वीर्य से आनन्द और जीवन होता है तथा मलादिक की रुकावट और रक्तपित्त साफ़ होता है।

जठराग्नि के संयोग से रस का जो मीठा, खट्टा आदि परिणाम होता है. उसे "विपाक" कहते हैं। मीठे और खारी रस का बहुधा मीठा विपाक होता है। खट्टे रसका प्रायः खट्टा विपाक होता है। कड़वे, कसैले और चरपरे रसका प्रायः तीक्ष्ण विपाक होता है। परन्तु सब जगह ऐसा नहीं होता, कहीं-कहीं इन नियमों के विपरीत भी होता है। जैसे चाँवल मीठे होते हैं, पर पचने पर उनका पाक खट्टा होता है। हरड़ कसैली होती है, पर उसका पाक मीठा होता है।

मधुर पाक कफ को पैदा करनेवाला और वात-पित्तको हरने-वाला है। खट्टा पाक पित्त को पैदा करनेवाला और वातकफ के रोगों को नाश करता है। तीक्ष्ण पाक वात को पैदा करनेवाला और पित्त तथा कफ को नाश करता है। मतलब यह है, कि, रस से विपाक अधिक बलवान होता है।

प्रभाव

रस, वीर्य और विपाक में समानता होने पर भी कोई पदार्थ किसी पदार्थ से अधिक काम करता है। वह उसके "प्रभाव" का कारण है।

दन्ती और चीता रस आदिमें समान हैं, पर दन्ती दस्त खूब लाती है, किन्तु चीता यह काम नहीं कर सकता। दाख और महुआ रस, वीर्य और विपाक में समान हैं, पर दाखमें दस्त लानेकी शक्ति अधिक है। घी और दूध रस आदिमें समान हैं, पर घी में अग्नि को दीपन करने की शक्ति अधिक है। आँवला और बड़हर रस-वीर्य आदिमें समान हैं, परन्तु आँवला तो तीनों दोषों (वात, पित्त और कफ) का नाश करता है, किन्तु बड़हलसे यह काम नहीं हो सकता। कहीं-कहीं एक द्रव्य भी अपने प्रभावसे काम करता है। जैसे; सहदेई की जड़ सिरमें बाँधनेसे शीत ज्वर नष्ट हो जाता है। इसी तरह अनेक प्रकार की औषधियों के मिलाने से जो फल होता है, उसमें औषधियों के स्वभावको कारण रूप समझना चाहिये। ऐसे मौके पर रस वीर्य आदि का विचार न करना चाहिये।

जिन औषधियों का फल प्रत्यक्ष है, जो स्वभाव से प्रसिद्ध हैं, उनके सम्बन्ध में रस आदि के विचारने की ज़रूरत नहीं। हाँ, परस्पर विरुद्ध गुणवाली औषधियों का मेल होनेसे रस आदि की कमी-बेशी हो जाती है, क्योंकि रसको "विपाक" जीत लेता है; रस और विपाक को "वीर्य" जीत लेता है; रस, वीर्य और विपाक इन तीनों को "प्रभाव" जीत लेता है।

हितकारी और अहितकारी पदार्थ

स्वभावसे हितकारी पदार्थ।

अनाज—चाँवलों में लाल चावल, षष्टिकों में साँठी चाँवल, भूसीवाले अनाजोंमें जौ और गेहूँ, फलीवाले अनाजोंमें मूँग, मसूर और अरहर स्वभाव से हितकारी होते हैं।

रस—रसों में मधुर रस हितकारी होता है।

नमक—नमकों में सेंधा नमक हितकारी होता है।

फल—फलों में अनार, आँवला, दाख, अङ्गूर, खजूर, छुहारा, फालसा, खिन्नी, और बिजौरा नीबू ये हितकारी होते हैं।

शाक—पत्तों के सागोंमें बथुआ, जीवन्ती, पोई; फल-शाकों में परवल; और कन्दों में ज़मीकन्द हितकारी होता है।

मांस—जंगली जीवों में काले, लाल तथा चित्तीवाले हिरन का मांस; पक्षियोंमें तीतर और लवे का मांस; मछलियोंमें रोहू मछली का मांस हितकर होता है।

मिश्रित—जलों में साफ़ जल, दूधों में गाय का दूध, घृतोंमें गोघृत, तेलों में तिल का तेल, ईख के बने पदार्थों में मिश्री उत्तम और हितकारी है।

विहार—ब्रह्मचर्य, निर्वात स्थान (जहाँ बाहर की हवा न आती हो, छाया हो) में सोना, निवाये जलसे स्नान करना, रात के समय नींद-भर सोना, कुछ मिहनत का काम और कसरत करना—सुश्रुत में ये अत्यन्त हितकर लिखे हैं।

सुश्रुत में धन्वन्तरि महोदय कहते हैं—'बहुत से आचार्यों' का कहना है कि, जो पदार्थ वातको शान्त करता है वह पित्त को कुपित करता है और जो पित्त को शान्त करता है वह वात को कुपित करता है।' इससे साबित होता है कि, कोई भी पदार्थ सर्वतोभावसे सभीको हितकर और अहितकर नहीं हो सकता। परन्तु हमारा ख़याल तो और ही है। हमारी रायमें सारे पदार्थ अपने स्वभाव यानी प्रकृति से अथवा संयोग से हितकारी और अहितकारी होते हैं। जल, दूध, घी, भात, मूँग आदि प्रायः सभी को हितकारी होते हैं* हाँ, आग, क्षार, विष प्रभृति सदा अहितकारी होते हैं†। कितने ही हितकारी पदार्थ संयोग से अहितकर या विष-तुल्य हो जाते हैं; कितने ही मौक़ों पर, नुक़सान करनेवाले पदार्थ फ़ायदा कर जाते हैं। रोग, सात्म्य, देश, काल, देह और जठराग्नि, इनका विचार करके वैद्य रोगीको विरुद्ध पदार्थ भी दे सकता है। अग्नि पर तपाया शहद विष है, किन्तु "अनन्तवात" नामक शिरोरोगमें विचार-पूर्व्वक तपाये हुए शहद से रोग में लाभ होता है।

अहितकारी पदार्थ।

(संयोग-विरुद्ध)

दूधके साथ मछली और आनूप देश (बंगाल जैसा देश) का मांस न खाना चाहिए। कबूतर का मांस तेल में भूनकर न खाना चाहिये।

मछली को खाँड़, मिश्री, चीनी, गुड़ और शहद के साथ न खाना चाहिए।

---

* ये पदार्थ निरोगी के लिये हितकर हैं; किन्तु रोगी को इनसे नुक़सान पहुँच सकता है। जैसे कितने ही बादी के रोगों में "भात" और कफ के रोगों में "दूध" नुक़सानमन्द है।

† आग से दागना, क्षार का प्रयोग करना, विष का इस्तेमाल करना—निरोगियोंके लिए अहितकारी यानी हानिकारक है। रोगियों को तो इनसे लाभ होता है। जैसे साँपके काटे को दागनेसे रोगी बच जाता है; क्षारोंसे मस्से गिराये जाते हैं; साँप के काटे को दूसरे ज़हरी जानवरोंसे कटाते और विष खिलाते हैं। विष की दवा विष है, इस कहावत के अनुसार लाभ भी होता है।

मांस और दूध के साथ सत्तू न खाना चाहिए ।

गरम पदार्थों के साथ दही न खाना चाहिए ।

शहत को गरम पदार्थों और वर्षा के जल के साथ न खाना चाहिए ।

खीर के साथ खिचड़ी न खानी चाहिए ।

केले की फली को छाछ, दही या बेलफल के साथ न खाना चाहिए ।

काँसीके बर्तनमें रक्खा हुआ घी यदि दस दिनका हो जाय, तो न खाना चाहिए ।

घी और शहद बराबर मिला कर न खाना चाहिए ।

काढ़े को दुबारा गर्म करके न पीना चाहिए ।

बहुत से मांस मिलने से परस्पर विरुद्ध हो जाते हैं। उसी तरह शहद, घी, चरबी, तेल, पानी और दूध भी मिलने से परस्पर विरुद्ध हो जाते हैं ।

सुश्रुत में लिखा है—बेलका फल, तोरई, टेंटी, नीबू प्रभृति खट्टे फल, अमावट सब प्रकार के नमक, कुलथी, दही, तेल, तिलकुटा, विरोहि मछली, पिट्ठी, सूखे साग, बकरी और भेड़ का मांस, मदिरा, चिलचिम* मछली, गोहमांस, शूकरमांस—इन सबको दूध के साथ न खाना चाहिए ।

सुश्रुतमें लिखा है—विरुढ़ धान्य, वसा—चरबी, शहत, दूध, गुड़, उड़द—इनके साथ ग्राम्य पशुओं, आनूपजल के पास रहनेवाले पशुओं और उदक-सञ्चारी जीवों का मांस न खाना चाहिए । चरकमें लिखा है, यदि कोई ऐसा करे तो उसे अन्धापन, बहरापन, गूँगापन, मिन-मिनापन, कम्प, जड़ता और विकलता ये रोग हों अथवा वह मर जाय ।

* चिलचिम मछली के ऊपर अत्यन्त काँटे होते हैं, सारी देह पर लोहित वर्ण की रेखायें और लाल नेत्र होते हैं। यह रोहित मछली के आकार की होती है और सदा कीच पर फिरा करती है ।

चरक में लिखा है—शहत और दूधके साथ कुटकी और पुष्कर-पत्र का साग न खाना चाहिये। सहत के साथ दूध न पीना चाहिए। सरसों के तेलमें भूनकर कबूतर का मांस न खाना चाहिए। यदि कोई ऐसा करेगा तो उसे मृगी, शङ्खक, गलगण्ड प्रभृति अनेक तरह के रोग और मृत्यु तक हो सकती है।

मूली, लहसन, सहँजने का साग, तुलसी, सफेद तुलसी या वन-तुलसी आदि खा कर, अगर ऊपर से कोई दूध पीवे, तो उसे कोढ़ का रोग हो।

किसी प्रकार का साग, पका हुआ कटहल, सहत और दूध के साथ मिलाकर न खाना चाहिए। ऐसा करने से बल, वर्ण, तेज और वीर्य की हानि, घोरतर व्याधि, नपुंसकता और मरण पर्य्यन्त हो सकता है।

बिजौरा, कटहर, करौंदा, बेर, कोशाम्र, जामुन, कैथ, इमली, अखरोट, पीलू, बड़हर, नारियल, अनार, और आँवले प्रभृति खट्टे फल एवं सब तरह के पतले पदार्थ और मूली तथा खटाई दूध के साथ खाने से रोग पैदा करते हैं।

जलमें मिलाकर घी सत्तू पीवे और फिर खीर खाय, तो भयानक रोग हो और कफ अत्यन्त कुपित हो।

पोई के साग को तेल में पका कर खाने से अतिसार होता है।

बगले का मांस सूअर की चरबी में भूनकर खाने से तत्काल प्राण नाश होते हैं।

मकोय को सहत के साथ खाने से मरण होता है।

शहद को गरम करके पीने से मनुष्य मर जाता है। जिसने पसीनों के लिये बफारा आदि लिया है, यदि वह सहत को गरम करके पीवे तो तत्काल मर जाय।

समान भाग घी और सहत,—सहत और अन्तरिक्षजल—सहत

और कामलगट्टे—सहत पीकर गरम पानी पीना—भिलावे सेवन करके गरम पानी पीना,—ये सब विरुद्ध कर्म हैं।

बासी मकोय का साग, सींकचे में छेदकर अङ्गारों पर पकाया हुआ मांस—ये भी विरुद्ध हैं।

बगले का मांस, शराब और उबाले हुए अनाज के साथ न खाना चाहिये।

सहत को गरम जल के साथ खाना—मकोय को पीपल और मिर्च के साथ खाना—नाली का साग, मुर्गी और दही का एक साथ खाना—शराब, तिल चावलों की खिचड़ी और खीर का एक साथ खाना—गुड़ के साथ मकोय—शहद के साथ मूली—बड़हल के पत्ते बिना उसके पहले और पीछे दूध पीना—ये सब भी संयोग-विरुद्ध हैं।

ऊपर लिखे हुए विरुद्ध खान-पानसे नपुंसकता, अन्धापन, विसर्प जलोदर, विस्फोटक, मूर्च्छा, उन्माद, भगन्दर, मद, अफारा, गलग्रह, पीलिया, किलास कुष्ट, शोष, रक्तपित्त, ज्वर और पीनस प्रभृति रोग तथा मृत्यु तक हो जाती है।

वमन, विरेचन तथा विरुद्ध आहारों को पचानेवाले संशमन योगों (दवाओं) से इनकी शान्ति होती है। हाँ, यदि विरुद्ध आहारों का अभ्यास पहले होसे कर लिया जाय, तो कोई अनिष्ट नहीं होता। अभ्यास बड़ी चीज़ है। बाज़ीगर रुपया, पैसा, लकड़ी, पत्थर खा जाते हैं और पाखाने की राह उन्हें निकाल देते हैं।

उत्तम और निकृष्ट समूह।

मनुष्यमात्रके याद रखने योग्य कोई

डेढ़सौ अनमोल बातें।

१ अन्न—जीवन-निर्वाहक पदार्थों में सर्वोत्तम है।

२ जल—प्यास मिटानेवालोंमें सबसे अच्छा है।

३ शराब—थकान दूर करनेवालोंमें सबसे अच्छी है।

४ निमक—रुचिकारक पदार्थों में सबसे अच्छा है।

५ खटाई—हृदय के लिए हितकारी पदार्थों में सर्वोत्तम है।

६ मुर्गेका मांस—बलकारी पदार्थों में सबसे उत्तम है।

७ मगरका वीर्य—वीर्य बढ़ानेवालों में सबसे अच्छा है।

८ शहद—कफ-पित्त-नाशक पदार्थों में सबसे अच्छा है।

९ घी—वातपित्त-नाशक द्रव्योंमें सर्वोत्तम है।

१० तेल—वातकफ नाशक द्रव्यों में सर्वोत्तम है।*

११ वमन—कफ नाश करनेके लिये सबसे अच्छा उपाय है।

१२ विरेचन—पित्त हरण करनेवालों में सर्वोत्तम उपाय है।

१३ बस्ती—वात हरण-कर्त्ताओंमें सबसे उत्तम है।

---

* तेल वातकफ-नाशकों मे सर्वश्रेष्ठ लिखा है, इसका यह मतलब है कि तेल वात नाशक है और वात-प्रधान वात-कफ नाशक है।

१४ स्वेद—पसीना शरीरको नर्म करनेवालों में सर्वोत्तम है।

१५ कसरत—शरीरको मज़बूत करनेवाले उपायों में राजा है।

१६ मैथुन—शरीरको दुबला करनेवालों में सबसे बढ़कर है।

१७ खार—पुरुषत्व-नाशक पदार्थों में सबसे बढ़कर है।

१८ तिन्दुक फल—अन्नमें अरुचि करनेवालोंमें सबसे बढ़कर है।

१९ कच्चा कैथ—स्वर भङ्ग करनेवालोंमें सबसे तेज़ है।

२० भेड़का घी—दिलको नुक़सान पहुँचानेवालों में राजा है।

२१ बकरीका दूध—शोष नाशकों, रक्तरोकनेवालों, रक्तपित्त-रोग-नाशकों और दूध बढ़ानेवालों में सबसे उत्तम है।

२२ भेड़का दूध—पित्त-कफ बढ़ानेवालों में सबसे ज़बर्दस्त है।

२३ भैंसका दूध—नींद लानेवालोंमें सबसे उत्तम है।

२४ दही—अभिष्यन्दी पदार्थोंमें सबसे बढ़कर है।

२५ ईख—पेशाब लानेवालों में सबसे बढ़कर है।

२६ जौ—मल पैदा करनेवालोंमें सबसे बढ़कर है।

२७ जामुन—वायु प्रकट करनेवालोंमें सबसे बढ़कर है।

२८ खली—पित्त-कफ करनेवालोंमें सबसे बढ़कर है।

२९ कुलथी—अम्ल-पित्त करनेवालोंमें सबसे बढ़कर है।

३० उड़द—पित्त-कफ-कारकोंमें सबसे बढ़कर है।

३१ मैनफल—वमन, आस्थापन और अनुवासनके उपयोगी पदार्थों में सबसे उत्तम है।

३२ निशोथकी जड़—सुखसे दस्त करानेवालोंमें सर्वोत्तम है।

३३ अरण्ड—नर्म जुलाबों में सबसे उत्तम है।*

---

* "अरण्डीका" तेल त्रिफलेके काढ़े या दूधमें लेना सर्वोत्तम जुलाब है। बालक, वृद्ध, क्षत-क्षीण और नाजुकसे नाजुकके लिये यह जुलाब सुखदायी है। इस तेल की मात्रा जवानके लिये चार तोले तक है। त्रिफलेके काढ़े में लिया जाय, तो काढ़ा दूना लेना चाहिये।

८) तोले त्रिफले को जौकुट करके, रात के समय मिट्टी की हाँडीमें भिगो दो। सवेरे काढ़ा कर लो, उसी में "अरण्डी का तेल" मिला कर पी जाओ।

३४ थूहर—ज़ोर से दस्त करानेवालोंमें सबसे उत्तम है।*

३५ औंगेके बीज—शिरोविरेचन करनेवालोंमें सबसे उत्तम है।

३६ वायविडङ्ग—कृमि या कीड़े नाशकों में सबसे अच्छी है।

३७ सिरसके बीज—विषनाशक पदार्थों में सर्वोत्तम हैं।

३८ खैर—कोढ़ नाश करनेवाले पदार्थों में राजा है।

३९ रास्ना—वात नाशक पदार्थों में सबसे बढ़कर है।

४० आमला—अवस्था-स्थापकोंमें सर्वश्रेष्ठ है।

४१ हरड़—सब तरहके अच्छे पथ्योंमें श्रेष्ठ है।

४२ अरण्डीकी जड़—बलवर्द्धक और वातनाशकोंमें सर्वोत्तम है।

४३ पीपरामूल—आनाह नाशकोंमें सर्वोत्तम है।

४४ चीतेकी छाल—गुदाका दर्द, गुदाकी सूजन नाश करनेवालों और भूख बढ़ानेवालोंमें सर्वोत्तम है।

४५ नागरमोथा—दीपन, पाचन और संग्राहकोंमें प्रधान है।

४६ कूट और पुहकरमूल—श्वास, खाँसी, हिचकी और पसली का दर्द नाशकों में परमोत्तम है।

४७ अनन्तमूल—अग्निज्वाला-निवारक, दीपन, पाचन तथा अतिसार-नाशकोंमें सबसे उत्तम है।

४८ गिलोय—दस्त बाँधनेवालों, वादी नाश करनेवालों, अग्नि-दीपन करनेवालों, कफ नाश करनेवालों, और कफरक्तका विबन्ध नाश करनेवालोंमें सर्वोत्तम है।

४९ कच्चा बेलफल—मलको गाढ़ा करनेवालों, अग्निदीपन करने वालों और वात-कफ-नाशक द्रव्योंमें सबसे उत्तम है।

---

* थूहर का दूध तीव्र जुलाबोंमें सबसे उत्कृष्ट है; परन्तु अनजान का दिया हुआ थोड़ी सी भी भूलसे विषके समान हो जाता है; जानकार वैद्यके द्वारा दिया हुआ दोषोंके भारी सञ्चयको भी नाश करता और भयानकसे भयानक रोगोंको शान्ति करता है; इसलिये इस जुलाब को ऐसे-वैसे अनजानके कहनेसे न लेना चाहिये। सुश्रुत में लिखा है:—

विरेचनानां तीक्ष्णानां पयः सौधं परंमतम्।
दुष्प्रयुक्तं भवति विषवत् कर्मविभ्रमात्॥

५० अतीस—दीपन, पाचन, संग्राहक और सब दोष करनेवालों में सर्वोत्तम है।

५१ कमलगट्टा, कमल और केसर एवं कमोदिनी—संग्राहक और रक्तपित्त-नाशकोंमें सर्वोत्तम हैं।

५२ जवासा—पित्त-कफ-नाशकोंमें सर्वोत्तम है।

५३ गन्धप्रियंगु—रक्त पित्तके अतियोग नाशकोंमें सर्वोत्तम है।

५४ कुड़ाकी छाल—कफ पित्त रक्त संग्राहकों और उपशोषक द्रव्योंमें सबसे अच्छा है।

५५ गम्भारीफल—संग्राहक और रक्तपित्त-नाशकोंमें परमोत्तम है।

५६ पिठवन—संग्राहक है और वातहर द्रव्योंमें सर्वोत्तम है।

५७ विदारीकन्द—हृष्य है और सब दोष-नाशकोंमें परमोत्तम है।

५८ बला (खिरेंटी)—संग्राहक, बलवर्द्धक और वातनाशक द्रव्योंमें सर्वोत्तम है।

५९ गोखरू—मूत्रकृच्छ्र और वायुनाशक द्रव्योंमें सर्वोत्तम है।

६० हींग—छेदन, दीपन, अनुलोमन और वात-कफ-नाशकों में सर्वोत्तम है।

६१ अम्लवेत—भेदन, दीपन, अनुलोमन, और वात-कफ-हरणकर्त्ताओंमें सर्वोत्तम है।

६२ जवाखार—स्रंसन, पाचन और बवासीर-नाशक द्रव्योंमें सर्वोत्तम है।

६३ माठा—ग्रहणीके दोष नाश करनेवालों, बवासीर नाश करनेवालों, और अधिक घी खानेके विकारोंके नाश करनेवालोंमें माठा या छाछ प्रधान है।*

---

* भोजन के बाद भुना हुआ जीरा और सेंधा नोन मिला हुआ "गाय का माठा" पीने से खूब भूख लगती है। एक कोरी हाँडीमें चीतेकी जड़ की छाल को जलमें पीसकर लेप कर दो; पीछे सुखा लो। इस हाँडीमें गायका दूध जमाकर दही को बिलो कर माठा बनाया करो और रोज पिया करो; बेहद्द लाभ होगा। बवासीर के लिये अक्सीर है।

६४ मांसखोर जानवरोंका मांस—ग्रहणी-दोष, शोष, और ववासीरमें खाना उत्तम है।

६५ दूध घी का अभ्यास—बुढ़ापा नाश करनेवाले उपायों में श्रेष्ठ है।

६६ सत्तू और घी का सम-परिमाणसे रोज़ खाना—वृष्य और उदावर्त्त नाशक द्रव्योंमें परमोत्तम है।

६७ तेलके कुल्ले—दाँतोंके मज़बूत करनेवाले और रुचि करनेवाले उपायों में सर्वश्रेष्ठ है।

६८ चन्दन और गूलर—दाह नाशक लेपोंमें सर्वोत्तम है।

६९ रास्ना और अगर—शीतनाशक लेपोंमें उत्तम हैं।

७० खस—दाह नाश करनेवाले और चमड़ेके दोष दूर करनेवाले लेपोंमें उत्तम है।

७१ कूट—वातनाशक अभ्यङ्गों और लेपके योग्य द्रव्योंमें परमोत्तम है।

७२ मुलहटी—चक्षुष्य, वृष्य, केशहितकर, कण्ठहितकर, वर्णहितकर; यानी आँख, वीर्य, बाल, गला और शरीर के रङ्गको फायदा पहुँचानेवाले और घाव भरनेवाले पदार्थों में सर्वोत्तम है।

७३ हवा—बल और चैतन्यता करनेवालोंमें सर्वोत्तम है।

७४ अग्नि—आम, स्तंभ, शीत, शूल, और कम्पनाशक द्रव्यों में परमोत्तम है।

७५ जल—स्तंभनीय द्रव्योंमें सर्वोत्तम है।

७६ बुझाया हुआ जल—वह जल जिसमें जली हुई मिट्टी का डेला बुझाया गया हो, सर्वोत्तम जल है।

७७ अत्यन्त भोजन—आम-दोष कारकोंमें सबसे तेज़ है।

७८ यथाग्नि भोजन—अग्निदीपक आहारोंमें सर्वोत्तम है।

७९ अभ्यासानुरूप कार्य—सेवनियोंमें सबसे उत्तम है।

८० समय का भोजन—आरोग्यकर्त्ताओंमें परम उत्तम है।
८१ मल मूत्रादि वेगोंका रोकना—व्याधि करनेवालोंमें सबसे बढ़कर है।
८२ मद्य यानी शराब—प्रफुल्ल करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ है।
८३ मद्य-विकार—धृति,स्मृति और बुद्धि नाशकोंमें सर्वोपरि है।
८४ भारी पदार्थ—बड़ी कठिनतासे पचनेवालोंमें सर्वोपरि है।
८५ एक समय का भोजन—उत्तम प्रकारसे पचनेवालोंमें सर्वोपरि है।
८६ स्त्री-सङ्ग—राजयक्ष्मा करनेवालोंमें सर्वोपरि है।
८७ शुक्रवेगको रोकना—नपुंसकता करनेवालोंमें सर्वोपरि है।
८८ बासी अन्न—अन्नमें अरुचि करनेवालोंमें सर्वोपरि है।
८९ उपवास—आयु कम करनेवालोंमें सर्वोपरि है।
९० भूख जाती रहे तब खाना—दुर्बलता करने में सर्वोपरि है।
९१ अजीर्ण में खाना—ग्रहणी-दोषकारकोंमें सर्वोपरि है।
९२ विषम भोजन—अग्नि विषम करनेवालोंमें सर्वोपरि है।*
९३ दूध मांस आदि विरुद्ध पदार्थों को एक समय खाना—कोढ़ आदि निन्दित व्याधि करनेवालोंमें सर्वोपरि है।
९४ शान्ति—हितकारियोंमें सर्वश्रेष्ठ है।
९५ शक्तिसे अधिक परिश्रम—सब तरह के अपथ्योंमें राजा है।
९६ आहार विहारादिका मिथ्या योग—व्याधि-कारकोंमें सबसे बढ़कर है।
९७ रजस्वलागमन—अलक्ष्मी-कारकों में सर्वोपरि है।
९८ ब्रह्मचर्य—आयुवर्द्धकों में सर्वश्रेष्ठ है।
९९ सङ्कल्प-साधन—तृष्णादिकों में सर्वोपरि है।
१०० मनकी असद्वृत्ति—अहृद्योंमें सर्वोपरि है।
१०१ बलसे अधिक काम करना—प्राणनाशकोंमें सर्वोपरि है।

* भोजन के असमय पर खाने, अधिक खाने या कम खाने को "विषम भोजन" कहते हैं।

१०२ विषाद—रोग बढ़ानेवालोंमें सर्वोपरि है।

१०३ स्नान—परिश्रम हरण करनेवालोंमें सर्वोपरि है।

१०४ हर्ष—प्रीति करनेवालोंमें सर्वोपरि है।

१०५ बहुत साग खाना—शरीर सुखानेवालोंमें सर्वोपरि है।

१०६ सन्तोष से रहना—पुष्टि करनेवालोंमें सर्वोपरि है।

१०७ पुष्टि—निद्राकारकों में परमोत्तम है।

१०८ निद्रा—तन्द्रा करनेवालोंमें परमोत्तम है।

१०९ सर्व रसाभ्यास—बल करनेवालों में सर्वोत्तम है।

११० एक रस खाना—दुर्बल करनेवालोंमें सर्वोपरि है।

१११ गर्भशल्य—अनाकर्षणीयोंमें सर्वोपरि है।

११२ अजीर्ण—क्षय कराने योग्योंमें सर्वोपरि है।

११३ बालक—मृदु औषधि द्वारा चिकित्सा करने योग्यों में प्रधान है।

११४ बूढ़े का रोग—याप्य रोगोंमें सबसे बढ़कर है।

११५ गर्भवती स्त्री—तेज़ औषधि, कसरत, मिहनत और पुरुष-संसर्ग से बचनेवालोंमें सर्वोपरि है।

११६ मनकी प्रसन्नता—गर्भ धारकोंमें सबसे उत्तम है।

११७ सन्निपात—दुश्चिकित्स्योंमें सबसे बढ़कर है।

११८ आम चिकित्सा—विरुद्ध चिकित्सामें सबसे बढ़कर है।*

११९ ज्वर—रोगोंमें सबसे अधिक बली है।

१२० कोढ़—बहुत समय तक रहनेवाले रोगोंमें राजा है।

१२१ राजयक्ष्मा—सब रोगोंमें असाध्य है।

१२२ प्रमेह—न छोड़नेवाले रोगोंमें सबसे बढ़कर है।

१२३ जोंख—उपशस्त्रोंमें सबसे अच्छी है।

---

*आमदोष—जब लाल आदि लक्षणों से युक्त होता है, तब उसे "विष" कहते हैं। जब आम-दोष विष के समान हो, तब उसकी शीत चिकित्सा करनी चाहिये, किन्तु इस मौके पर गरम इलाज लाभदायक होता है; इसीसे आमकी चिकित्सा का विरोध है।

१२४ बस्ती—पञ्चकर्मोंमें सर्वश्रेष्ठ है।
१२५ हिमालय—औषधि-भूमिमें सर्वश्रेष्ठ है।
१२६ मरुभूमि—आरोग्य देशोंमे सबसे उत्तम है।
१२७ सोमलता—औषधियोंसे सर्वोत्तम है।
१२८ अनूपदेश—अहितकर्ता देशोंमे सबसे बढ़कर है।
१२९ वैद्यकी आज्ञापालन करना—रोगीके गुणोंमे सर्वोत्तम है।
१३० चिकित्सक—चिकित्साके चतुष्पादोंसे प्रधान है।
१३१ नास्तिक—वर्जनीयोंमे सबसे अधिक वर्जनीय है।
१३२ लोभ—क्लेशकारकों मे सबसे बढ़कर है।
१३३ रोगीकी असाध्यता—मृत्यु-लक्षणोंमें प्रधान लक्षण है।
१३४ अस्थिरता—डरपोक मनके लक्षणों में प्रधान है।
१३५ देशकाल आदिके विचार-पूर्व्वक औषधि देना—वैद्य के गुणोंमें प्रधान गुण है।
१३६ वैद्यसमूह—निःसंशय-कारकोंमें प्रधान है।
१३७ शास्त्रज्ञान—औषधोंमें प्रधान है।
१३८ शास्त्रानुमोदित युक्ति—ज्ञानोपादेयों मे प्रधान है।
१३९ उत्तम ज्ञान—कालज्ञान-योजनाओंमें उत्तम है।
१४० अनुत्याग—व्यवसाय नाशक और काल-नाशक हेतुओं मे सर्वोत्तम है।
१४१ चिकित्सक की बहुदर्शिता—निःसन्देह करनेवाले उपायों मे प्रधान है।
१४२ असमर्थता—भय पैदा करनेवालोंमे सर्वोपरि है।
१४३ अपने सहपाठीसे शास्त्रार्थ करना—बुद्धिवर्द्धक उपायों मे प्रधान है।
१४४ आचार्य्य—शास्त्राधिकार हेतुओंमे प्रधान है।
१४५ आयुर्वेद—अमृतोंमे प्रधान है।
१४६ सद्वचन—अनुष्ठान करने योग्योंमे प्रधान है।

१४७ बिना विचारे बोल उठना—सब तरहके अहित करनेवालों मे प्रधान है।

१४८ सर्वत्याग—सुख करनेवालोंमे सर्वोत्तम है।

१४९ दूध—जीवनीयोंमे प्रधान है।

१५० मांस—बृंहणियों या ताक़त लानेवालों में प्रधान है।

१५१ गवेधुकधान्य—कृशताकारकोंमे प्रधान है।

१५२ उद्दालक अन्न—रूक्षता करनेवालों यानी रूखापन करनेवालोंमें प्रधान है।

उपरोक्त १५२ उत्तम बातें चरकके सूत्र-स्थानमे कही हैं। इन में की प्रत्येक बात वैद्यक करनेवालों और वैद्यक न करनेवालों दोनों के लिये परम लाभप्रद है। चरकमे लिखा है :—

एतन्निशम्य निपुणश्चिकित्सां सम्प्रयोजयेत्।
एवं कुर्वन् सदा वैद्यो धर्मकामौसमुश्नते ॥

निपुण वैद्य इन सभी विषयोंको, यानी इन १५२ बातों को, याद करके चिकित्सा करे। यदि वैद्य इस प्रकार करे, तो धर्म और काम की प्राप्ति करे।

औषधि-सम्बन्धी नियम ।

१ जो औषधि उत्तम देशमें पैदा हुई हो, श्रेष्ठ दिनमें उखाड़ी गई हो, थोड़ीसी देनेसे भी बहुत गुण करनेवाली हो, ज़ियादा देनेसे नुक़सान न करती हो, ऐसी औषधि विचार-पूर्व्वक समय पर दी जाय, तो गुण करती है ।

२ विन्ध्याचल के आसपास पैदा होनेवाली दवाएँ तासीरमें गर्म और हिमालय में होनेवाली शीतल-स्वभाव होती हैं ; यानी उनमें गरमी का अंश अधिक होता है और इनमें शीतलता अधिक होती है । अपने रहनेके स्थान से उत्तर दिशाकी दवाएँ लेनी चाहिएँ । हिमालय हमलोगोंसे उत्तरमें है, इसलिये जहाँतक हो, हिमालयकी दवाएँ संग्रह करनी चाहिएँ ।

३ जो औषधि सर्प की बाँबी, घूरे या मैले स्थानः श्मशान, अनूप-देश; ऊसर धरती, रास्ते में पैदा हुई हो अथवा जिसमें कीड़े लग रहे हों अथवा जो गरमी या सर्दी से व्याप्त हो—ऐसी औषधि न लेनी चाहिए, क्योंकि वैसी औषधिसे कोई लाभ नहीं होता ।

४ शरद् ऋतुमें औषधियों में रस होता है, इसलिये सब कामोंके
- ९० -ो ऋतुमें औषधियाँ लेनी चाहिएँ; परन्तु वमन विरेचन की
१४५ आयुर्वेद-तुके मध्यमें लेनी चाहिएँ ।
१४६ सहचन—ो जड़ें बहुत मोटी हों, उनकी छाल मात्र लेनी

चाहिएँ; जिनकी जड़ें छोटी और पतली हों उनका सर्व्वाङ्ग लेना चाहिये। जैसे बड़, नीम आदि की छाल; विजयासार आदिका सार; तालीसपत्र आदि के पत्ते; त्रिफला आदिके फल लेने चाहिएँ।

६ किसी की जड़, किसीका कन्द, किसीके पत्ते, किसीके फल, किसीके फूल, किसीका सर्वाङ्ग (सारे भाग), किसीका सार, किसी की छाल लीजाती है। याद रक्खो; चीते की जड़, ज़मींकन्द या सूरन का कन्द, नीम और अड़ूसेके पत्ते, त्रिफलेके फल, धाय के फूल, कटेरी का सर्व्वाङ्ग (जड़, छाल, पत्ते सब) खैर का सारांश और दूधवाले वृक्षों की छाल ली जाती है। किसी समय अगर नीमके पत्ते नहीं मिलते, तो उसकी छाल ही लेली जाती है, बेल का कच्चा फल और अमलतास का पक्का फल लिया जाता है।

७ शास्त्र में कोई योग या नुसखा आप ऐसा लिखा देखें, जिसमें किसी औषधिका अङ्ग स्पष्ट न लिखा हो; यानी अमुक औषधि की छाल, पत्ते, फल, फूल, सार प्रभृति क्या लिया जाय। जहाँ औषधि का अङ्ग न लिखा हो, वहाँ आप उसकी जड़ लीजिये; जहाँ औषधि का वज़न न लिखा हो कि अमुक औषधि तोलमें इतनी लेनी चाहिये, वहाँ आप सब औषधियों को बराबर-बराबर ले लो। जहाँ पात्र या बर्तन न लिखा हो, वहाँ आप मिट्टी का बर्तन लीजिए; जहाँ यह न लिखा हो कि औषधि किस समय लीजाय, वहाँ आप प्रातः-काल यानी सवेरा समझिये। जहाँ द्रव्य न लिखा हो, वहाँ जल लीजिये।

८ सभी कामोंमें नये पदार्थ लेने चाहिएँ; किन्तु वायविड़ङ्ग, पीपल, गुड़* चाँवल, घी, शहद, पान और काँजी—ये सब पुराने ही

---

*सुश्रुत में पुराने गुड़ के सम्बन्ध में लिखा है :—

पित्तघ्नो मधुरः शुद्धो वातघ्नोऽसृक्प्रसादनः।
स पुराणोऽधिक गुणो गुडः पथ्यतमः स्मृतः॥

गुड़ ज्यों-ज्यों पुराना होता है अधिक गुण वाला और अति पथ्य होता जाता है। पुराना गुड़ रक्तको प्रसन्न करनेवाला, वायुनाशक, पित्त शान्त कर्त्ता, मधुर और शुद्ध होता है।

अधिक गुणकारी होते हैं। इनको एक साल बाद पुराना समझना चाहिये।

८ सभी नुसख़ोंमें सूखे और नये पदार्थ लेना अच्छा है। अगर कोई चीज़ अभाव-वश गीली लेनी पड़े, तो जितनी लेनी हो उससे दूनी लेनी चाहिए। मगर कुछ दवाएँ ऐसी भी हैं जो सदा गीली ही लीजाती हैं, मगर दूनी नहीं लीजातीं; क्योंकि उनके गीली ही लेने की आज्ञा है। जिनके सूखी लेनेकी आज्ञा है, वही अगर गीली लीजायँ तो दूनी ली जाती हैं।

गिलोय, कूड़ा (कुरैया), अड़ूसा, पेठा, शतावर, असगन्ध, पियाबाँसा, सौंफ और प्रसारिणी—ये नौ दवाएँ हमेशा गीलीही ली जाती हैं।

अड़ूसा, नीम, परवल, केतकी (केवड़ा), खिरैंठी, पेठा, शतावर, सोंठ, कुड़ा, कन्द, गन्धप्रसारिणी, गिलोय, इन्द्रवारुणी, नागबला, कटसरैया, गूगुल, सौंफ, इन्हें गीली ले सकते हो; पर दूनी लेनेकी ज़रूरत नहीं।

१० घी, तेल, जल, क्वाथ, काढ़ा या जुशाँदा, व्यञ्जन आदि आग पर तैयार करके शीतल होजाने पर, यदि फिर आग पर गर्म किये जायँ तो विषके समान हो जाते हैं, इसलिए इन्हें आग पर रखकर फिर दूबारा आग पर न रक्खो।

११ अगर पुराने घी की ज़रूरत हो, तो आग पर पके हुए पुराने घी को मत लो; बिना पका पुराना घी उत्तम होता है; पका हुआ पुराना घी हीनवीर्य यानी निकम्मा होता है। हाँ, तेल कच्चा हो या पका पुराना अच्छा होता है।

१२ अगर किसी नुसखे में कोई दवा दो बार लिखी हो, या दो नामोंसे एकही दवा दो जगह लिखी हो, वहाँ लेखक की भूल न समझिये; आप उसे दूनी लीजिए।

१३ जहाँ लवण लिखा हो, मगर यह न लिखा हो कि सेंधा,

वाला या कौनसा नमक, वहाँ आप सैंधा नमक लीजिए। जहाँ ख़ाली चन्दन लिखा हो, वहाँ लाल-चन्दन लीजिए।

चन्दन के चूर्ण, अवलेह, आसव और तेल के नुसख़े में यदि चन्दन लिखा हो, कौनसा चन्दन लाल या सफ़ेद न लिखा हो, तो आप इनमें सफ़ेद चन्दन लीजिए। किन्तु काढ़े और लेपमें लाल-चन्दन लीजिए।*

शरीर के भीतरी भाग की शुद्धि के लिये नुसख़े में जहाँ अजमोद लिखा हो, अजवायन लीजिये; बाहरी भाग की शुद्धिके नुसख़ेमें जहाँ अजमोद लिखा हो, अजमोद ही लीजिए।

जहाँ दूध और घी लिखा हो, इनकी तफ़सील न हो, वहाँ गाय का दूध और घी लीजिये।

जहाँ विष्टा और मूत्र आदि का खुलासा न हो, वहाँ गोमूत्र और गोबर लीजिए।

१४ वनसे लाई हुई औषधियाँ एक वर्ष बाद गुणहीन हो जाती हैं। तालीस आदि चूर्ण दो मास बाद कमज़ोर होने लगते हैं, पर एकदम निकम्मे नहीं हो जाते। विजयादि गुटिका, खण्डकादि अवलेह बहुत समय बाद ख़राब होते हैं, परन्तु पुराने होते-होते गुण-रहित हो जाते हैं। कहा है, वर्षाकाल सिर पर होकर निकल जानेसे घृत तेल आदि हीनवीर्य हो जाते हैं। जौ, गेहूँ, चना आदि एक साल बाद गुणहीन होने लगते हैं।

गुड़, आसव (कुमार्यासव आदि), सुवर्ण, चाँदी, रांगा, शीशा आदि धातुओं की भस्म, चन्द्रोदय आदि रस जितने पुराने होते हैं उतनेही अधिक गुणवाले होते हैं ; मतलब यह कि ये जितने पुराने हों उतने ही अच्छे।

---

* कहीं-कहीं इस नियम के विपरीत भी होता है। "एलादि चूर्ण" में लालचन्दन लिया जाता है और किसी-किसी काढ़े और लेपमें सफ़ेद चन्दन भी लिया जाता है। लवंगादिचूर्ण, चन्दनादि चूर्ण, लाक्षादि तैल, कुमार्यासव और च्यवनप्राशावलेह में प्रायः सफ़ेद चन्दन ही लिया जाता है।

१५ यदि आपको किसी रोगके नुसखे में ऐसी औषधि दीखे, जो रोगी के रोग को बढ़ावे तो आप उसे नुसखे में से निकाल सकते हैं; यदि आपको किसी नुसखे में कोई हितकारी औषधि मिलानी हो तो आप मिला सकते हैं। इसमें कोई हर्ज नहीं, मगर यह काम आप तभी कीजिए, जबकि आप औषधितत्त्वज्ञ हों।

१६ यदि आपको नुसखे में लिखी कोई दवा न मिले, तो आप उसका बदल या प्रतिनिधि ले लीजिए, मगर प्रधान औषधिका "प्रतिनिधि" न लीजिए। नुसखे की अन्य औषधियोंके न मिलने पर प्रतिनिधि ले सकते हैं। जैसे, काकोली न मिले, असगन्ध ले लीजिए। चन्दनादि चूर्ण में सफेद चन्दन मुख्य दवा है, उसके बदलेमें कपूर से काम न चलाइये। हमने अनेक आयुर्वेदीय और ज़ियादा काम में आनेवाली कुछ यूनानी दवाओंके प्रतिनिधि साफ़ तौर पर इसी पुस्तकमें आगे लिखे हैं, ज़रूरत होने से आप वहाँ प्रतिनिधि खोज लिया करें।

जो दवा आप नुसखे के लिए लें, उसे देख लिया करें कि वह ठीक है या नहीं; क्योंकि आजकल नक़ली या जाली चीज़ें बहुत चल गई हैं। हमने काममें आनेवाली और जिनमें जाल की सम्भावना होती है, ऐसी चन्द औषधियोंके परीक्षा करने या पहचानने की विधि इसी पुस्तक में आगे लिखी है। ज़रूरत होने से, जबतक कण्ठस्थ न हो जायें, देखकर दवा की जाँच कर लिया करें। अगर दवा निकम्मी होगी, तो रोगीको लाभ न होगा, आपकी बदनामी होगी और आपकी रोज़ी न चमकेगी।

औषधियाँ और उनके प्रतिनिधि

अगर कोई द्रव्य न मिले, तो उसके बदलेमें उसका बदल या प्रतिनिधि ले लो। इससे ठीक काम चल जायगा। हिकमतमें एक दवा के बदलेमें दूसरीके लेनेको "बदल" कहते हैं और संस्कृतमें "प्रतिनिधि" कहते हैं। प्रतिनिधि लेनेके लिये शास्त्रकी आज्ञा है। चीता न मिले, दन्ती ले लीजिए; दन्ती न मिले, चीता ले लीजिये। मगर इस बातका ध्यान रहे कि, नुसख़ेकी मुख्य दवाके बदलेमें प्रतिनिधि या बदल न लिया जाय।

असल द्रव्य।	प्रतिनिधि।	असल द्रव्य।	प्रतिनिधि।
चीता	दन्ती या चिरचिरे का खार	आक का दूध	आकके पत्तोंका रस
धमासा	जवासा	पोहकरमूल	कूट
तगर	कूट	कलिहारी	कूट
मूर्वा	जिंगिनी की छाल	थुनेर	कूट
अहिंस्रा	मानकन्द	चव	पीपलामूल
लक्ष्मणा	मोरशिखा	बावची	पंवारके बीज
मौलसरी	लाल या नील कमल	दारुहल्दी	हल्दी
		रसौत	दारुहल्दी
नील कमल	कमोदिनी	सोरठकी मिट्टी	फिटकरी, सेलखड़ी या खड़िया
चमेलीके फूल	लौंग		

असल द्रव्य ।	प्रतिनिधि ।	असल द्रव्य ।	प्रतिनिधि ।
तालीसपत्र	स्वर्णतालीस	भिलावा	चीता
भारंगी	कटेरीकी जड़	ईख	नरसल
काला नोन	पांशु नोन, संचर नोन	सुवर्ण	सोनामक्खी
		चांदी	रूपामक्खी
मुलहटी	धायके फूल	सोनामक्खी	पीली मिट्टी
अम्लवेत	चूका	रूपामक्खी	पीली मिट्टी
नीबू	चूका	सुवर्ण-भस्म	कान्तलोहभस्म
दाख	कुंभेरका फल	चांदी भस्म	,,
कूंभेरका फल	बंधुकाका फूल	कान्त लोह	तीक्ष्णलोह
नख	लौंगका फूल	मोती	मोती की सीप
कस्तूरी	कंकोल	शहद	पुराना गुड़
कंकोल	चमेली के फूल	मिश्री	सफ़ेद खाँड़
कपूर	सुगन्धमोथा, गठौना, गठिवन	बूरा	खांड़
		आकाश-बेल	निशोथ, पित्त-पापड़ा, लाजवर्द
केशर	कुसूमके नये फूल		
सफेद चन्दन	कपूर, लालचन्दन	वज्र (हीरा)	मूँगा
कपूर	लाल चन्दन	अखरोट	चिरौंजी, चिलगोज़ा
लाल चन्दन	नवीन खस	अगर	दालचीनी, लौंग या केशर
अतीस	मोथा		
हरड़	आमला	अंगूर (दाख)	मुनक्केके बीज
नागकेशर	कमलकी केसर	अञ्जीर	मुनक्का, चिलगोज़ा
मेदा, महामेदा;	शतावरी	अजमोद	खुरासानी अजवायन
जीवक	विदारीकन्द		
काकोली	असगन्ध	अजवायन	कलौंजी, काला-ज़ीरा
ऋद्धि	वाराहीकन्द		

असल द्रव्य	प्रतिनिधि
अदरख	कालीमिर्च
अनन्नास	सेब
मीठा अनार	खट्टा अनार
ईसवगोल	छिन्नीदाना
अफीम	खुरासानी अजवायन
अरहर	मसूर
असगन्ध	कूट
आमाहलदी	वावची
मत्स्यनामी	कूट
कटेरी	कूट
दूध	मूँग या मसूरका जूस
घी	ताजा दूध
चाँदी	फीरोजा
चिरायता	चन्दन,केशर
चोपचीनी	उशवा
माठा	दही
जमालगोटा	रेंडी
तज	दालचीनी
तालमखाना	सालम मिश्री
तिल	अलसीके बीज
दही	दही का पानी
बकरी का दूध	गाय का दूध
ऊँटनी का दूध	,, ,,

असल द्रव्य	प्रतिनिधि
भैंस का दूध	गाय का दूध
भेड़ का दूध	स्त्री का दूध
स्त्री का दूध	गधी का दूध
गाय का दूध	बकरी का दूध
घोड़ी का दूध	ऊँटनी का दूध
नकछिकनी	मैनफल, कालीमिर्च
नख	चिरायता
खोपरा	चिलगोज़ा, पिस्ता, बादाम
नीलाथोथा	सुहागा
पन्ना	मूँगा
प्याज़ के बीज	शलग़मके बीज
पालकके बीज	खुलफेके बीज
पित्तपापड़ा	सनाय,
पिस्ता	बादाम
पीपरामूल	मीठा बालछड़
पोस्त	अफ़ीम
फ़ीरोज़ा	पन्ना
बथुआ	पालक
बनफ़शा	नीलोफर
बिजौरा	नीबू या नारंगीका स्वरस
मूली	शलग़म
स्याह मूसली	सफेद मूसली

असल द्रव्य	प्रतिनिधि
सहँदो	मुण्डी
रोग़न बादाम	पोस्तका तेल
रेंडी का तेल	जैतून का तेल
लोबान	मस्तगी
सरफोंका	मुण्डी
सेमरका मूसरा	शतावर
जुही	चमेली
मोर	ख़रगोश, हंस, चूहा
कंकोल	जायफल
भिलावा	लालचन्दन
दुपहरिया	नागकेशर
पुहकरमूल	कूट
तम्बरका तेल	भिलावे
अनार	विषांबिल, तिन्तिड़ीक
आँवला	काबुली हरड़
आलू	अरवी
आलूबुख़ारा	इमली
इन्द्रजी	तोदरी, जायफल बहमन-सुर्ख़
इन्द्रायन का फल;	नीलका बीज
छोटी इलायची;	कबाबचीनी, बड़ी इलायची, लौंग
बड़ी इलायची;	छोटी इलायची
हिंगुलू	मुरदासंग
उटंगनके बीज;	गन्दनाके बीज
उन्नाव	लिहसोड़े, मुनक्का
उशबा	चोपचीनी
मुलहटीकासत्त;	सोसन
एलुआ	विरेचनमें निशोथ, शोथ में रसौत
ककड़ीके बीज;	खीरेके बीज
कचूर	अंजीर, अदरख
कतीरा	बबूलका गोंद
सफ़ेद कत्था	गेरू
लौकी,घिया	पालक, कुलफा
कपूर	सफ़ेद-चन्दन, बंसलोचन
कमीला	बायविड़ङ्ग
कलौंजी	अनीसूँ
कौंचके बीज	उटंगनके बीज
कसेरू	कमलगट्टा
कालीज़ीरी	ज़ीरा, अनीसूँ, सौंफ
कालादाना	इन्द्रायनकी जड़
काहूके बीज	पोस्तके बीज
कुलींजन	दालचीनी, शीतलचीनी

असल द्रव्य	प्रतिनिधि
केला	मिश्री, गुड़
केसर	जावित्री, तज
कमलगट्टा	आँवले के बीज
गिलोय	सत्त-गिलोय
गुलाबका अर्क;	सौंफका अर्क
गुलाबके फूल;	बनफशा
कुलथी	अलसी
गोखरू	खीरा-ककड़ीकेबीज

औषधि-परीक्षा।
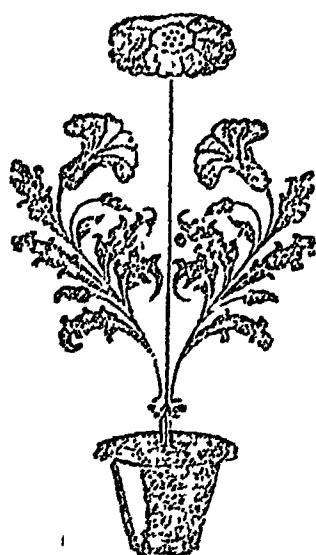
आ जङ्गल वाली औषधियाँ बहुत होती हैं, इसलिए परीक्षा करके औषधियाँ लेनी चाहियें। नीचे, हम चन्द औषधियोंके पहचाननेकी विधि और उनके उत्तम होने की पहचान लिखते हैं।

हरड़—छोटी गुठली और अधिक गूदे वाली अच्छी होती है। नई, चिकनी, भारी, गोल, जलमें डूब जानेवाली हरड़ उत्तम होती है। इन गुणोंके सिवा, यदि हरड़ तोलमें दो तोले की हो तो वह सर्व्वश्रेष्ठ है।

भिलावा—जो पानीमें डालनेसे डूब जाय, वह उत्तम होता है।

वाराहकान्द—जो सूअर के माथे के समान हो, वह उत्तम है।

संचर नोन—जो काँच के समान हो, वह उत्तम है।

सोनामक्खी—सोनेके समान कान्तिवाली अच्छी होती है।

मैनसिल—इन्द्रपुष्पके समान उत्तम होता है।

शिलाजीत—ज़मीन पर गिरनेसे फैले नहीं, जलभरे काँसीके बर्तनमें डालनेसे सूतके समान बढ़े, वही अच्छा होता है।

कपूर—कसैला और चिकना अच्छा होता है।

इलायची—जिसके दाने सूक्ष्म हों, वह अच्छी होती है।

सफेद चन्दन—भारी और खुशबूदार अच्छा होता है।

लालचन्दन—अधिक लाल हो, वह अच्छा होता है।

अगर—कव्वे की चोंच के समान चिकनी और भारी अच्छी होती है।

देवदारू—खुशबूदार, हलकी और रूखी अच्छी होती है।

सरल—बहुत चिकनी और सुगन्धित अच्छी होती है।

दारुहल्दी—अत्यन्त पीली अच्छी होती है।

जायफल—भारी, चिकना, गोल और भीतर से सफ़ेद हो वह अच्छा होता है।

दाख—गायके स्तनोंके जैसा अच्छा, किन्तु करौंदे के जैसा मध्यम होता।

खाँड़—निर्मल और चन्द्रकान्तिमणि के सदृश सफ़ेद अच्छी होती है।

मधु—वही उत्तम होता है, जो गायके घी के समान रुचिकारक और सुगन्धित हो। असल शहद को कुत्ता नहीं खाता। असल शहद को बत्ती में लगाकर जलाओ, बत्ती जल उठेगी। असल शहद को काग़ज़ पर रखदो, काग़ज़ नहीं गलेगा। आजकल असल शहद बड़ी कठिनाई से हाथ आता है। लोग विलायती चीनी की चाशनी में छत्ते के दो चार टुकड़े वगैरः डालकर बेचनेको ले आते हैं और लोगों को ठगते हैं। इसीलिये जब शहद ख़रीदना हो, ख़ूब परीक्षा करके देख लेना।

कस्तूरी—कस्तूरी मृग या हिरन की नाभि की अच्छी होती है। आजकल बदमाश लोग ख़ाली हिरन के नाफ़े या चमड़े की थैलीमें, जो नाफ़े के समान ही होती है, कोयले या कोई दूसरी चीज़ भरकर या उसके मुखपर, जहाँ से खोलते हैं, ज़रासी असल कस्तूरी रख देते हैं। असल कस्तूरीके मारे नाफा महकने लगता है। भोलेभाले लोग ठगा जाते हैं। वैसा नाफा १) का भी नहीं होता, पर ठग उसके दस-दस, बीस-बीस और पचास-पचास तक लेजाते हैं।

अगर आप नाफा मोल लें तो पहले परीक्षा करलें—लहसन के एक टुकड़े या दो तीन टुकड़ों को पत्थर पर जलके साथ महीन पीस लें। पीछे सूई में डोरा (धागा) पिरो कर, उस डोरे को उस

लहसनके रसमें तर कर लें । पीछे नाफेमें सूई घुसेड़कर उस डोरे को पार करलें । अगर उसके अन्दर कस्तूरी असल होगी, तो डोरेमें जो लहसनकी दुर्गन्ध होगी वह नाश हो जायगी और असल कस्तूरीकी सुगन्ध से डोरा महकने लगेगा । अगर कस्तूरी असल न होगी, कोरा जाल होगा, तो डोरेमें से लहसनकी बदबू हरगिज़ न जायगी । यह नाफे की सर्वोत्तम परीक्षा है ।

अगर बिना नाफेकी खुली कस्तूरी लेनी हो, तो उसमें से दो चार दाने लेकर एक जलते हुए लाल कोयले पर डालदो; अगर कस्तूरी उत्तम होगी, तो आदिसे अन्ततक, जबतक दाने जल न जायँगे, खुशबूदार धूआँ निकलेगा । अगर कोयलेके चूरे पर या और किसी चीज़ पर कस्तूरी चढ़ाई हुई होगी, तो पहले तो ज़रा कस्तूरी की सुगन्ध आवेगी ; किन्तु शेषमें जो चीज़ उसके अन्दर होगी, उसकी गन्ध आवेगी, कस्तूरी होनेसे धूआँ अन्ततक निकलेगा, कस्तूरी न होनेसे धूआँ न उठेगा । कोयले का चूरा आग पर डालनेसे जैसे बिना धूएँके जलता है, उसी तरह वह भी जल जायगा ।

केसर—आजकल केसर भी नक़ली आती है । असल केसर काश्मीरकी होती है । वहाँ इसके लाखों वृक्ष होते हैं । असल केसरका रङ्ग पीला ज़रा सुर्ख़ीमाइल होता है । यह तोलमें हलकी होती है, इस लिए बहुत चढ़ती है; स्वादमें यह खारी या कुछ कड़वी सी होती है। अगर आप लेना चाहें, तो पहले ज़र्दी मिले लाल रंग और हलकेपन तथा ज़ायके को देखिये ; इसके बाद ज़रासी केसर लेकर जीभ पर रख लीजिए । कोई १५।२० मिनिट तक रखिये ; अगर आपका सिर गरमीसे भन्नाने लगे या कुछ भी गरमी जान पड़े, तो समझलें कि केसर असल है । अगर केसर तोलमें थोड़ी चढ़े, स्वाद और ही तरह का हो, मुँहमें रखने से सिरमें गरमी न मालूम हो; तो नक़ली समझिये । नक़ली कस्तूरी और केसर कौड़ी कामकी नहीं होतीं ।

चन्दनका तेल—यह भी आजकल जाली आता है। आजकल ऐसी चीज़ ही कौनसी है, जिसमें जाल न हो। सभी की नकल तैयार है। चन्दनके तेल को आप एक काग़ज़ पर लगा कर आग दिखाइये। काग़ज़ खूब साफ़-सफ़ेद हो, आग चमकती हुई हो। अगर असल तेल होगा तो काग़ज़ से तेल उड़ जायगा, कोरा काग़ज़ रह जायगा। अगर असली चन्दनका तेल न होगा, तो काग़ज़ आग दिखानेपर भी चिकना बना रहेगा।

चन्द औषधियाँ और उनके मार।

प्रत्येक चीज़ या दवा का क़ायदा है कि, यदि उसमें गुण होते हैं तो अवगुण भी होते हैं। यदि कोई चीज़ पुष्टिकारक होती है; तो वह भारी और क़ब्ज करनेवाली भी होती है। इसी तरह प्रत्येक द्रव्यमें अवगुण भी होते हैं। नीचे हम चन्द द्रव्योंके अवगुण नाश करनेवाले द्रव्य उनके सामने लिखते हैं। इनसे वैद्य और गृहस्थ दोनों का बड़ा काम निकलेगा। मानलो; किसी को गाँझा पीनेसे तकलीफ़ हो; तो आप उसे गायका घी और खटाई खिलावें, लाभ होगा।

नामद्रव्य		मार या दर्पनाशक द्रव्य
हीरा-कसीस	(उपविष)	माठा
हीरा	(घातकविष)	ताज़ा घी, दूध और वमन कराना
हींग	(उपविष)	बनफ़शा, कतीरा, दोनों अनार
हलदिया	(घातक विष)	घी और वमन करना
छोटी हरड़		शहद और घी
हल्दी		नीबू, बिजौरे का स्वरस
सिंघाड़ा		नमक और गरम चीज़
साँपकी काँचली		धनिया और घी
शिलारस	(उपविष)	मस्तगी
शिलाजीत		घी
शतावर		शहद

मंडूर	कतीरा, शहद
रसकपूर	गाय का दूध
मुर्दासंग (मारक विष)	वमन कराना, घी और रोग़नबादाम
सिंघाड़ा	ताज़ा नारियल, सफ़ेद तिल, जौ
भिंडी	गर्म मसाला
बेर	सिंकजबीन, गुलकन्द
बैंगन	घी
बूँट	नमक
बादाम	खाँड,
बाजरा	घी, दूध और खाँड़
बथुआ	गरम मसाला
वत्सनाग (घातकविष)	निर्विसी
पारा	दूध और चिकनी जूम
प्याज़	सिर्का, नमक, शहद
पपीता	खाँड़
नाशपाती	मायुल्असल
खोपरा	खाँड़, मिश्री, खट्टे फल
नारङ्गी	नमक या गुड़
गाय का दूध	शहद या खाँड़
बकरी का दूध	शहद या सौंफ
थूहर (विष)	ताज़ा दूध
दही	नमक, सोंठ, पोदीना, ज़ीरा
शहतूत	शहद
तिल	शहद, आगसे भूनना
तरबूज़	शहद, गुड़
तम्बाकू	ताज़ा दूध
ढेंढस	गरम मसाला

जौ	घी
जायफल	धनिया, शहद, बनफ़शा
जामुन	नमक
जमालगोटा	दूध-चीनी
ज्वार	गुलकन्द
चौलाई का साग	गरम पदार्थ
चूना	घी, बादाम का तेल
चिलगोज़ा	खट्टे फल, सिंकजवीन
चिरौंजी	शहद, सिंकजवीन
चाँवल	घी, बूरा, दूध
चरस	गाय का दूध
चना	पोस्त, सिंकजवीन, गुलकन्द
घुंघची	सूखा धनिया, ताज़ा दूध
चकोतरा	खाँड
घी	नमक और शहद
गुलाब जामुन	सेब
गाँभा	गायका घी, खटाई
खिरनी	गुलकन्द, माठा
खरबूज़ा	शहद, सिकंजवीन
कुचला (घातक विष)	वमन कराना, घी और मिश्री
कालादाना	हरड; बादामके तेलमें भूनना
कसेरू	खाँड और कसेरू का छिलका
करौंदा	नमक और खटाई
कमरकल्ला	घी, नमक
कपूर	केसर, कस्तूरी
कनेर (उपविष)	शहत, घी
इमली	उन्नाव, बनफ़शा

आलू	गरम मसाला
आम	जामुन, सिकंजबीन, शीतल जल
अमरूद	सोंठ का मुरब्बा, सौंफ
अफ़ीम	केसर, दालचीनी
खट्टा अनार	मीठा अनार
अनन्नास	खांड़ और सौंफका मुरब्बा
अंगूर	सौंफ और गुलकन्द
अखरोट	अनार का स्वरस

विरेचन-विषय ।

(जुलाब)

दोषोंके निकालनेमें जुलाब सबसे उत्तम समझा जाता है। वैद्यक, डाक्टरी और हिकमत—सभीमें जुलाब देनेकी चाल है ; पर जुलाब देनेकी रीति तीनों की जुदी-जुदी हैं। वैद्यक में जुलाबकी जैसी उत्तम विधि है, वैसी किसी भी चिकित्सामें नहीं है। हमारे यहाँ एकादमसे जुलाब देने की विधि नहीं है। पहले रोगी को स्नेह पान कराते हैं—कोई चिकनी चीज़ घृत प्रभृति पिलाते हैं, फिर पसीना दिलाते हैं, इसके बाद वमन यानी क़य कराते हैं, इसके बाद जुलाब देते हैं, और जुलाबके बाद बस्ति-कर्म करते हैं यानी पिचकारी द्वारा दोषोंको निकालते हैं। इन्हीं पाँचों को "पञ्च कर्म" कहते हैं। पहले जो वैद्य इन पाँचों कामों को न जानता था, दो कौड़ी का समझा जाता था, राजा से सज़ा पाता था ; किन्तु आजकल बहुत थोड़े वैद्य इनको जानते और इनसे काम लेते हैं। यही कारण है कि, आजकलके मनुष्य जल्दी-जल्दी रोगोंके पञ्जोंमें फँसते और यमराजके पाहुने होते हैं।

आजकलके रोगी भी इतने झंझटों को पसन्द नहीं करते; वे तो चट रोटी पट दाल चाहते हैं। चाहते हैं, कि वैद्यराज दवा भी न दें, कोई मन्त्रही पढ़ दें और हम आरोग्य हो जायँ; इसीसे स्नेह, स्वेद और बस्ति-कर्म उड़ गये, केवल जुलाब रह गया। वह भी ऐसा कि पाँच सात दस्त हो जायँ और झगड़ा पाक हो; पूर्ण लाभ हो चाहे न हो। लोगों की ऐसी रुचि देखकर वैद्यक सीखनेवाले

मामूली वैद्यों ने "पञ्च कर्म" का अभ्यास करना छोड़ दिया; उन्होंने भी उसे व्यर्थ का झंझट समझा।

हकीम लोग इतना झंझट तो नहीं करते; पर वेलोग दोषों को मुलायम करने और पकाकर फुलानेके लिये पहले मुंजिस ज़रूर देते हैं। इस क्रियासे मल पतले होजाते हैं, फूल जाते हैं और आँतोंसे अलग हो जाते हैं। जब ये काम हो जाता है: तब वे लोग जुलाब देकर, आसानी से दोषोंको निकालकर, शरीर को शुद्ध कर लेते हैं। हकीमों की यह चाल इस देशवालों को पसन्द आई। बस, होते-होते वैद्यकके पञ्च कर्मोंमें से चारोंने पेन्शन पाई, खाली जुलाब रास रह गये।

हकीम जुलाबके पहले जो मुञ्जिस देते हैं, वह उत्तम काम है। उससे हमारे स्नेहन और स्वेदन—चिकनाई पिलाकर और पसीने दिलाकर अंग-प्रत्यङ्गों को मुलायम करने और शरीर के सब हिस्सोंसे या किसी ख़ास हिस्से से जहाँ दोष हों, निचोड़ कर एक जगह आमाशय में खींच लानेका पूरा नहीं तोभी बहुत कुछ काम होजाता है; पर अधिकांश वैद्य तो सिवा जुलाब देनेके और कुछ भी नहीं करते। उन्होंने तो बिल्कुल डाक्टरोंकी चाल पकड़ली है। डाक्टर लोग यों तो जुलाब बहुत देते हैं, मगर वे न हमारी तरह स्नेहन और स्वेदन करते हैं और न हकीमों की तरह मुञ्जिस ही देते हैं। जहाँ काम पड़ा, चट कास्टर आइल (रेंडी का तेल) या जैलप बतला देते हैं। हमारी समझमें उनकी इस ऊटपटांग रीतिसे चन्दरोज़ा आराम तो हो ही जाता है, पर रोगी सदा रोगिन बना रहता है; एक रोग मिटता है, दूसरा होता है, और कुछ भी नहीं तो मन्दाग्नि, विषमाग्नि या बदहज़मी की शिकायत तो प्रायः नब्बे फीसदी लोगों को बनी ही रहती है। जब भारतीय वैद्य विधिपूर्व्वक स्नेह, स्वेद और वमन कराकर रोगीके दोषों को जड़से निकाल देते थे, तब ऐसा न होता था; लोग नीरोग, हृष्टपुष्ट और वीर्य्यवान बने रहते थे। उन्हें रात-दिन डाक्टरों की फीस और उनके बिल न चुकाने पड़ते थे। इसलिए आरोग्यता

चाहनेवाले पुरुषों और यश-कामी वैद्यों को अपनी पुरानी चाल पर फिर आजाना चाहिये। देखिये, हमारे यहाँ जुलाब की कैसी अच्छी विधि ऋषि-मुनियोंने बताई है :—

वमन के पश्चात् विरेचन।

चतुर वैद्य मनुष्य को पहले स्नेहपान करावे, यानी "स्नेह विचार" शीर्षक निबन्धमें लिखी रीति से घी पिलावे (इसे हम दूसरे खण्ड में लिखेंगे)। जब घी पिलानेसे मैल फूल जायँ, तब स्नेह-कर्म यानी पसीनों की क्रिया करके सब दोषोंको रोम-मार्गों से निकाले। इसके बाद वमन-विचारमें लिखी विधिसे (इसे भी हम दूसरे भाग में लिखेंगे) वमन यानी क़य करावे। क़य कराने के बाद जुलाब करावे।

वमन के बाद—विरेचन—जुलाब कराने का यह मतलब नहीं है, कि जैसेही रोगी वमन से निपटे, वैसेही, उसी दिन, विरेचन करा दिया जाय। मतलब यह है, कि वैद्य पहले वमन करा ले, तब दस्तों की दवा दे। चरक, सुश्रुत और वाग्भट प्रभृति सभी आचार्यों का यह अभिप्राय है कि वमन कराये छै दिन हो जायँ, तब तीन दिन घी प्रभृति पिलाकर स्नेह-कर्म करे; इसके बाद तीन दिन पसीनों की क्रिया—स्वेद-कर्म करे; इसके बाद तीन दिन तक लघु पथ्य—हलके भोजन खिचड़ी प्रभृति खाने को दे। इस तरह पन्द्रह दिन हो जायँ, तब सोलहवें दिन जुलाब दे।

विरेचनके पहले वमन क्यों ?

अगर वैद्य पहले वमन कराये बिना विरेचन—जुलाब दे दे, तो नीचे के भागमें गया हुआ कफ ग्रहणी—(छठी पित्तधारा कला, अग्निधरा कला) को ढक लेता है; जिससे मन्दाग्नि, शरीरमें भारीपन, तथा प्रवाहिका—अतिसार ये रोग हो जाते हैं।*

---

* बङ्गसेन महोदय लिखते हैं,—"अन्यथा योजितं कुर्य्यान्मन्दाग्निं गौरवारुचि।" और शारङ्गधर आचार्य्य लिखते हैं—"मन्दाग्निं गौरवं कुर्य्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम्" अर्थात् बङ्गसेन मन्दाग्नि, भारीपन और अरुचिका होना लिखते हैं, किन्तु शारङ्गधर तथा अन्यान्य आचार्य्य वही मन्दाग्नि, भारीपन और प्रवाहिका का होना लिखते हैं।

वमन-विरेचनके पहले स्नेह और स्वेद क्यों ?

सुश्रुतमें लिखा है,—स्नेह और स्वेद यानी घृतादि पीने और पसीने लेनेसे जब दोष खिँचकर चिकने कोठेमें जमा हो जाते हैं, तब विरेचन औषधिके बलसे वह आसानीसे बाहर निकल जाते हैं। जिस तरह चिकने बर्तन में जल न तो ठहरता और न लगता है, उसी तरह दोष भी चिकने कोठे में न ठहरते हैं और न लगते हैं। कहा है ;—

स्नेहस्वेदावनभ्यस्य, यस्तु संशोधन पिबेत्।
दारुशुष्कमिवानामे, देहस्तस्य विशीर्यते॥

जो स्नेह और स्वेद-कर्म किये विना संशोधन-औषधि—वमन-विरेचन की दवा पीते हैं, उनका शरीर इस तरह टूट जाता है, जिस तरह सूखी लकड़ी नवाने या मोड़नेसे टूट जाती है। वङ्गसेन महोदय कहते हैं—स्नेह और स्वेद से प्रचलित तथा स्निग्ध—चिकनी चीज़ोंसे उदीरित दोष विरेचन दवा द्वारा सुखपूर्व्वक कोठेमें से निकल जाते हैं।

विरेचनसे लाभ क्या ?

जुलाब लेने से इन्द्रियाँ बलवान होती हैं, बुद्धि प्रसन्न और जठराग्नि प्रदीप्त होती है, धातु और अवस्थामें स्थिरता होती है; यानी बुढ़ापा जल्दी नहीं घेरता।

वातादिक दोष लङ्घन और पाचन से शान्त होकर शायद फिर भी कुपित हो जायँ; परन्तु वमन-विरेचन द्वारा शुद्ध होकर फिर सिर नहीं उठाते, यानी कोप नहीं करते।

जिस तरह जलके न रहने से जलके स्थावर जंगमों का नाश हो जाता है; उसी तरह विरेचन द्वारा पित्तके नाश होजानेसे, पित्त-जनित रोगों का नाश होजाता है।

वमन विरेचनमें फ़र्क़ ?

सर, सूक्ष्म, तीक्ष्ण, उष्ण और विकाशि होनेकी वजह से विरेचन दोषों को नीचे गिराता है ; किन्तु वमन अन्यथा-प्रकृत्यागत होने की वजह से दोषों को ऊपर लेजाकर निकालता है। सीधे शब्दोंमें, विरेचन का काम पके हुए दोषों को लेकर नीचे निकलना है, और वमन का काम बिना पके यानी कच्चे दोषोंको लेकर ऊपर निकलना है।

बिना वमनके विरेचनकी आज्ञा।

शारङ्गधर में लिखा है:—

स्निग्धस्य स्नेहनैः कार्यं स्वेदैः स्विन्नस्यरेचनम् ?

जिसका कोठा घी दूध आदि चिकने पदार्थों से चिकना होगया हो और जिसने मिट्टी के गोले अथवा ईंट प्रभृति से पसीने लेलिये हों, उसको दस्त करा देने चाहिएँ। यह बिना वमनके विरेचन देनेकी दूसरी विधि है।

कब वमन और कब विरेचन ?

कफ की अधिकता में और कफ की अधिकता वाले अन्य दोषोंमें भी वमन करानी चाहिए।

पित्ताधिक्य तथा पित्त की अधिकतावाले अन्य दोषोंमें विरेचन-औषधि देनी चाहिये।

जुलाब का मौसम।

शारङ्गधर, भावप्रकाश, वङ्गसेन प्रभृति सभी ग्रन्थोंमें लिखा है:—

शरदृतौ वसन्ते च, देहशुद्धौ विरेचयेत्।
अन्यदात्ययिके काले, शोधनं शीलयेद् बुधः॥

शरद् ऋतु—क्वार कातिक, और वसन्त यानी चैत वैशाखमें शरीर

की शुद्धि के लिए जुलाब देना चाहिये। अगर रोग हो, तो इन मौसमों के सिवा दूसरे समयमें भी वैद्य जुलाब दे सकता है।

जुलाब कराने लायक रोगी।

वमन-विरेचन करानेमें बहुत कुछ सोच-विचार की आवश्यकता है। इसमें मनमानी-घरजानी करनेसे महासङ्कट उपस्थित हो जाता है। ज़रा सी भूलसे, मनुष्य इस दुर्लभ चोले को त्यागकर परलोक की राह लेता है। यह काम पूर्ण विद्वान् और अनुभवी वैद्य का है। चरक के सूत्र-स्थानके चिकित्साप्रभृतीयः नामक सोलहवें अध्याय में लिखा है :—

चिकित्साप्राभृतो विद्वान् शास्त्रवान् कर्मतत्परः।
नरं विरेचयति यं सयोगात् सुखमश्नुते ॥
यो वैद्यमानीत्वबुधो विरेचयति मानवम्।
सोऽति योगादयोगाच्चमानवो दुःखमश्नुते ॥

चिकित्सा-कुशल, विद्वान्, शास्त्रोंको जाननेवाला, काममें लगा हुआ यानी चिकित्सा-कार्य्य करता हुआ वैद्य जिसको जुलाब देता है, वह रोग से छुटकारा पाकर सुख का भागी होता है; किन्तु वैद्यत्व का अभिमान करनेवाला अनजान वैद्य जिसको जुलाब देता है, वह मनुष्य जुलाब के अतियोग और अयोग यानी बहुत लगजाने या न लगनेसे दुःख का भागी होता है।

जिन रोगियोंके लिए शास्त्रकारोंने जुलाब देनेकी आज्ञा दी है, उनके सिवा अन्य रोगियों को जुलाब न देना चाहिये। शार्ङ्गधरमें लखा है :—

जीर्णज्वरी गरव्याप्तो, वातरक्ती भगन्दरी।
अर्शः पांडूदरग्रन्थि, हृद्रोगारुचिपीड़िताः ॥

योनिरोग प्रमेहार्त्ता गुल्मप्लीह व्रणार्दिताः
कर्णनासा शिरोवक्र गुदमेण्ढ्रामयान्विताः ॥
यकृच्छोथाक्षिरोगार्त्ता: कृमिक्षारानिलार्दिताः ।
शूलिनो मूत्रघातार्ता विरेकार्हा नरा मताः ॥

जीर्णज्वर, सींगिया विष प्रभृति, कृत्रिम विष, वातरक्त, भगन्दर, बवासीर, पीलिया, उदररोग—जलोदर प्रभृति, गाँठ, हृदय-रोग, अरुचि, योनिरोग, प्रमेह, गोला, प्लीहा—तिल्ली, व्रण-फोड़ा, विद्रधि, वमन, विस्फोटक, विशूचिका, कोढ़, कानके रोग, नाकके रोग, मस्तक-रोग, गुदा-रोग, लिंगेन्द्रिय के रोग—उपदंश प्रभृति, यकृत, सूजन, नेत्र-रोग, कृमि-रोग, क्षारजन्य विकार, वायु-रोग, शूल-रोग, मूत्राघात,—इन रोगों में से किसी से यदि मनुष्य अत्यन्त दुःखी हो, तो उसे दस्तकी दवा देनी चाहिये। अथवा यों समझिये कि, इन रोगवालों को वैद्य जुलाव दे सकता है।

सुश्रुत में इतने रोगों के सिवा मृगी, विसर्प, अर्बुद—रसौली, आनाह—अफारा, शस्त्र का घाव, अग्निदग्ध—अग्निसे जला, तिमिर—अँधेरी, अभिष्यन्द—आँखों का ढलका, ऊर्द्धगत-रक्तपित्त तथा पित्त के रोग से पीड़ित रोगियों तथा जिनके पित्तके स्थानसे उत्पन्न हुए कोई अन्य विकार हों, उनको भी जुलाब देने को आज्ञा दी है।

वाग्भट महोदयने उपरोक्त रोगोंके अलावः व्यंगरोग, कामला, हलीमक, पक्वाशय की पीड़ा, आमयरोग, कोष्ठगत रोग, ऊर्ध्वगत वातरक्त, रक्तदोष, खूनविकार, श्लीपद—हाथीपाँव, उन्माद, खाँसी, श्वास, दूधदोष प्रभृति रोगोंमें भी जुलाब देना अच्छा कहा है। ऊपर के रक्तपित्त में इन्होंने भी जुलाब देने की आज्ञा दी है, किन्तु अधोगत रक्तपित्तमें और नवीन ज्वरमें मनाही की है।

विशेषकर विरेचन योग्य।

पित्तविकार, आमवात, उदररोग, और बद्धकोष्ठ—मल का अवरोध—इनमें विशेषता से जुलाब देना चाहिये।

जुलाबके अयोग्य रोगी।

शार्ङ्गधरमें लिखा है :—

बालवृद्धावतिस्निग्ध क्षतक्षीणो भयान्वित: ।
श्रान्तस्तृषार्त: स्थूलश्च गर्भिणी च नवज्वरी ॥
नवप्रसूतानारी च मन्दाग्निश्च मदात्ययी ।
शल्यार्दितश्च रुक्षश्च, न विरेच्या विजानता ॥

बालक, बूढ़ा, अतिस्निग्ध, क्षत-क्षीण, भय-पीड़ित, थका हुआ, प्यासा, मोटा, गर्भवती, नवीनज्वरी, नवप्रसूता स्त्री, मन्दाग्नि-रोगी, मदात्ययी, शल्यपीड़ित और रूखा—इनको जुलाब न देना चाहिये; यानी ये जुलाब के अयोग्य हैं।

वाग्भट ने अधोगत रक्तपित्त-रोगी, अतिसार-रोगी, क्रूरकोष्ठी—कड़े कोठेवाला और शोष-रोगी—इनको भी जुलाबके अयोग्य कहा है।

वङ्गसेनने क्षीण, क्षयी, शोक-सन्तापित, अजीर्णमें भोजन करने वाला, नवीन प्रतिश्याय-रोगी यानी नये जुकामवाला और स्नेह-कर्म-रहित—इनको भी जुलाब के अयोग्य कहा है।

क्या उपरोक्त रोगियोंको पित्तके कोप करने पर भी जुलाब नहीं दे सकते ?

अगर उपरोक्त, जुलाबके अयोग्य, रोगियों का पित्त अधिक होगया हो, ऐसा कुपित होगया हो कि बिना जुलाब दिये रोग के आराम होने की सम्भावना न हो, तो ऐसी दशा में वैद्य उनको भी मृदु विरेचन यानी बहुत हलका जुलाब देकर काम निकाल सकता

है। यह मतलब नहीं है कि, उपरोक्त रोगियों का पित्त कुपित होजाय, बिना जुलाब आराम होने की आशा न हो, तोभी लकीर के फ़क़ीर होकर चुपचाप बैठे रहना चाहिये। सुश्रुत में कहा है :—

अत्यर्थ पित्ताभिपरीत देहान्, विरेचयेतानपि मन्दवीर्य्यैः।
विरेचनैर्यान्ति नरा विनाशमज्ञप्रयुक्तैरविरेचनीयाः॥

जिन रोगियों को विरेचन यानी जुलाब की मनाही है, उनको भी पित्त के अधिक यानी कुपित होने पर, मन्दवीर्य्य मधुर औषधियों द्वारा जुलाब कराना चाहिये। जिन लोगोंके लिए जुलाब की मनाही है, अथवा जो विरेचन—जुलाब के योग्य नहीं है, वे लोग मूर्ख वैद्यों के जुलाब देनेसे इस दुर्लभ देह से हाथ धो बैठते हैं। मूर्ख वैद्य ऐसे लोगों को भी जुलाब की कोई तेज़ दवा देकर मार डालते हैं। आपही सोचिये, अगर गर्भवती स्त्री, हाल ही में बच्चा जनकर उठी स्त्री अथवा बालक और बूढ़े प्रभृति को जमालगोटे का तेज़ जुलाब कोई मूर्ख देदे, तो वे बचें या मरेंगे। शास्त्रकारोंने इनकी अवस्था नाज़ुक देखकर, इनके प्राण कोमल समझ कर, अव्वल तो जुलाब देने की मनाही कर दी है; पीछे बहुत ही सख़्त ज़रूरत होनेसे दो चार दस्त करानेवाली दवा की आज्ञा भी देदी है। तर्क-वितर्क और बुद्धिमानी की यों तो हर मुक़ाम पर ज़रूरत है, किन्तु चिकित्सा-कार्य्यमें तो इसकी पद-पद पर ज़रूरत है।

स्नेह-विरेचन के अयोग्य।

जो अत्यन्त स्निग्ध है, जिसका शरीर अत्यन्त चिकना है, या जिसने बहुत ज़ियादा स्नेह यानी घृत प्रभृति चिकने पदार्थ पिये ~थे।।रते.वैद्य चिकना विरेचन न देवे; क्योंकि ऐसे आदमी के दोष श्वास, दूधदो॰ स्थानसे चलकर भी, राहमें ही लय हो जाते हैं; ऊपर के रक्तपित्त में इन्हें को निहस जाते हैं।
अधोगत रक्तपित्तमें और न

सुश्रुतमें लिखा है ;—

विषाभिघात पिडका शोफ पांडु विसर्पिणः ।
नातिस्निग्धा विशोध्याः स्युस्तथा कुष्ठप्रमेहिणः ॥
विरुक्ष्य स्नेहसात्मयं तु भूयः संस्नेह्य शोधयेत् ।
तेन दोषां हृतास्तस्य भवन्तिबलवर्द्धताः ॥

विष से पीड़ितको, चोट लगे हुएको, पिड़कावालेको, सूजनवाले को, पोलियावालेको, विसर्प-रोगवालेको तथा कोढ़ और प्रमेहवालेको, अतिस्निग्धको (जिसका शरीर चिकना हो या जिसने ज़रूरत से ज़ियादा घी वग़ैरः पिया हो) जुलाब न देना चाहिये ।†

जो स्वभाव से स्निग्ध हैं, जो नित्य घी वग़ैरः चिकने पदार्थ खाया करते हैं, जिन्हें चिकने पदार्थों में सुख होता है, ऐसे लोगों को यदि जुलाब देना ही हो, तो पहले उन्हें रूखा करना चाहिये अर्थात् उनकी चिकनाई दूर करनी चाहिये। जब उनकी चिकनाई दूर हो जाय, रूखापन आजाय, तब उन्हें फिर यथोचित चिकना करके, घृत प्रभृति मिलाकर जुलाब देना चाहिये ; जिससे दोष दूर होकर बल बढ़े ।

चरकके कल्पस्थानमें भी ऐसा ही उपदेश दिया गया है :—

नातिस्निग्धशरीरायदद्यात् स्नेह विरेचनम् ।
स्नेहोत्क्लिष्ट शरीराय रुक्षंदद्यात् विरेचनम् ॥
एवं ज्ञात्वा विधिंधीरो देशकाल प्रमाणवित् ।
विरेचनं विरेच्यंभ्यः प्रयच्छन्नापराध्यति ।
विभ्रंशो विषवद्यस्य सम्यग्योगो यथामृतम् ॥

जो अति स्निग्ध है, जिसका शरीर पहले से ही खूब चिकना है उसे स्नेह-विरेचन न देना चाहिये । जो पहलेसे ही चिकने शरीर

† मतलब यह है कि जो लोग बहुत घी दूध खाते हैं, उनका कोठा चिकना रहनेसे उनको दस्तों की ज़रूरत नहीं रहती, वैसेही सफ़ाई रहती है। अथवा जिन्हें घी दूध वग़ैरः नहीं पचते, उन्हें आपही दस्त लग जाते हैं। इसलिए दोनों दशाओंमें अति स्निग्धको जुलाब की ज़रूरत नहीं, अगर देना ही ज़रूरी हो तो चिकनापन दूर करके जुलाब देना चाहिए।

वाले हैं उनको रूखा विरेचन देना चाहिये । बुद्धिमान वैद्य देश-काल और परिमाण का विचार करके यदि जुलाब देने योग्यों को जुलाब देता है, तो अपयश नहीं मिलता । जो दवा बेक़ायदे दीजाती है, वह ज़हर के समान काम करती है और जो अच्छी तरहसे—क़ायदे से दीजाती है, वह अमृत का काम करती है ।

और किनको जुलाब न देना चाहिये ?

चरक में लिखा है :—जिसे उत्तम प्रकारसे स्नेहपन कराया गया हो; यानी जो अच्छी तरहसे घी प्रभृति पीचुका हो, ऐसे क्रूर कोठे-वाले को जुलाब न देना चाहिये, किन्तु लङ्घन कराने चाहियें । लंघनों से, चिकनाई द्वारा प्रकट हुए कफ और मल की रुकावट दूर होजाती है ।

रूखे शरीरवाले, बहुत बादीवाले, कड़े कोठेवाले, कसरत करने-वाले और दीप्त अग्निवाले को जुलाबकी दवा बिना दस्त हुए ही पच जाती है । इसलिये ऐसे मौक़े पर पहले वैद्यको बस्ती-कर्म (अगले भाग में देखिये) करना चाहिये । जब बस्ती करनेसे दोष निकलने लगेंगे, तब जुलाब की दवा उन्हें शीघ्र ही बाहर निकाल देगी ।

और भी एक बात है—रूखे पदार्थ खानेवाले, मिहनत करने-वाले और तेज़ अग्निवाले प्राणियों के दोष मिहनत करने, धूप और हवामें डोलने और अग्नि के पास रहने से क्षीण हो जाते हैं । ऐसे कसरती और तेज़ जठराग्निवालों को विरुद्ध भोजन करने और भोजन पर भोजन करने प्रभृति से जो तकलीफ़ होती है, वह इनको मिहनत और अग्नि के ज़ोर से अपने-आपही नाश हो जाती है । ऐसे लोगों को विशेष रोग नहीं होते । इन लोगों को तो खाली बादी से बचाना चाहिये । इसके लिये इन्हें घृतादि पिलाना; यानी स्नेहन-क्रिया करानी चाहिये । रूखे, परिश्रमी और दीप्ताग्निवालों को जुलाब कभी न देना चाहिये ।

जुलाब देने की विधि।

सुश्रुतमें लिखा है:—स्नेह, स्वेद और वमन—इन तीनों के हो जाने के बाद, जिस दिन जुलाब देना हो, उसके पहले की रात को नरम भोजन और खट्टे फलों की खटाई रोगी को खिला कर ऊपर से पानी पिला देना चाहिये। जब दूसरे दिन देखे कि कफ नष्ट हो गया है; यानी कोठे में आ गया है या फूल गया है, तब रोगी का जैसा कोठा हो वैसीही विरेचन की दवा देनी चाहिए। किसी-किसी का कहना है कि, जुलाब के तीन दिन पहले से घी खिचड़ी प्रभृति नरम भोजन मल फुलाने के लिये देने चाहियें।

कोष्ठ या कोठे।

कोठे तीन तरह के होते हैं:—

(१) मृदु, (२) मध्यम, (३) क्रूर।

जिसके कोठे में पित्त की अधिकता होती है, उसे "मृदु-कोष्ठी" या मुलायम कोठेवाला कहते हैं। जिसका कोठा नरम होता है, उसे दूध और दाख प्रभृति से ही दस्त हो जाते हैं।

जिसके कोठे में कफ की अधिकता होती है, उसे "मध्यम-कोष्ठी" या साधारण कोठेवाला कहते हैं। ऐसे कोठेवाले को बीचकी दवा देनी चाहिये।

जिसके कोठेमें वादी की बहुतही अधिकता होती है, उसे "क्रूर कोष्ठी" या कड़े कोठेवाला कहते हैं। ऐसे कोठेवाले को निशोथ प्रभृति से भी बहुत ही मुश्किल से दस्त होते हैं।*

---

* सुश्रुत में लिखा है, जिसमें वायु-कफ की अधिकता हो वह क्रूर कोठा है। क्रूर कोठा दुर्विरेच्य है। जिसमें समान दोष हों, वह मध्यम या साधारण कोठा है। यहाँ मत-भेद है।

भावप्रकाश में लिखा है—बहुवात: क्रूर कोष्ठो दुर्विरेच्य: सकथ्यते।
बहुपित्तो मृदु: प्रोक्तो, बहुश्लेष्मा च मध्यम: ॥

वाग्भटने लिखा है :—बहु पित्तो मृदु: कोष्ठ: क्षीरेणापि विरेच्यते।
प्रभूत: मारुत: क्रूर: कच्छ्रायामादिकैरपि ॥

शार्ङ्गधरने भी यही बात लिखी है, उन्हीं की बात हमने ऊपर लिखी है, क्योंकि उनकी राय बात बहुतोंसे मिलती है।

नरम कोठेवाले को मृदु यानी हलकी मात्रा देनी चाहिये। नरम कोठेवाले को दाख, दूध और अरण्डी के तेल प्रभृति से दस्त हो सकते हैं।

मध्यम या बीच के कोठेवाले को मध्यम मात्रा देनी चाहिये। ऐसे कोठेवाले को निशोथ, कूटकी अमलतास का गूदा प्रभृति से दस्त हो सकते हैं। (निशोथ की मात्रा ६ माशे से २ तोले तक है।)

कड़े कोठेवाले को तीक्ष्ण औषधि की तीक्ष्ण मात्रा देनी चाहिये। ऐसे कोठेवाले को थूहर का दूध, जमालगोटे के बीज या दन्ती (जमालगोटे की जड़) हेमक्षीरी, अथवा इन्द्रायन की जड़ से दस्त हो सकते हैं।

मात्रा।

भावप्रकाशमें लिखा है:—कषाय की आठ तोलेकी मात्रा उत्तम है। चार तोले की मध्यम है और दो तोले की कनिष्ट है। कल्क, मोदक (लड्डू), और चूर्ण को एक तोले घी या एक तोले शहद में मिलाकर दो तोले की मात्रा से दे सकते हैं। अथवा अवस्था और रोग का विचार करके चार तोले की मात्रा भी वैद्य दे सकता है। वङ्गसेन ने लिखा है—नरम कोठेवाले को एक तोला, मध्यम कोठेवाले को २ तोला, कड़े कोठेवाले को ४ तोला दवाकी मात्रा है। इसी तरह गरम जल भी क्रम से ४, ८, और १२ तोला अनुपान से दे सकते हैं। मात्रा की बात पुस्तकमें ठीक नहीं लिखी जा सकती। मात्रा का कम अधिक करना वैद्य की बुद्धि पर निर्भर है।

यदि वैद्य को कोठे का हाल मालूम न हो?

अगर वैद्य को ऐसा रोगी मिल जाय, जिसके कोठे का हाल मालूम न हो और रोगी ने भी पहले कभी दस्त की दवा न ली हो, इस वजह से उसे भी अपने कोठे का हाल मालूम न हो—तो

ऐसी दशामें वैद्य पहले मृदु यानी हलकी दवा दे। जब कोठे का हाल मालूम हो जाय, तब जैसी ज़रूरत हो वैसी दवा दे। किन्तु चरकमें लिखा है—जो कमज़ोर हो, जिसके दोष कम हों, जिसका कोठा न मालूम हो, उसको हलकी दवा दो या बारम्बार थोड़ी-थोड़ी दवा दो: जिससे हानि न हो। एक दम बिना जाने तेज़ दवा मत देदो, जिससे प्राण नाश हो जायँ। अगर दुर्बल रोगी घोर दोषों से व्याकुल हो, तो दिन में कई बार थोड़ी-थोड़ी दवा दो। ऐसा न हो कि, दवा के हलकेपन से दोष न निकलें और रोगी मर जाय।

राजाओं और अमीरों को कैसी दवा देनी चाहिए ?

राजाओं तथा अमीरों को ऐसी दवा देनी चाहिये, जो आज़माई हुई हो, जिसको थोड़ीसी मात्राही ज़ियादा काम करती हो, जो रोगों को शीघ्र आराम करती हो और जिसके खाने-पीने में तकलीफ़ न हो; यानी जिससे दिल न बिगड़े और उबकियाँ न आवें।

जुलाब की दवा लेने के बाद रोगी क्या करे ?

जुलाब की दवा लेने के बाद रोगी क्या करे, इसके सम्बन्धमें धन्वन्तरि जी कहते हैं:—

विरेचनं पीतवांस्तु न वेगान्धारयेद् बुधः।
निवातशायी शीताम्बु न स्पृशेन्न प्रवाहयेत्॥

जुलाब की दवा पीनेवाला हाजत होने पर दस्त की हाजत को न रोके। हवा न आती हो ऐसी जगहमें सिरहाने की ओर ऊँचा तकिया लगा कर लेटे। शीतल जल (अथवा कोई भी शीतल पदार्थ) को न छुए और ज़ोर लगाकर मल को न निकाले।

जुलाव लेनेवाले को हवा से बहुत बचना चाहिये। इसी वजह से सुश्रुत में यहाँ तक लिखा है:—

पीतौषधश्च तन्मनाः शय्याभ्यासे विरिच्यते ।

जुलाब लेकर उसी तरफ़ मन लगाये रहे और चारपाई के पास ही पाख़ाने जाय।

शार्ङ्गधर ने कहा है:—

प्रवातसेवांशीताम्बु स्नेहाभ्यंगमजीर्णताम् ।
व्यायामं मैथुनं चैव न सेवेत विरेचितः ॥

जुलाब लेनेवाले को अत्यन्त हवा, शीतल जल, तेल की मालिश, कसरत या मिहनत, मैथुन और अजीर्ण से बचना चाहिये; अर्थात् जिस दिन जुलाब ले उस दिन इतना न खाय कि अजीर्ण हो जाय, स्त्रीप्रसङ्ग न करे, बाहर की तेज़ हवा न खाय, तेल न लगावे, शीतल जल न पीवे और मिहनत न करे। आजकल इतनी बातें कौन वैद्य रोगीको बताता है और कौन रोगी इन बातों से बचता है?

जुलाब के दस्तों में क्या निकलता है?

जिस तरह वमन यानी क़यमें लार, दवा, कफ, पित्त और वायु ये क्रम से निकलते हैं; उसी तरह विरेचन में मल, पित्त, दवा और शेषमें कफ ये क्रम से निकलते हैं। किसी किसी ने मलके पहले मूत्र का निकलना लिखा है।

अच्छा जुलाब होने की पहचान?

तीस दस्त हों और अन्त में कफ यानी आम गिरे, तो उत्तम जुलाब हुआ समझो। अगर बीस दस्त हों और कफ गिरने लगे, तो मध्यम जुलाब हुआ समझो। अगर दस दस्त के बाद ही कफ आ जाय, तो हीन मात्रा का जुलाब समझो। वाग्भट में लिखा है,— जिसमें कफ निकलने लगे वह जुलाब श्रेष्ठ है।

वैद्यविनोद-कर्ता ने लिखा है, यदि एक सेर मल निकले तो

हीन, दो सेर मल निकले तो मध्यम और तीन सेर मल निकले तो उत्तम जुलाब समझो। वाग्भट कहते हैं,—हीनमें ६४ तोले, मध्यम में १२८ तोले और उत्तम में २५६ तोले मल निकलता है।

उत्तम दस्त होने पर यानी जुलाब के अच्छी तरह होने पर— कफ के साथ सम्पूर्ण दोषों के निकल जाने पर नाभि के चारों ओर हलकापन, मनमें प्रसन्नता, अधोवायु का अच्छी तरह खुलना ये लक्षण होते हैं।

जब दस्त ठीक तरह होजाते हैं, तब हृदय और कोखमें अशुद्धि, शरीरमें दाह, खुजली और मलमूत्रकी रुकावट ये लक्षण नहीं होते।

अधिक जुलाब लगने से मूर्च्छा—बेहोशी, गुदा की काँच निकलना अत्यन्त कफ का गिरना और शूल ये उपद्रव होते हैं।

उत्तम दस्त न होनेके उपद्रव

दस्तों के अच्छे प्रकार न होने से नाभि में स्तब्धता, पसलियों में शूल, मल और अधोवायु का न निकलना, शरीर में खुजली और चकत्ते—तथा अङ्ग में भारीपन, दाह, अरुचि, पेट फूलना, भ्रम एवं वमन—ये उपद्रव होते हैं।

उत्तम जुलाब न होनेपर उपचार

जिसे उत्तम दस्त न हुए हों, उसे वैद्य "आरग्वधादि क्वाथ" का पाचन देकर आम को पचावे। इसके बाद स्नेह या घृतादि पिलावे। जब कोठे को चिकना हुआ समझे, फिर जुलाब दे। इस तरह करने से सारे उपद्रव दूर होकर जठराग्नि की दीप्ति और शरीर का हलकापन होता है।

अत्यन्त दस्त होनेके उपद्रव

अत्यधिक दस्त होनेसे मूर्च्छा, गुदामें दर्द, शूल, कफ का अत्यन्त गिरना, मांसके धोवन या मेद के समान रुधिर का गुदा से

निकलना—ये उपद्रव होते हैं । वाग्भट में काँच निकलना, प्यास, भ्रम, आँखों का भीतर घुसना प्रभृति लक्षण और लिखे हैं ।

अत्यन्त दस्त होनेके उपद्रवोंका उपचार

बहुत दस्त हों तो मनुष्य की देह पर जल छिड़के, चाँवलों के शीतल धोवन में शहद मिलाकर पिलावे अथवा हलकी वमन करावे ।

अथवा

आम की छाल को गाय के दही में पीसकर लुगदीसी बना ले, पीछे उसे नाभि के ऊपर लेप करदे, तो होते-होते दस्त बन्द हो जायँगे ।

नोट—आम की छाल को काँजी में पीस कर नाभि पर लेप करने से भी दस्त बन्द हो जाते हैं ।

अथवा

बकरी का दूध पीने, हिरन के मांसका रस पीने, थोड़ासा सांठी चावलों का भात खाने, मसूर पकाकर खाने, विलायती अनार आदि शीतल और क़ाबिज़ (ग्राही) चीज़ों के खाने से भी दस्त बन्द हो जाते हैं ।

अथवा

पद्मसाख, खस, नागकेशर, और चन्दन—इनको पीसकर लेप करने, सींचने और पीनेसे भी दस्त बन्द हो जाते हैं ।

अथवा

सेमल की जड़ को जल में पीसकर लुगदीसी करले । पीछे उसे दहीके तोड़ यानी दहीके पानीसें पीसकर पीवे, तो गङ्गाके प्रवाह के समान वेगवाला भी अतिसार तत्काल आराम हो जाय ।

अथवा

खीलों के चूर्ण को मध्य के साथ सेवन करने से विरेचन का अत्यन्त विकार भी नष्ट हो जाता है ।

अथवा

दही, काँजी, आमले, और सत्तू—इन चारों को एक जगह पीस कर लेप करने से सन्ताप, अरुचि, तृषा, अत्यन्त वमन, और विरेचन के विकार नष्ट हो जाते हैं।

अथवा

बटेर, लवा, तीतर, चकोर आदि विष्किर पक्षियों अथवा लाल हिरन के मांस का रस पीने से दस्त बन्द हो जाते हैं।

सूचना

अगर ऐसी ही ज़रूरत हो, किसी दवासे दस्त बन्द न हों, तो गङ्गाधर, वृहत्‌गङ्गाधार चूर्ण प्रभृति अतिसार-प्रकरण में लिखी दवाओं काम निकालना चाहिये। ये दवाएँ दूसरे भागमें लिखी मिलेंगी।

जुलाबवालेको अपथ्य

जिसने शिरावेधन कराया हो अर्थात् फस्त खुलवाकर खून निकलवाया हो, जिसने जुलाब लिया हो, उसे एक मास तक या जब तक पहलीसी ताक़त न आ जाय तब तक, नीचे की बातोंसे परहेज़ करना चाहिये। क्योंकि, जुलाबवाले और फस्तवाले को ये अपथ्य हैं—क्रोध, परिश्रम, दिनमें सोना, ज़ोर से बोलना, हाथी घोड़े पर चढ़ना, शीतल जल, पवन, धूप, विरुद्ध भोजन, अधिक भोजन, और असात्म्य यानी शरीर को दुःख देनेवाला भोजन।

जुलाबमें सहायता

दस्तोंकी दवा देकर, वैद्य आँखोंमें शीतल जलके छींटे दे, अतर वग़ैरः सुँघावे, पान खिलावे तो उत्तम दस्त हों।

अगर पहले दिन दस्त कम हों तब क्या करना चाहिये ?

वाग्भटने लिखा है;—अगर पहले दिन दस्त न हों, तो वैद्य रोगी को गरम जल पिलावे, हाथों को गरमीसे पेट को स्वेदित करे। यदि

उस दिन दस्त कम हों, तो अन्नका भोजन कराकर, दूसरे दिन फिर जुलाब दे।

वङ्गसेनने लिखा है। हीन रेचन हुआ हो तो, स्निग्ध करके आस्थापन वस्ति देकर तेज़ जुलाब दो।

चरकमें लिखा है,—वमन विरेचनके देनेपर दोष थोड़े-थोड़े और देरसे निकलें तो गरम जल पिलाओ; जिससे अफारा, तृषा (प्यास), और मल की रुकावट दूर हो।

जुलाबके दिन पथ्य

वङ्गसेनने लिखा है—मन्दाग्नि हो, अक्षीणता हो, अच्छी तरह दस्त न हुए हों तो यवागू मत दो। किन्तु, अगर कमज़ोरी हो, अच्छी तरह दस्त होगये हों, तो मन्दोष्ण (सुहाती-सुहाती) हलकी यवागू पिलाओ।

शार्ङ्गधरने लिखा है, दस्तोंके बाद साँठी चाँवल, मूँग आदि की यवागू, जंगली जानवर हिरन अथवा मुर्ग़ आदिके मांस-रसके साथ भात खिलाओ।

जुलाब पच जाय और उपद्रव हों तब ?

अगर शोधन दवा पच जाय और प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, आदि उपद्रव हों तो स्वादु, शीतल पित्तनाशक उपाय करो।

जुलाब सम्बन्धी ज़रूरी बातें

(१) अगर दोषोंसे मार्ग ढक जायँ और शोधन दवा (वमन-विरेचन की दवा) न ऊपर जाय न नीचे निकले, डकारें आवें, अंगोंमें दर्द हो, तो ऐसी अवस्था में “स्वेदन कर्म” करो।

(२) जुलाब से दस्त तो अच्छी तरह हो जायँ, मगर जुलाब की दवा पेट (आमाशय)में ठहरी रहे, उसको डकारें आवें; तो ऐसी दशामें, उस आमाशय में ठहरी हुई दवा को वमन कराकर निकाल दो।

अगर ऐसा न करोगे तो रोगी को और भी दस्त होंगे। बहुत दस्तों के बन्द करने का उपाय शीतल क्रिया है।

(३) कभी-कभी कफसे राह रुकजानेके कारण दवा छातीमें रुकी रहती है, सन्ध्या समय या रात को जब कफ का समय नहीं होता, कफ क्षीण हो जाता है,तब आपही दस्तोंके द्वारा निकलती है। अगर दवाके कफ से ढक जाने से लार बहना, हृल्लास, विष्टम्भ, लोमहर्ष आदि हों, तो तीक्ष्ण, गरम और चरपरी कफनाशक दवा दो।

(४) अगर रूखेपन, और अनाहार के कारण दवा पच जाय, या पचे नहीं किन्तु ऊपर को चली आवे, तो उसी दवाको नमक और चिकनाई के साथ दो।

(५) जिसे जुलाब दो,उसके मिज़ाज का पता लगाकर जुलाब दो। अगर गरम मिज़ाजवालेको गरम जुलाब दोगे, तो दस्त न होंगे या कम होंगे; इसलिए ज़िसका मिज़ाज गर्म हो उसे शीतल जुलाब दो और जिसका मिज़ाज सर्द हो उसे गरम जुलाब दो। इस तरह करनेसे अवश्य दस्त होंगे।

(६) अगर मल सूख गया हो, इस कारण से जुलाब पच जाय तो फिर स्नेहपान कराकर या हकीमी मुन्ज़िस देकर अथवा आरग्वधादि क्वाथ* देकर, मल को ढीला करके, फिर जुलाब की दवा दो।

वमन और विरेचनके लिए उत्तम ऋतुएँ।

यों तो ज़रूरत हो तभी वमन-विरेचन की दवा दे सकते हैं; पर कारण न होनेसे, शरद् और वसन्तमें जुलाब देना और क़य कराना अच्छा है। शरद् में सञ्चित पित्तके निकालने के लिए जुलाब देना चाहिए और वसन्तमें सञ्चित कफके निकालनेके लिए क़य कराना और जुलाब देना ज़रूरी है।

---

*इस क्वाथ मे अमलतासका गूदा, पीपरामूल, नागरमोथा, कुटकी और जंगी हरड़ये पाँच चीजें होती हैं। इनको छै छै माशे लेकर मिट्टी को हाँडो में डेढ़ पाव जल में औटा लो। चौथाई जल रहने पर पिला दो। कड़े कोठेवालों की मात्रा बढ़ा दो; बालकोंको घटा दो।

पृथक् पृथक् ऋतुओंके पृथक् पृथक् जुलाब

जुलाब किसको देना चाहिए, किसको न देना चाहिए, किस तरह देना चाहिए प्रभृति बातों का विचार हम पहले कर ही आये हैं। यहाँ प्रसङ्गवश हम छहों ऋतुओंमें देने योग्य जुलाब के निरुपद्रवकारी नुसखे लिखते हैं;—

वर्षा ऋतुमें जुलाब

यदि ज़रूरत हो, तो वर्षाकालमें निशोथ की जड़, इन्द्रजौ, पीपल और सोंठ, इन सबको समान भाग लेकर कूट-छानलो; पीछे दाखों का रस* और शहद मिलाकर बलाबल देखकर देदो।

शरद् ऋतुमें जुलाब

निशोथ, धमासा, नागरमोथा, सफेद चन्दन, और मुलहटी—इन सब दवाओंको बराबर बराबर लेकर, चूर्ण करके, चार या छे माशे चूर्ण, (दस्त न होने से अधिक भी) दाखों के रसमें मिलाकर देदो। यह दवा शीतल है।

हेमन्तमें जुलाब

निशोथ, चीता, पाढ़, ज़ीरा, देवदारु, बच और चोक—इन सात दवाओंको समान भाग लेकर चूर्ण कर लो, पीछे ४।६ या ८ माशे चूर्ण बलाबल अनुसार, गरम जलमें मिलाकर दोगे; तो दस्त होजायँगे।

शिशिर और वसन्तमें जुलाब

पीपल, सोंठ, सेंधानोन और काली निशोथ,—इन चारों को बराबर-बराबर लेकर चूर्ण कर लो। पीछे बलाबल अनुसार ४।६ या ८ माशे चूर्णको शहत†में मिलाकर चटा दो, दस्त हो जायँगे।

* चार पाँच तोले मुनक्कों को मिट्टी की हाँडी में औटाकर काढ़ा करके छानलो। यही दाखों का रस है। शीतल होने पर ४।६ माशे शहद मिलाना हो मिलाओ, न मिलाना हो मत मिलाओ।

† शहद जब लेना चूर्ण की मात्रा से दूना लेना; गरम पानी या और पतली चीज़ चूर्ण से चौगुनी लेना—ये नियम हैं।

ग्रीष्ममें जुलाब

निशोथ को कूट-पीस और छानकर चूर्ण कर लो। पीछे ४।६ या ८ माशे† चूर्णको मिश्री मिलाकर दीजिए; दस्त हो जायँगे।

नोट—याद रक्खो, निशोथ के जुलाबमें पथ्य—परहेज का ज़ियादा रगड़ा नहीं है।

हर मौसमका जुलाब ।

चार पाँच तोले अरण्डी का तेल या साफ़ कैस्टर आइल, पाव डेढ़ पाव गर्म दूधमें मिलाकर पिला दीजिये; ४।५ दस्त हो जायँगे। यह जुलाब बालक, स्त्री बूढ़े और दुर्बल सबको मुफ़ीद है। जिसका बहुत ही कड़ा कोठा हो; रेंड़ी के तेलसे दस्त न होते हों; तो आप दस बूँद तारपीनका तेल भी रेंडी के तेलमें मिला दें, चार पाँच तोले तेलकी मात्रा पूरे जवान को हैं, बालक को ४।६ माशे और स्त्री को २।३ तोला देना। दस्त होंगेही होंगे।

अभयामोदक

बादुली हरड, काली-मिर्च, वेतरा-सोंठ, वायविड़ङ्ग, आमला (बीज निकालकर), शुद्ध छोटी पीपर, पीपरामूल, दालचीनी, तेजपात और मोथा,—ये सब एक-एक तोले; जमालगोटेकी जड़की छाल दो तोले और निशोथ आठ तोले तथा मिश्री छै तोले,—इन सबको लाकर साफ करलो; पीछे मिश्रीको छोड़ कर, ग्यारह दवाओंको कूट-छानकर रखलो। शेष में मिश्री पीसकर मिला दो। इसके बाद सब दवाओं के

† बिना रोगी की उम्र देखे या बलाबल देखे मात्रा नियत नहीं की जा सकती। आजकल ऐसे लोग भी मिलते हैं, जिन्हें मात्रा का आठवाँ भाग देनेसेही दस्तपर दस्त होने लगते हैं और वे घबरा जाते हैं; इसलिए जो दवा दे या ले विचार कर मात्रा नियत करे। इन चूर्णों की मात्रा एक तोले तक है; पर चार या छै माशे से आरंभ करना भला है। किसी किसी को दो तोले से भी दस्त नहीं होते,; ऐसे लोग हमें मिले, पर कम मिले। हमने नर्म कोठेवालों और नाज़ुक-मिज़ाजों के लिए ४।६ माशे की मात्रा लिखी है। इन मात्राओंसे दो चार दस्त खुलासा हो सकते हैं।

चूर्णको शहदमें सानकर, चार-चार माशेकी गोलियाँ बना लो। यह मात्रा जवानकी है। बलाबल देखकर मात्रा घटा बढ़ा लो।

सवेरे एक गोली खाकर ऊपरसे "शीतल जल" पीना चाहिए। बीच-बीचमें भी थोड़ा-थोड़ा शीतल जल पीना चाहिए; क्योंकि शीतल जल इन गोलियोंकी लाग है। शीतल जल पीनेसे दस्त होते रहेंगे। जब दस्त बन्द करने हों, गरम जल पीलो; गरम जल पीतेही दस्त बन्द हो जायँगे।

इस जुलाबके लेनेसे विषम ज्वर, मन्दाग्नि, पीलिया, भगन्दर, खाँसी, १८ प्रकारके कोढ़, वायुगोला, बवासीर, गलगण्ड, फोड़ा-फुन्सी, उदररोग, दाह रोग, तिल्ली, राजयक्ष्मा, प्रमेह, नेत्ररोग, वातरोग, पेट फूलना, सोज़ाक और पथरी—ये सब आराम होते हैं। इसकी शास्त्रोंमें बड़ी तारीफ़ लिखी है; पर हम इतना कह सकते हैं कि ये जुलाबका उत्तम नुसखा है; अनेक बारका परीक्षित है।

कालेदानेका जुलाब।

काला दाना ८ माशे और सोंठ ६ रत्ती ले लो। कालेदानेको घीमें भूँज कर पीस लो, पीछे पीस कर सोंठ मिला दो। यह एक मात्रा है, मगर यह मात्रा जवान आदमीकी है; कमज़ोर को कम देना चाहिए। इसे फाँककर ऊपरसे थोड़ासा गर्म जल पीलो, ५।६ दस्त हो जायँगे। यह जुलाब जैलप या जमालगोटेसे कम नहीं है और खूबी यह है कि उनकेसे दोष इसमें नहीं हैं।

जिसे कम दस्तोंकी जरूरत हो या कोठा नर्म हो, उसे ६ माशे कालादाना घीमें भूँजकर फाँक जाना चाहिए और ऊपरसे गर्म जल पी लेना चाहिए।

निशोथ और त्रिफलेका जुलाब।

निशोथ और त्रिफला तीन-तीन तोले और बायबिडङ्ग, पीपर, जवाखार एक-एक तोले लेकर, सबको कूट-पीसकर चूर्ण करलो;

पीछे इस चूर्णमें गुड़ मिलाकर नौ-नौ माशेकी गोलियाँ बना लो। (मात्राकी बात पहले लिख आये हैं)। गोली खाकर गर्म जल पी जाओ। इस जुलाबमें पथ्य परहेज़का रगड़ा नहीं है।

अथवा

उपरोक्त दवाओंके छे माशे चूर्णको एक तोले शहद और आधे तोले घीमें मिलाकर चाट जाइये। इस तरह करने से भी दस्त होंगे।

हकीमी मुञ्जिस।

(सब मिज़ाजवालोंके लिए)

गुलेबनफ़शा	३	माशे
बर्ग गावज़ुबाँ	३	„
गुले गावज़ुबाँ	३	„
तुख़्म ख़तमी	५	„
तुख़्म कासनी	५	„
बेख़ बादियान	५	„
बेख़ कासनी	५	„
मकोय	५	„
बादियान	५	„
असलुस्सूल	३	„
उन्नाब	६	दाना
ख़ुब्बाज़ी	३	माशा
बर्ग शशना	३	„
मुनक्का	६	दाना
मिश्री	२	तोला

रातको, इन सब चीज़ोंको (मिश्री छोड़कर) एक कोरी हाँडीमें, आधा सेर जल डालकर, भिगो दो। सवेरे उसे आग पर पकाओ।

जब पाव या सवा पाव पानी रह जाय, तब मल-छान और मिश्री मिला कर पीजाओ ।

यह एक खूराक या एकमात्रा है। इस तरहकी पांच खूराक पाँच रोज़ तक लेनी चाहिएँ । इससे मल पक और फूल जायगा। यह नुस्ख़ा आज़मूदा है ।

हकीमी जुलाब ।

(सब मिज़ाजवालोंको)

गुले सुर्ख़*	५	माशे
गुलेबनफ़शा	५	"
तुरबल सफ़ेद	५	"
बादियान †	५	"
पोस्त हलीले ज़र्द‡	६	"
मकोय	५	"
ग़ाज़ीफ़ून§	६	"
वर्ग सना ¶	८	"
बेख़ हन्ज़ल$	६	"
तुख़्म हन्ज़ल×	६	"
असबन्द+	३	"
ज़ूफ़ा	५	"
गिलोय सब्ज़ ‖	५	"
अञ्जीर	८	दाना
मुनक्का	१२	दाना
गुलकन्द गुलाब आफ़ताबी	२	तोला

*गुलाब के फूल । †सौंफ । ‡पीली काबुली हरड़का बक्कल । §यह एक दवा है जो अंजीर के दरख़्त से पैदा होती है और अत्तारों के यहाँ मिलती है । ¶सनाय के पत्ते। $इन्द्रायन की जड़ । ×इन्द्रायन का बीज । +एक फल का बीज है। इसका रंग स्याह, किसी क़दर कड़वा, सख़्त और गन्धयुक्त होता है। ‖ हरी ताज़ा गिलोय ।

नोट—हिकमत में पत्ते को "वर्ग", बीज को "तुख़्म" और जड़को "बेख़" कहते हैं ।

इन सबको, मुञ्जिसकी तरह, रातको, कोरी हाँडीमें, आधा सेर जल डालकर, भिगो दो। सवेरे आग पर पकाओ। जब तिहाई या तीन छटांकके क़रीब पानी रह जाय, मलकर छान लो। पीछे गुलक़न्द गुलाब मिलाकर पीजाओ। इसके पीनेके १ घण्टे बाद; अर्क सौंफ आधापाव या गर्म पानी पीना चाहिए। इस दवाके पीनेके २।३ घण्टे बाद ५।६ दस्त साफ हो जायँगे।

जुलाब पर हक़ीमी हिदायतें।

हिकमत के ग्रन्थोंमें लिखा है कि, मूसिल के पहले मुंजिस देनी चाहिये। क्योंकि मुंजिस दोषों को पकाती है और मुसिल या विरेचन-दवा दोषों को रगों और जोड़ों से निकाल लाती है। इसीलिए हकीम लोग जुलाब के पहले मुंजिस देते हैं। ४।५ दिन बाद मलों के फूल जाने और पक जाने पर जुलाब देते हैं।

हिकमत की पुस्तकों में लिखा है:—

(१) एक दिनमें दो जुलाब न लेने-देने चाहिएँ।

(२) जुलाब की दवा पीते समय नाकको बन्द कर लेना चाहिए, जिससे कि दवाकी बदबू वगैरः से तबियत न बिगड़े और क़य न हो जाय। दोनों बाज़ुओं को ज़ोर से बाँध देना चाहिये। जुलाब लेनेवाले को इत्र प्रभृति सुगन्धित पदार्थ सुँघाने चाहिएँ अथवा इलायची या पोदीनेको लौंगके साथ चबवाना चाहिए। इन उपायों से क़य नहीं होती।

(३) जब तक जुलाब का असर न हो, दस्त न होने लगें, कुछ भी न खाना चाहिए।

(४) जुलाब लेकर सोना अच्छा नहीं है।

(५) जुलाब की दवा को बहुत मीठा करना मुनासिब नहीं है।

(६) आब-दस्त के लिये पानी ऐसा लेना चाहिए, जो न गरम हो न ठण्डा।

(७) अगर तेज़ जुलाब की दवा दी जाय; पर उससे कोई लाभ न हो; बल्कि उन्माद या बेहोशी होती दीखे, तो उस दशा में शीघ्र ही वमन करा देनी चाहिए।

(८) अगर रोगी बलवान हो, तो बराबर दो तीन दिन तक जुलाब की दवा दी जा सकती है। अगर रोगी कमज़ोर हो, तो एक-एक या दो-दो- दिन के अन्तर से जुलाब देना चाहिए। हमेशा इस बातका ख़याल रखना चाहिए कि, रोगी का बुरा हाल न हो।

(९) खुश्क स्वभाव वाले, बूढ़े और बालक को तेज़ जुलाब न देना चाहिए।

(१०) जुलाब लेने वाले को सरदी से बहुत बचाना चाहिए।

(११) जुलाब के ऊपर अर्क़ सौंफ या गुनगुना अथवा गर्म जल पीना अच्छा है; इससे दस्तों को मदद मिलती है।

(१२) जुलाबसे निपटनेके बाद; गरम मिज़ाजवालेको ईसबगोल और सर्द मिज़ाजवाले को नाजवों के बीज या मज़लके के बीज पिलाना अच्छा है।

(१३) बहुत से आदमी हर छठे या बारहवें महीने जुलाब लेते रहते हैं; मगर आदत डालना हरगिज़ अच्छा नहीं। रोग की शान्ति के लिये ज़रूरत पड़नेसे जुलाब लेना चाहिये।

(१४) अगर ख़ाली पित्त होता है, तो मुंजिस से तीन दिन में पक जाता है। यदि पित्त के साथ और भी कोई दोष होता है, तो ५ दिनमें पकता है।

हमने इस विरेचन-विषय को, अपनी भरसक, खूब समझा कर विस्तार-पूर्वक लिखा है। आशा है, चिकित्सक और साधारण लोग इससे लाभ उठायेंगे। नुसख़े हमने कम लिखे हैं; ज़ियादा हम अगले भागों में लिखेंगे; क्योंकि उनके पहले और बहुतसी बातें बतानी हैं, जिनके जाने बिना वे तैयारही नहीं हो सकते। ज़रूरत के समय इतने नुसख़ों से ख़ूब काम चलेगा। प्रायः सभी नुसख़े परीक्षित हैं।

हाँ; विरेचन-विषय के पहले हम स्नेह, स्वेद और वमन के सम्बन्ध में न लिख सके, इसका हमें दुःख है। पर कारण यह है, कि उनको विरेचन-विषय की तरह समझा कर लिखने से प्रायः १०० सफे और होंगे। उतने सफे हमें इस भाग में रखने नहीं, क्योंकि काग़ज़ की अत्यन्त महँगी के कारण, ३५० सफोंके इसी भाग का मूल्य ३) या ३॥) हो जायगा। इसलिए उन्हें हम, परमात्मा चाहे तो, दूसरे भाग में लिखेंगे। वहीं हम वस्ती-कर्म, फस्द खोलना और जोंक लगाना प्रभृति विषयों पर लिखेंगे। इनके बाद कुछ वनौषधियों का ज़िक्र करके, रोगों के निदान, लक्षण और उनकी चिकित्सा लिखेंगे। पाठक, ज़रासे उलट-फेर के लिए हमें क्षमा करेंगे।

शरीरके तेरह वेग।
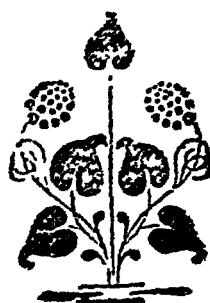
अधोवायु, विष्ठा, मूत्र, जँभाई, आँसू, छींक, डकार, वमन शुक्र, भूख, प्यास, श्वास, और नींद—ये तेरह वेग हैं। इन तेरहोंके रोकनेसे तेरह प्रकारके उदावर्त्त रोग होते हैं। इन शारीरिक वेगोंके रोकनेसे हानि होती है; किन्तु क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, द्वेष प्रभृति मानसिक वेगोंके रोकनेसे बड़ा भारी लाभ होता है। उदावर्त्त रोग बड़े भयानक रोग हैं। कितने ही तो मनुष्यों को घोर दुःख भुगाते हैं और कितने ही प्राण तक हरण कर लेते हैं; इसलिये आप भूल कर भी वेगों को न रोका कीजिये। सुनिये, इनसे कैसे-कैसे रोग होते हैं,—

पेशाब

के रोकनेसे पेड़ू और लिंगेन्द्रियमें दर्द होता है, पेशाब रुक-रुक कर थोड़ा-थोड़ा और कष्टसे होता है, सिरमें पीड़ा होती है, शरीर सीधा नहीं होता और पेटमें अफारा तथा जाँघों और पेड़ूके जोड़ोंमें शूलसे चलते हैं।

ऐसी दशा होने पर, मूत्राघातमें, पसीने निकलना, पानीमें घुस कर नहाना, मालिश कराना, भोजनके पहले और पीछे घृत सेवन करना और तीन प्रकारकी बस्ती-कर्म करना—ये उपाय चरकमें इसकी शान्तिके लिखे हैं।

पाखाने

या मलके वेग को रोकनेसे पेटमें गुड़गुड़ाहट और दर्द होता है, गुदामें कतरने की सी पीड़ा होती है, टट्टी साफ नहीं होती, डकारें आती हैं अथवा मुँहसे मल निकलता है। ये लक्षण माधवाचार्य्यने लिखे हैं। चरकमें लिखा है, पक्वाशय और मस्तकमें पीड़ा होती है; अधोवायु और मल दोनों रुक जाते हैं; नाभि मलसे लिहस जाती है और पेट फूल जाता है।

चरकमें लिखा है, मलके रुकने पर स्वेदन, अभ्यङ्ग, अवगाहन, तीन प्रकारकी वत्ती, वस्ती-कर्म तथा वायुको अनुलोमन करनेवाले खान-पान,—इन सबसे काम लेना चाहिये।

शुक्र

यानी वीर्य्य के रोकनेसे मूत्राशयमें सूजन, गुदा और फोतों में पीड़ा, पेशाब का कष्टसे होना, शुक्र की पथरी, वीर्यका रिसना,—माधवाचार्य्यने लिखा है, ऐसे-ऐसे अनेक रोग होते हैं। चरकने लिखा है, मैथुन करते समय छुटते हुए वीर्यके रोकने से लिङ्ग और फोतोंमें दर्द, शरीर टूटना यानी अङ्गड़ाई आना, हृदयमें पीड़ा और पेशाब का रुक-रुक कर होना—ये उपद्रव होते हैं।

ऐसी हालत होने पर मालिश, अवगाहन यानी ग़ोते लगाकर जलमें नहाना, शराब पीना, मुर्ग़ेका मांस खाना, शाली चाँवल खाना, दूध पीना, निरुह वस्ती और मैथुन करना—ये उपाय उत्तम हैं।

अधोवायु

यानी गुदा द्वारा निकलनेवाली हवाको शर्म या लज्जावश रोकनेसे अधोवायु, मल और मूत्र ये रुक जाते हैं, पेट फूल जाता है, अनायास थकानसी मालूम होती है, पेट में बादीसे दर्द होता है तथा औरभी वायुके उपद्रव होते हैं।

ऐसा होने पर स्नेह, स्वेद और वस्तीकर्म करना तथा वायुको अनुलोम करनेवाले भोजन और पान देना उत्तम उपाय हैं।

वमन

के वेगको रोकने यानी आती हुई क़यको रोकनेसे खुजली, चकत्ते, अरुचि, मुँह पर झाँई, सूजन, पीलिया, सूखी ओकारी और विसर्प—ये उपद्रव होते हैं। चरकमें कोढ़ अधिक लिखा है।

इन रोगोंके दूर करनेके लिये भोजनके बाद वमन करानी चाहिये, उसके बाद धूम-पान और लङ्घन कराने चाहियें तथा फस्द खोलनी चाहिये। इनके सिवा रूखे पदार्थोंका सेवन, कसरत और जुलाब, ये सब भी उत्तम हैं।

छींक

के वेग को रोकनेसे गर्दनके पीछे की मन्या नामक नस जकड़ जाती है, सिरमें शूल चलते हैं, आधा मुँह टेढ़ा हो जाता है, इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती हैं और अर्द्धाङ्गमें वात रोग हो जाता है। चरकने लिखा है—गर्दन का जकड़ना, मस्तक-शूल, लकवा, आधाशीशी और इन्द्रियोंकी दुर्बलता होती है।

ऐसी हालतमें हँसलीके ऊपरी भागमें मालिश करना; स्वेदन, धूम-पान और नस्यका प्रयोग करना; वात-नाशक क्रिया करना और भोजनके पहले और पीछे घी पीना—ये उत्तम उपाय हैं।

डकार

के वेग को रोकनेसे बादीके इतने रोग होते हैं—कण्ठ और मुख का भारीसा मालूम होना, एकादमसे नोचनेका सा दर्द होना, समझमें न आवे ऐसी बात कहना। चरकमें लिखा है—हिचकी, खाँसी, अरुचि, कम्प, और हृदय तथा छाती का बँधासा मालूम होना—ये रोग होते हैं।

ऐसा होने पर हिचकी-रोगमें जो इलाज किया जाता है, वही इसमें भी करना चाहिए। हिचकी और श्वास का कारण कफयुक्त वायु है और दोनों का स्थान भी आमाशय है। इसलिए ऐसा उपाय

करना चाहिए, जिससे छेदोंमें चिपटा हुआ कफ पिघल जाय और श्वास-वायु अपनी राह में ठीक आने-जाने लगे । रोगीको स्वेद करा-कर चिकना भोजन देना चाहिए, जिससे कफ बढ़े । पीछे पीपल, सेंधे नोन और शहत से या और किसी दवासे जो वायुकी विरोधी न हो, वमन करा देनी चाहिए । वमन होने से कफ निकल जायगा, छेदों के शुद्ध होनेसे वायु स्वच्छन्दता-पूर्व्वक विचरने लगेगा, रोगीको आराम मालूम होगा । फिर भी यदि कुछ दोष रह जाय, तो धूम-पान द्वारा निकाल देना चाहिए । जौ की बत्तीको चिलममें रखकर पिलाना; मोम, राल और घी—इन तीनों को इकट्ठा पीस कर, मल्वक सम्पुट में रखकर, धूम पान कराना अथवा हिचकी-नाशक नस्य सुँघाना, इस काम के लिए उत्तम उपाय हैं । हम हिचकी-नाशक चन्द परीक्षित उपाय लिखते हैं—

(१) नाकमें हींग की धूनी दो ।

(२) ज़रासा सेंधानोन जलमें पीसकर सुँघाओ

(३) मक्खी के गू को दूध में पीसकर सुँघाओ

(४) सोंठ को गुड़ में मिलाकर सुँघाओ

(५) मुलेठीको शहतमें मिलाकर सुँघाओ ।

(६) शहत और काला निमक मिलाकर बिजौरे का रस पिलाने या केवल शहत चटाने से असाध्य हिचकी भी आराम होती है ।

(७) सोंठ, पीपल, धायके फूल, इनके चूर्ण को शहत में मिलाकर चटाओ ।

(८) डराने, आश्चर्य्यजनक बात कहने, प्राणायाम करने, अद्भुत बात कहने, मनमें चोट लगनेवाली बात कहने आदि से भी हिचकी आराम हो जाती है ।

जँभाई

के वेग को रोकने से गर्दनके पीछे की नस और गलेका जकड़ जाना, मस्तक में बादी के विकार होना, नेत्र रोग, नासा-रोग, मुख-

रोग और कर्णरोग का ज़ोरसे होना—ये सब उपद्रव होते हैं। चरक में लिखा है—अङ्गों का नव जाना,—आक्षेपक वायु, सङ्कोच, शरीरके अङ्गोंका सोजाना और काँपना ये उपद्रव होते हैं।

इससे हुए रोगोंमें वातनाशक औषधि देना हितकारी है।

भूख

के वेगको रोकने से तन्द्रा, शरीर टूटना, अरुचि, थकाई और नज़र कम होना,—ये रोग होते हैं। चरक में लिखा है—देह में दुर्बलता, कृशता, विवर्णता, अङ्ग टूटना और भ्रम,—ये लक्षण होते हैं।

इसमें चिकने, गर्म और हल्के भोजन देना हितकारी है।

प्यास

के वेग को रोकने से कण्ठ और मुँह सूखते हैं, कानों से कम सुनायी देता है और हृदय में पीड़ा होती है। चरकमें—श्रम और श्वासका होना अधिक लिखा है।

इससे हुए रोगोंमें शीतल क्रिया और तर्पण करना हितकारी है।

हम चन्द उपाय लिखते हैं :—

(१) शहत का गण्डूष धारण करो।

(२) बड़के अङ्कुर, शहत, कूट, कमल और खील—इनको एक जगह पीस कर गोलियाँ बना लो। पीछे इन गोलियोंको मुख में रक्खो।

(३) अनार, बेर, लोध और बिजौरे नीबूको एक जगह पीसकर माथे पर लेप करो।

(४) गीले कपड़ेको शरीर पर लपेट लो

(५) चाँवलोंके जलमें शहत मिलाकर पीओ

(६) छटाँकभर मिस्रीको शीतल जलमें घोलकर शर्बत बना लो; पीछे उसमें ४।५ छोटी इलायची, चाँवलभर कपूर, २।३ लौंग १०।१५ काली मिर्च—इन सबको पीसकर मिला दो। शेषमें बारीक कपड़े

से छान कर पिला दो। इसे "शर्करोदक" कहते हैं। यह बहुत ही उत्तम चीज़ है। यह वीर्य पैदा करनेवाला, पेटकी जलन नाश करनेवाला, दस्त साफ़ लानेवाला, स्वादमें मज़ेदार, वात, पित्त और खून-विकारका नाश करनेवाला ; वेहोशी, जी मिचलाना और प्यास आदि को शान्त करनेमें परमोत्तम है।

(७) खसका इत्र सुँघाओ, खसके पङ्खे से हवा करो, सरसब्ज़ बाग़ की सैर कराओ। इन सब उपायोंसे अथवा इनमेंसे दो-तीन उपायोंसे वेशक बहुत लाभ होगा।

आँसुओं

के वेग को रोकनेसे मस्तकका भारीपन, नेत्ररोग और पीनस,—ये रोग ज़ोरसे होते हैं। चरकमें लिखा है—जुकाम, आँखोंका रोग, हृदयरोग, अरुचि और भ्रम—ये रोग होते हैं।

इस हालतमें नींदभर सोना, हलकीसी बढ़िया शराब पीना, चित्त प्रसन्न करनेवाली प्यारी-प्यारी बातोंका कहना, मीठा-मीठा बाजा बजाना प्रभृति हितकारी हैं।

नींद

के वेगको धारण करनेसे जँभाई, अङ्ग टूटना, नेत्र और मस्तक का जड़ हो जाना और तन्द्रा—ये रोग होते हैं।

इस हालतमें शान्तिपूर्वक सोना, और किसी दूसरे शख़्सका पैर के तलवे और हाथकी हथेलियोंका सुहराना हितकारी है।

साँस

के वेगको रोकनेसे हृदयरोग, मोह और वायुगोला,—ये रोग होते हैं। बाज़-बाज़ शख़्स थक जानेपर साँस रोका करते हैं।

इस दशामें रोगीको आराम देना चाहिये और वात-हरणकारी यानी बादीको नाश करनेवाली क्रियाएँ करनी चाहिए।

चरक भगवान्के उपदेश।

चरक भगवान् कहते हैं—शरीर-सम्बन्धी इन तेरह वेगोंको कभी मत रोको, जिससे ऐसे भयानक रोग हों।

यदि इस लोक और परलोकमें मङ्गल चाहो, तो अनुचित साहस के वेगको, मनके वेग को, वाणीके वेग को, देहके वेगको, कर्मके वेग को तथा लोभ, शोक, भय, क्रोध और अभिमानके वेगको रोको। निर्लज्जताके वेग को, ईर्ष्याके वेग को, अनुरागके वेगको और पराई सम्पत्ति देखकर कुढ़नेके वेगको रोको। कठोर बोलनेके वेग को, अत्यन्त ग्लानिसूचक बातके वेगको, मिथ्या बोलनेके वेगको और अकालयुक्त वाक्यके वेगको रोको। दूसरे को कष्ट देनेके वेगको रोको; स्त्रीसङ्गके वेगको, चोरीके वेगको और हिंसा प्रभृतिके वेगको रोको, चाहे जो ज़बानसे मत निकाल बैठो; लोभ, शोक, भय, क्रोध और घमण्डको पास मत आने दो; शर्मको मत छोड़ो, चटपट किसी पर मोहित न हो जाओ, पराई दौलत या पराया वैभव देखकर कुढ़ो मत, कठोर बात मत बोलो, झूठ मत बोलो, दूसरेको जिससे कष्ट हो ऐसी बात चित्तमें भी न लाओ, रण्डीबाज़ीसे बचो, चोरीका ध्यान भी न करो, किसी भी प्राणी की हत्या मत करो इत्यादि।

यदि आप शारीरिक वेगोंको न रोकेंगे; मन-वच-कर्मसे निष्पाप रहेंगे, तो आप 'पुण्यश्लोक' हो जायँगे। आप सदा सुखी रहेंगे, आपका धन-धर्म बढ़ेगा, कामकी प्राप्ति होगी और लक्ष्मी आपकी चेरी रहेगी।

कसरत अच्छी है। सामर्थ्यानुसार कसरत करनेसे शरीर हलका और मज़बूत होता है, काम करने और क्लेश सहनेकी सामर्थ्य होती है, तीनों दोषोंकी शान्ति होती है, भूख बढ़ती है; अगर इसके भी अधिक करनेसे थकान, ग्लानि, क्षयरोग, प्यास, रक्तपित्त, प्रतमक-श्वास, खाँसी, ज्वर और वमन—ये उपद्रव होते हैं।

इसीलिए बुद्धिमानको ज़रूरत होनेसे भी अत्यन्त कसरत, बहुत हँसना, बहुत बोलना, बहुत रास्ता चलना, बहुत स्त्री-संसर्ग करना और बहुत जागना—इनसे बचना चाहिए।

हिन्दी भगवद्गीता

(तृतीय संस्करण)

गीता ऐसा ग्रन्थ है, जो मनुष्यमात्रको पढ़ना और समझना चाहिये। गीताके समझकर पढ़नेसे प्राणी सब दुःखों से छुटकारा पाकर अनन्त सुख पाता है। गीता में जो उत्तम ज्ञान है, वह जगत्के किसी ग्रन्थमें नहीं है। इसीसे आज गीताका सारे जगत्में आदर हो रहा है। अँगरेज़, जर्म्मन, फ्रान्सीसी, जापानी प्रभृति जगत्की सभी बड़ी-बड़ी क़ौमोंने गीताका अपनी-अपनी भाषाओंमें अनुवाद कर लिया है। दुःखकी बात है कि, विदेशी और विधर्मी लोग गीता पढ़ें और उसका आदर करें, किन्तु गीता जिन हिन्दुओंकी अपनी चीज़ है वे उसे न पढ़ें; अथवा पढ़ें तो तोता-रटन्तवाली कहावत चरितार्थ करें। गीताके खाली पाठ करनेसे कोई लाभ नहीं है; समझकर पढ़नेसे मनुष्य गृहस्थीमें रहकर भी मोक्ष लाभ कर सकता है।

अनेक स्थानोंमें गीता छपे हैं, मगर उनमें लिखा हुआ अर्थ सब किसी की समझमें नहीं आता; दूसरे उनके दाम भी बहुत हैं; इस लिये हमने ऐसा "गीता" तय्यार कराया है, जिसको थोड़ीसी हिन्दी पढ़ा हुआ बालक भी उपन्यास की तरह समझ सकेगा।

इसमें मूल है, अर्थ है, टीका है, शंका-समाधान है; सभी कुछ है। इसमें पूरे १८ अध्याय हैं। पृष्ठ संख्या प्रायः ५०० है। छपाई सफाई मनोमोहिनी है। एक तिनरङ्गा और एक सादा चित्र भी है। दाम २॥) डाक-खर्च ।≶) इस एक गीतामें शङ्कराचार्य्य और माधवाचार्य्य दोनोंकी टीकाओं का आनन्द है।

वैराग्यशतक।

पुस्तक देखने योग्य है। मूल्य २) रुपया

[illegible] ब्लाकके ८० चित्र हैं।

हे बाला! अब तू मुझ पर क्यों कटाक्षबाण चलाती है? अब तू अपनी काममद उत्पन्न करनेवाली दृष्टि को रोक ले। तेरे इस परिश्रम से तुझे कोई लाभ न होगा; क्योंकि अब हम पहले जैसे नहीं रहे हैं, हमारी जवानी चली गई है. अब हमने वनमें रहनेका निश्चय कर लिया है और अब हम विषय-सुखों को तृण से भी निकृष्ट समझते हैं। [पृ० १४५